सुकवि-माधुरी-माला — तृतीय पुष्प

मिश्रबंधु-विनोद

अथवा

हिंदी-साहित्य का इति[illegible] कवि-कीर्तन

लेखक

"मिश्रबंधु"

मिश्रबंधु-विनोद

अथवा

हिंदी-साहित्य का इतिहास तथा कवि-कीर्तन

(प्रथम भाग)

लेखक

गणेशविहारी मिश्र

माननीय श्यामविहारी मिश्र एम्० ए०

शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०

"ते सुकृती, रससिद्ध कवि बंदनीय जग माहिं,
जिनके सुजस-सरीर कहँ जरा-मरन-भय नाहिं।"

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२९-३०, अमीनाबाद-पार्क

लखनऊ

सजिल्द २॥।)] सं० १९८३ वि० [अजिल्द २।)

विषय-सूची

	पृष्ठ
भूमिका (द्वितीय संस्करण की)	-)—।≡)
भूमिका (प्रथम संस्करण की)	१—८८
ग्रंथ-निर्माण	१— २
प्रकाशन	२— ३
नाम	३— ४
विषय	४— ५
लेखन-शैली	५— ६
काल-क्रम	६— ७
आधार	७—११
विवरण	७—११
सहायक	११—१२
ग्रंथ-विवरण	१२—१४
विविध समय और उनकी दशा	१४—१६
संवत्	१६—१७
उपाधि	१७—१८
नाम-लेखन-शैली	१८—१८

	पृष्ठ
वर्तमान लेखक	१८—२०
ग्रंथ का आकार तथा लेखकों की अयोग्यता ...	२१—२२
श्रेणी-विभाग	२२—२३
अपेक्षा कृत काव्योत्कर्ष	२४—२८
श्रेणी-विभाग के कारण	२८—३०
काव्योत्कर्ष	३०—३०
देव-कृत छंद	३०—३५
तुलसीदास-कृत छंद	३५—३८
बिहारी-कृत छंद	३८—३९
लेखराज-कृत छंद	३९—४१
सम्मिलित प्रभावादि	४१—४७
काव्य-रीति	४८—४८
पदार्थ-निर्णय	४८—४९
पिंगल	४९—५०
गणागण	५०—५०
गुण	५०—५१
दोष	५१—५१
भाव	५१—५३
रस	५३—५५
शृंगार	५५—५५
वृत्ति	५६—५६
पात्र	५६—५६
अलंकार	५६—५७
काव्यांग	५७—५८
वर्तमान शैली	५८—५८

पृष्ठ

भाषा-संबंधी विचार ... ... ५८—६०
लिपि-प्रणाली ... ... ६०—६२
शब्दों के नए रूप ... ... ६३—६४
संधि ... ... ६४—६५
विभक्ति-प्रत्यय ... ... ६४—६६
लिंग-भेद ... ... ६६—६९
हिंदी की स्वतंत्रता ... ... ६९—७१
ग्रंथ-रचयिता ... ... ७१—७१
गणेशविहारी ... ... ७१—७२
शेष दोनों लेखक ... ... ७२—७३
लव-कुशचरित्र ... ... ७३—७५
आरंभ के गद्य-लेख ... ... ७५—७६
विक्टोरिया-अष्टादशी ... ... ७६—७७
हिंदी-अपील ... ... ७७—७७
मदन-दहन ... ... ७७—७८
अन्य रचनाएँ ... ... ७८—७९
भूषण-ग्रंथावली ... ... ७९—७९
व्यय आदि ... ... ७९—८०
रघु-संभव ... ... ८०—८०
हा काशीप्रकाश ... ... ८१—८३
हिंदी-नवरत्न ... ... ८३—८३
बूँदी-वारीश ... ... ८३—८६
स्फुट लेख ... ... ८६—८६
मुख्य कविगण ... ... ८६—८७
समाप्ति ... ... ८७—८८

संक्षिप्त इतिहास-प्रकरण

(हिंदी का संक्षिप्त इतिहास)

पृष्ठ

अध्याय १—प्रारंभिक एवं पूर्व माध्यमिक हिंदी ८९— ९८

अँगरेज़ी ... ... ९०— ९०

इतिहास का समय-विभाग ... ९०— ९१

प्राचीन कवि ... ... ९२— ९३

चंद ... ... ९३— ९३

अन्य कवि ... ... ९४— ९५

गोरखनाथ ... ... ९५— ९६

विद्यापति आदि ... ... ९६— ९७

अन्य कवि ... ... ९७— ९८

हिंदी के रूप ... ... ९८— ९८

अध्याय २—प्रौढ़ माध्यमिक हिंदी ... ९८—१०८

धार्मिक उन्नति ... ... ९८— ९९

सूरदास ... ... ९९—१००

अष्ट-छाप ... ... १००—१००

अन्य कविगण ... ... १००—१०२

अकबरी दरबार ... ... १०२—१०२

अन्य कवि ... ... १०२—१०३

तुलसीदास ... १०३—१०५

तुलसी-काल ... १०६—१०६

केशवदास आदि ... १०६—१०८

भाषा ... १०८—१०८

अध्याय ३—पूर्वालंकृत हिंदी ... १०९—१२२

उन्नति ... १०९—११०

		पृष्ठ
सेनापति-काल	...	११०—११२
बिहारी-काल	...	११२—११३
भूषण-काल	...	११३—११६
देव	...	११६—११८
पूर्व देव-काल	...	११८—११६
माध्यमिक देव-काल	...	११६—१२०
भाषा	...	१२०—१२२
अध्याय ४—उत्तरालंकृत हिंदी	...	१२२—१३४
दास-काल	...	१२३—१२५
सूदन-काल	...	१२५—१२७
रामचंद्र-काल	...	१२७—१२६
बेनी प्रबीन-काल	...	१२६—१३०
पद्माकर-काल	...	१३०—१३२
विचार	...	१३२—१३४
अध्याय ५—परिवर्त्तन कालिक हिंदी	...	१३४—१३६
महाराजा मानसिंह द्विजदेव-काल		१३४—१३७
दयानंद-काल	...	१३७—१३७
विचार	...	१३७—१३६
अध्याय ६—वर्तमान हिंदी	...	१३६—१४६
भारतेंदु-काल	...	१३६—१४०
हरिश्चंद्र	...	१४०—१४१
अन्य लेखक	...	१४१—१४२
शिवसिंह सेंगर	...	१४२—१४२
अन्य लेखक	...	१४३—१४४
विचार	...	१४४—१४४

पृष्ठ

गद्य-काल ... १४४—१४७
नूतन परिपाटी ... १४७—१४८
खड़ी बोली ... १४८—१४९
अध्याय ७—हिंदी का विकास ... १४९—१७८
गद्य-विभाग ... १४९—१५६
पूर्व प्रारंभिक हिंदी ... १४९—१४९
मेवाड़ की सनद ... १४९—१४९
उत्तर प्रारंभिक हिंदी ... १५०—१५०
महात्मा गोरखनाथजी ... १५०—१५०
प्रौढ़ माध्यमिक हिंदी ... १५०—१५०
गोस्वामी बिट्ठलनाथजी ... १५०—१५०
गंगा भाट ... १५०—१५०
गोस्वामी गोकुलनाथजी ... १५०—१५०
महात्मा नाभादासजी ... १५०—१५०
गोस्वामी तुलसीदासजी ... १५०—१५१
बनारसीदासजी ... १५१—१५१
जटमल ... १५१—१५१
पूर्वालंकृत हिंदी ... १५१—१५२
देवजी ... १५१—१५१
सूरति मिश्र ... १५१—१५१
भिखारीदासजी ... १५१—१५२
ललितकिशोरी व ललितमाधुरी १५२—१५२
उत्तरालंकृत हिंदी ... ... १५२—१५२
लल्लूलाल ... १५२—१५२
सदल मिश्र ... १५२—१५२

पृष्ठ

परिवर्तन काल की हिंदी ... १५२—१५६
सरदार ... ... १५२—१५२
राजा शिवप्रसाद ... ... १५२—१५२
राजा लक्ष्मणसिंह... ... १५३—१५३
श्रीस्वामी दयानंदजी ... १५३—१५३
भारतेंदु हरिश्चंद्र ... १५३—१५३
बालकृष्ण भट्ट ... ... १५३—१५४
गौरीशंकर-हीराचंद ओझा ... १५४—१५४
गदाधरसिंह ... ... १५४—१५४
श्यामसुंदरदास ... ... १५४—१५४
मन्नन द्विवेदी गजपुरी ... १५४—१५५
व्रजरत्नदास ... ... १५५—१५५
पद्य-विभाग ... ... १५६—१७८
पूर्व प्रारंभिक हिंदी ... १५६—१५७
भुवाल कवि ... ... १५६—१५६
चंद कवि ... ... १५६—१५६
मोहनलाल द्विज ... ... १५७—१५७
चंद पुत्र जल्हन कवि ... १५७—१५७
उत्तर प्रारंभिक हिंदी ... १५७—१५७
नरपति नाल्ह ... ... १५७—१५७
नल्लसिंह ... ... १५७—१५७
शारंगधर ... ... १५७—१५७
अमीर खुसरो ... ... १५७—१५७
महात्मा गोरखनाथ ... ... १५७—१५७
पूर्वमाध्यमिक हिंदी ... १५८—१५६

पृष्ठ

विद्यापति ठाकुर ... १५८—१५८
महात्मा कबीरदासजी ... १५८—१५८
नामदेव ... ... १५८—१५८
बाबा नानक ... ... १५९—१५९
कुतबन शेख़ ... ... १५९—१५९
सेन ... ... १५९—१५९
प्रौढ़ माध्यमिक हिंदी ... १५९—१६३
महात्मा श्रीसूरदासजी ... १५९—१५९
श्रीगोस्वामी हितहरिवंशजी १५९—१५९
कृपाराम ... ... १६०—१६०
मलिक मोहम्मद जायसी ... १६०—१६०
मीराबाई ... ... १६०—१६०
कृष्णदास पयअहारी ... १६०—१६०
नरोत्तमदास ... ... १६०—१६१
श्रीस्वामी हरिदासजी ... १६१—१६१
गंग ... ... १६१—१६१
गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी १६१—१६२
ख़ानख़ाना ... ... १६२—१६२
रसखान ... ... १६२—१६२
केशवदास ... ... १६२—१६३
नाभादास ... ... १६३—१६३
मुबारक ... ... १६३—१६३
पूर्वालंकृत हिंदी ... ... १६३—१६९
चिंतामणि त्रिपाठी ... ... १६३—१६३
तोष ... ... १६३—१६३

पृष्ठ

महाराजा जसवंतसिंह ... १६४—१६४
सेनापति ... ... १६४—१६४
राजा शंभुनाथ सुलंकी ... १६४—१६४
बिहारीलाल ... ... १६४—१६४
सबलसिंह ... ... १६५—१६५
कुलपति मिश्र ... ... १६५—१६५
सुखदेव मिश्र ... ... १६५—१६५
कालिदास ... ... १६५—१६५
भूषण त्रिपाठी ... ... १६५—१६६
मतिराम ... ... १६६—१६६
वृंद ... ... १६६—१६६
देवदत्त ... ... १६६—१६६
छत्र ... ... १६७—१६७
बैताल ... ... १६७—१६७
कवींद्र ... १६७—१६७
लाल ... ... १६७—१६८
महाराजा अजीतसिंह, माड़वार नरेश १६८—१६८
घनआनंद ... ... १६८—१६८
महाराजा नागरीदास ... १६८—१६८
सीतल ... ... १६८—१६८
गंजन ... ... १६८—१६९
उत्तरालंकृत हिंदी ... १६९—१७४
दास ... ... १६९—१६९
राजा गुरुदत्तसिंह ... ... १६९—१६९
रघुनाथ ... ... १६९—१६९

	पृष्ठ
चाचा वृंदावनदास ...	१६९—१७०
गिरिधर कविराय ...	१७०—१७०
नूरमहम्मद	१७०—१७०
ठाकुर	१७०—१७०
दूलह	१७०—१७०
सूदन	१७१—१७१
बैरीसाल	१७१—१७१
बोधा	१७१—१७२
रामचंद्र	१७२—१७२
थान	१७२—१७२
बेनी प्रवीन	१७२—१७२
पद्माकर	१७२—१७३
रामसहायदास	१७३—१७३
ग्वाल	१७३—१७३
चंद्रशेखर	१७३—१७४
प्रताप	१७४—१७४
परिवर्तन कालिक हिंदी ...	१७४—१७५
गणेशप्रसाद ...	१७४—१७४
द्विजदेव महाराजा मानसिंह ...	१७४—१७४
सेवक	१७४—१७४
राजा लक्ष्मणसिंह ...	१७४—१७५
वर्तमान कालिक हिंदी ...	१७५—१७८
भारतेंदुजी	१७५—१७५
प्रतापनारायण मिश्र ...	१७५—१७५
महावीरप्रसाद द्विवेदी ...	१७५—१७५

पृष्ठ

श्रीधर पाठक ... १७५—१७५
शिरमौर एवं शशिभाल ... १७५—१७६
रघुनाथप्रसाद ... ... १७६—१७६
मैथिलीशरण गुप्त ... १७६—१७६
लोचनप्रसाद पांडेय ... १७६—१७६
युगुलकिशोर मिश्र (ब्रजराज) ... १७७—१७८
जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ... १७७—१७८
जयशंकर "प्रसाद" ... १७७—१७८

आदि प्रकरण

प्रारंभिक एवं पूर्व माध्यमिक हिंदी १७९—२०६

अध्याय ८—पूर्व प्रारंभिक हिंदी ... १७९—१८२
विचार ... ... १८३—१८९
भुवाल ... ... १८९—१९०
जिनवल्लभ सूरि ... ... १९०—१९१
महाकवि चंदबरदाई ... १९५—२०६

अध्याय ९—उत्तर प्रारंभिक हिंदी ... २०६—२१४
महात्मा श्रीगोरखनाथजी ... २१०—२१२

अध्याय १०—पूर्व माध्यमिक हिंदी ... २१५—२३१
विद्यापति ठाकुर ... २१५—२१७
सोम सुंदर सूरि ... २१७—२१७
नारायणदेव ... २१७—२१८
मुनिसुंदर ... २१८—२१८
रामानंद ... २१८—२१८
जैदेव ... २१८—२१८
सेन ... २१९—२१९

		पृष्ठ
भवानंद	...	२१६—२१६
पीपा महाराज	...	२१६—२१६
धना	...	२१६—२१६
रैदास	...	२१६—२१६
अंगद	...	२१६—२१६
उमापति	...	२२०—२२०
झीमा	...	२२०—२२०
महात्मा कबीरदासजी	...	२२०—२२२
भगोदास या भग्गूदास	...	२२२—२२२
नामदेव	...	२२२—२२६
जयसागर	...	२२३—२२४
दयासागर सूरि	...	२२४—२२४
विष्णुदास	...	२२४—२२४
रामानंद	...	२२४—२२५
दामो	...	२२५—२२५
हरिवासुदेव	...	२२५—२२५
धरमदासजी	...	२२६—२२६
ज्ञानसागर	...	२२६—२२६
चरणदासजी	...	२२६—२२७
बाबा नानक	...	२२७—२२७
संवेगसुंदर	...	२२८—२२८
रामचंद्रसूरि	...	२२८—२२८
अनंतदास	...	२२८—२२८
वल्लभाचार्य स्वामी महाप्रभु	...	२२८—२२६
कुतुबन शेख़	...	२२६—२३१

प्रौढ़ माध्यमिक-प्रकरण

		पृष्ठ
(प्रौढ़ माध्यमिक हिंदी)	...	२३२—२५०
अध्याय ११—अष्टछाप और वैष्णव संप्रदाय		२३२—२३७
महात्मा श्रीसूरदासजी	...	२३७—२४२
ईश्वर सूरि ...	...	२४२—२४२
कृष्णदास ...	...	२४२—२४४
अजबेस भट्ट ...	...	२४४—२४४
परमानंददास ...	...	२४४—२४५
कुंभनदास ...	...	२४५—२४६
चतुर्भुजदास ...	...	२४६—२४७
छीतस्वामी ...	...	२४७—२४७
नंददास ...	...	२४७—२४९
गोविंदस्वामी ...	...	२४९—२५०
अध्याय १२—प्रौढ़ माध्यमिक काल के अन्य प्रभावशाली कविगण	...	२५०—२७७
चंद ...	...	२५०—२५०
गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजी	...	२५०—२५४
कृपाराम ...	...	२५४—२५५
मलिक मोहम्मद जायसी	...	२५५—२६२
मीराबाई ...	...	२६२—२६६
हरिदासजी ...	...	२६६—२६८
गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी	...	२६८—२७३
महाकवि केशवदासजी	...	२७४—२७७
अध्याय १३—प्रौढ़ माध्यमिक काल में हिंदी		२७७—२८६

पृष्ठ

अध्याय १४—सौरकाल के शेष कविगण ... २८७—३२२

नरवाहनजी ... ... २८७—२८७
हितकृष्णचंद्र गोस्वामी ... २८७—२८७
श्रीगोपीनाथ प्रभु ... ... २८७—२८७
बीठलदासजी ... ... २८७—२८७
छीहल ... ... २८८—२८८
गौरवदास जैन ... ... २८८—२८८
ठकुरसी ... ... २८८—२८९
बालचंद्र जैन ... ... २८९—२८९
लालचदास ... ... २८९—२८९
महापात्र नरहरि बंदीजन ... २८९—२९०
स्वामी निपटनिरंजन ... २९०—२९१
श्रीगोस्वामी बिट्ठलनाथजी ... २९१—२९२
नरोत्तमदास ... ... २९२—२९४
हरराज ... ... २९४—२९५
श्रीसेवकजी ... ... २९४—२९५
हरिवंश अली ... ... २९५—२९५
प्रपन्नगेसानंद वैष्णव ... ... २९५—२९५
महाराजा टोडरमल ... २९५—२९६
बीरबल (ब्रह्म) महाराजा ... २९६—२९९
व्यासजी ... ... २९९—२९९
बिट्ठल विपुल ... ... २९९—३००
गंग ... ... ३००—३०६
तानसेन ... ... ३०६—३०६
महाराजा पृथ्वीराज ... ... ३०७—३०७

			पृष्ठ
मनोहर कवि	...	...	३०७—३०८
गोस्वामी गोकुलनाथजी		...	३०८—३०८
श्रीदादूदयालजी	...	...	३०८—३१०
गंग ब्रह्मभट्ट	...	...	३१०—३१०
श्रीभट्ट महाराज	...	...	३१०—३११
बिहारिनिदासजी	...	...	३११—३१२
नागरीदास श्रीहितबन चंद्र के शिष्य			३१२—३१२
मुनिआनंद	...	...	३१२—३१३
लावण्यसमय गणि	...	...	३१३—३१३
सहजसुंदर	...	...	३१३—३१३
अमरदास	...	...	३१३—३१३
सिद्धराम	...	...	३१३—३१३
धर्मदास गणि	...	...	३१३—३१३
छेम बंदीजन	...	...	३१३—३१४
मोतीलाल बाँसी	...	...	३१४—३१४
सहजसुंदर	...	...	३१४—३१४
सूरदास	...	...	३१४—३१४
केशवदास	...	...	३१४—३१४
अजबेस	...	...	३१४—३१४
गंगा	...	...	३१४—३१५
जमुना	...	...	३१५—३१५
गदाधर मिश्र	...	...	३१५—३१५
दील्ह	...	...	३१५—३१५
माधवदास	...	...	३१५—३१५
आसकरनदास	...	...	३१५—३१५

पृष्ठ

धरमदास ... ... ३१५—३१५
फ़हीम ... ... ३१५—३१६
रामदास बाबा ... ... ३१६—३१६
हरिराय ... ... ३१६—३१६
इबराहीम ... ... ३१६—३१६
गोविंदराम ... ... ३१६—३१६
ऊधोराम ... ... ३१६—३१७
गोस्वामी बनचंद्रजी ... ... ३१७—३१७
मानराय ... ... ३१७—३१७
लालदास स्वामी ... ... ३१७—३१७
गोसानंद ... ... ३१७—३१७
विनयसमुद्र ... ... ३१७—३१७
ब्रह्मराय मल ... ... ३१७—३१७
गोप ... ... ३१८—३१८
जोध ... ... ३१८—३१८
पुरुषोत्तम ... ... ३१८—३१८
भगवानदास ... ... ३१८—३१८
बंदन ... ... ३१८—३१८
मोहनलाल मिश्र ... ... ३१८—३१८
रायमल्ल पांडे ... ... ३१९—३१९
गोपा ... ... ३१९—३१९
गंगाप्रसाद ... ... ३१९—३१९
जगदीश ... ... ३१९—३१९
नरमिया उपनाम नरमी ... ३१९—३१९
प्रसिद्ध ... ... ३१९—३१९

			पृष्ठ
रामचंद्र	...	...	३२०—३२०
लक्ष्मणशरणदास	...	...	३२०—३२०
सर्वजीत	...	...	३२०—३२०
गोपाल	...	...	३२०—३२०
आनंद	...	...	३२०—३२०
परबत	...	...	३२०—३२०
अभयराम	...	...	३२०—३२१
कृष्णचंद्र गोस्वामी	...	...	३२१—३२१
जमाल	...	...	३२१—३२१
भगवत	...	...	३२१—३२१
गेहर गोपाल	...	...	३२१—३२१
चतुरविहारी	...	...	३२१—३२१
जैतराम	...	...	३२१—३२२
नरसी महताजी	...	...	३२२—३२२
नाथ ब्रजवासी	...	...	३२२—३२२
सोनकुँवरि	...	...	३२२—३२२
अध्याय १५—पूर्व तुलसी-काल		...	३२२—३४५
अकबर शाह	...	...	३२२—३२३
भगवानहित	...	...	३२३—३२४
रसिक	...	...	३२४—३२५
अग्रदास	...	...	३२५—३२५
गदाधर भट्ट	...	...	३२५—३२६
करनेस	...	...	३२६—३२६
श्रीहितरूपलाल गोस्वामी		...	३२६—३२७
बलभद्र मिश्र	...	...	३२७—३२६

			पृष्ठ
होलराय	...	...	३२९—३२९
रहीम अब्दुल्‌रहीम खानखाना			३२९—३३६
लालचंद	...	...	३३६—३३७
लालदास	...	...	३३७—३३७
अनंतदास साधु	...	...	३३७—३३७
रसखान	...	...	३३७—३४१
कल्यानदास	...	...	३४१—३४१
केवलराम	...	...	३४१—३४१
गदाधरदास	...	...	३४१—३४१
जगामग	...	...	३४१—३४१
देवा	...	...	३४१—३४१
पद्मनाभ	...	...	३४२—३४२
जीवन	...	...	३४२—३४२
केहरी	...	...	३४२—३४२
गंग उपनाम गंगग्वाल		...	३४२—३४२
मुनिलाल	...	...	३४२—३४२
चंदसखी	...	...	३४२—३४२
तख़्तमल्ल	...	...	३४२—३४३
गणेशजी	...	...	३४३—३४३
गोविंददास	...	...	३४३—३४३
जलालुद्दीन	...	...	३४३—३४३
नरवाहनजी	...	...	३४३—३४३
नारायणदास	...	...	३४३—३४३
नंदलाल	...	...	३४३—३४४
मानिकचंद	...	...	३४४—३४४

पृष्ठ

अमृतराय ... ... ३४४—३४४
चेतनचंद्र ... ... ३४४—३४४
हरिशंकर ... ... ३४४—३४४
उदैसिंह महाराजा माड़वार ... ३४४—३४५
मुन्नीलाल ... ... ३४५—३४५
पाँडे जिनदास ... ... ३४५—३४५
कल्याणदेव जैन... ... ३४५—३४५
अध्याय १६—माध्यमिक तुलसी-काल ... ३४५—३५२
दुरसा ... ... ३४५—३४६
नागरीदास ... ... ३४६—३४६
प्रवीणराय ... ... ३४६—३४६
लालनदास ... ... ३४७—३४७
नाभादासजी व प्रियादासजी ... ३४७—३४९
नाभादासजी ... ... ३४९—३४९
प्रियादासजी ... ... ३५०—३५१
कादिरबक्स ... ... ३५१—३५२
अमरेश ... ... ३५२—३५२
मुक्तामणिदास ... ... ३५२—३५२
प्रवीन ... ... ३५२—३५३
मुबारक ... ... ३५३—३५४
बनारसीदास ... ... ३५४—३५६
उसमान ... ... ३५६—३५७
ओलीराम ... ... ३५७—३५७
मोहनदास ... ... ३५७—३५७
नैनसुख ... ... ३५७—३५७

			पृष्ठ
अगर	...	...	३५७—३५७
कुंजलालजी	...	...	३५७—३५७
जमालुद्दीन	...	...	३५७—३५८
झूंठा स्वामी	...	...	३५८—३५८
दामोदरचंद्र	...	...	३५८—३५८
नारायण भट्ट स्वामी		...	३५८—३५८
नंदन	...	...	३५८—३५८
हितविट्ठलजी	...	...	३५८—३५८
इबराहीम	...	...	३५८—३५९
रानी रायधरी	...	...	३५९—३५९
हरिराम	...	...	३५९—३५९
मालदेव जैन	...	...	३५९—३५९
खेमजी	...	...	३५९—३५९
खेमदास	...	...	३५९—३६०
धीरजनरिंद	...	...	३६०—३६०
पद्मचारिणी	...	...	३६०—३६०
नज़ीर	...	...	३६०—३६०
अनंतदास	...	...	३६०—३६०
कान्हरदास	...	...	३६०—३६०
काशीनाथ	...	...	३६०—३६१
कृष्णजीवन लच्छीराम		...	३६१—३६१
जनगोपाल	...	...	३६१—३६१
निधि	...	...	३६१—३६१
नीलकंठ मिश्र	...	...	३६१—३६१
नीलाधर	...	...	३६१—३६१

			पृष्ठ
बालकृष्ण त्रिपाठी	...	...	३६१—३६१
बेनीमाधवदास	...	...	३६१—३६२
विजयदेव सूरि	...	...	३६२—३६२
लक्ष्मीनारायण मैथिल	...	...	३६२—३६२
माधव	...	...	३६२—३६२
अभिराम	...	...	३६२—३६२
उदयराम	...	...	३६२—३६२
केशव	...	...	३६२—३६२
खेम	...	...	३६२—३६३
द्विजेश	...	...	३६३—३६३
धनुराय	...	...	३६३—३६३
ब्रजचंद	...	...	३६३—३६३
ब्रजजीवन	...	...	३६३—३६३
मनोभव	...	...	३६३—३६३
रसरास	...	...	३६३—३६३
लालमनि	...	...	३६३—३६३
हरिनाम	...	...	३६३—३६३
उदयराज जैन जती	...	...	३६३—३६४
गदाधरजी	...	...	३६४—३६४
घनश्याम शुक्ल	...	...	३६४—३६४
निहाल	...	...	३६४—३६४
पीतांबरदासजी	...	...	३६४—३६४
महाराजा मुकुंदसिंह हाड़ा		...	३६४—३६४
हरिरामदास प्राचीन	...	...	३६४—३६५
चूरामणि	...	...	३६५—३६५

पृष्ठ

ऋषभदास जैन ... ... ३६५—३६५
धर्मदास ... ... ३६५—३६५
रायमल्ल ... ... ३६५—३६५
कुँवरपाल ... ... ३६५—३६५
मोहन माथुर ... ... ३६५—३६६
कल्यानी ... ... ३६६—३६६
गिरिधर स्वामी ... ... ३६६—३६६
नवल स्त्री ... ... ३६६—३६६
नाथ भट्ट ... ... ३६६—३६६
रघुनाथ ब्राह्मण ... ... ३६६—३६६
रूपचंद ... ... ३६६—३६६
श्रीविष्णु विचित्र ... ... ३६७—३६७
हरखचंद ... ... ३६७—३६७
हेमविजय ... ... ३६७—३६८
प्राणचंद्र ... ... ३६८—३६८
भूपति ... ... ३६८—३६८
मोहन ... ... ३६८—३६८
रघुनाथ ... ... ३६८—३६८
पद्म भगत ... ... ३६८—३६८
विद्याकमल ... ... ३६८—३६९
मुनि लावण्य ... ... ३६९—३६९
विहारीवल्लभ ... ... ३६९—३६९
वृंदावनदास ... ... ३६९—३६९
अध्याय १७—अंतिम तुलसी-काल के शेष कविगण ३६९—३७९
लीलाधर ... ... ३६९—३७०

			पृष्ठ
श्रीसुंदरदासजी	...	...	३७०—३७३
ताहिर	...	...	३७३—३७४
घासीराम	...	...	३७४—३७४
जटमल	...	...	३७५—३७५
वंशीधर मिश्र	...	...	३७५—३७५
मुकुंददास	...	...	३७५—३७५
बान कवि पाठक	...	...	३७५—३७५
माधवदास	...	...	३७६—३७६
दिलदार	...	...	३७६—३७६
विदुष व्रजवासी	...	...	३७६—३७६
महाराजा मानसिंह	...	...	३७६—३७६
गुणिसूरि जैनी	...	...	३७६—३७६
चतुर्भुजसहाय	...	...	३७६—३७६
दयालदास	...	...	३७७—३७७
बूटा उपनाम वृखराय	...	...	३७७—३७७
रतनेस	...	...	३७७—३७७
काशीराम	...	...	३७७—३७७
जगन	...	...	३७७—३७७
तुलसीदास	...	...	३७७—३७८
दौलत	...	...	३७८—३७८
बारक	...	...	३७८—३७८
विश्वनाथ	...	...	३७८—३७८
व्रजपति भट्ट	...	...	३७८—३७८
शेख़ नबी	...	...	३७८—३७८
समयसुंदर	...	...	३७८—३७९

	पृष्ठ
संतदास	३७९—३७६
हृदयराम	३७९—३७९

भूमिका (२)

(द्वितीय संस्करण की भूमिका)

इस ग्रंथ के बनाने का भाव हमारे चित्त में कब और कैसे उठा, तथा उसके विषय में अन्य जानने योग्य बातों का उल्लेख हम प्रथम संस्करण की १०४ पृष्ठवाली भूमिका में सविस्तर कर चुके हैं। उन्हें यहाँ पर दोहराने की आवश्यकता बिलकुल नहीं है और इस संस्करण की भूमिका में हमें विशेष रूप से कुछ कहना भी तादृश अनिवार्य नहीं प्रतीत होता, तथापि ५-७ पृष्ठों में कुछ थोड़ा-सा कथनोपकथन कर देना कदाचित् अनुचित न माना जाय।

इस ग्रंथ का प्रथम संस्करण संवत् १९७० (सन् १९१३) में खंडवा व प्रयाग की "हिंदी-ग्रंथ-प्रसारक मंडली" द्वारा प्रयाग के इंडियन-प्रेस में छपवाकर प्रकाशित कराया गया और वह हाथों हाथ बिकने लगा। तथापि ग्रंथ भारी होने, तथा कुछ ही समय के पश्चात् उक्त मंडली के उत्साही मंत्री श्रीयुत माणिक्यचंद्र जैन की अकाल और शोकजनक मृत्यु हो जाने, के कारण उसके प्रचार में बाधाएँ पड़ गईं, यहाँ तक कि कभी-कभी उसके नियत मूल्य ५) के ठौर कुछ चालबाज़ पुस्तक-विक्रेताओं ने उसे १०), १५) से २०), २५) तक को बेंचा और भला-चंगा लाभ उठाया। फिर भी अनेक सज्जनों को ग्रंथ कई साल तक अप्राप्य-सा रहा और इस प्रकार उसके प्रचार में बड़ी अड़चन हो गई, यद्यपि कई विश्वविद्यालयों (यथा कलकत्ता पटना, बनारस, इलाहाबाद, लखनऊ, दिल्ली एवं पंजाब) में वह बी० ए० एवं एम्० ए० की परीक्षाओं में पाठ्य पुस्तक भी समय-समय पर रहा अथवा अब है। हिंदी विद्वानों तथा जनता ने भी

इसका प्रायः आशातीत आदर करके हमारा उत्साह ख़ूब ही बढ़ाया, जिसके लिये हम उनके परम कृतज्ञ हैं, तो भी हमने यह उचित नहीं समझा कि स्वर्गीय बाबू माणिक्यचंद्र जैन के उत्तराधिकारियों के पास उसकी सैकड़ों प्रतियाँ वर्तमान रहते हुए भी हम ग्रंथ का द्वितीय संस्करण कहीं अन्यत्र से प्रकाशित करा दें, यद्यपि अपने प्राचीन नियम के अनुसार हमने जैनजी अथवा मंडली से बिना एक पैसा भी लिए हुए ही उसके प्रथम संस्करण के निकालने का अधिकार उन्हें दे दिया था, जैसे कि अब द्वितीय संस्करण के प्रकाशित करने का अधिकार हमने गंगा-पुस्तकमाला के परमोत्साही एवं हिंदी-प्रेमी संचालक, तथा प्रसिद्ध मासिक पत्रिका "माधुरी" के संपादक, पंडित दुलारेलालजी भार्गव को इस बार उसी भाँति दे रक्खा है। अस्तु, इन्हीं सब कारणों से १२ वर्ष तक इस ग्रंथ का द्वितीय संस्करण प्रकाशित न हो सका जिसके लिये हमारे पास अनेक उपालंभ तक आए। अभी गत अप्रैल मास में हमारे प्राचीन मित्र, विहार सरकार के फ़ाइनांस मेम्बर माननीय मिस्टर सच्चिदानंदसिंह ने हमें (श्यामविहारी मिश्र को) लिखा कि वे दो वर्ष से अनेक स्थानों को लिखने पर भी "मिश्रबंधु-विनोद" की एक प्रति कहीं से न पा सके। हर्ष का विषय है कि अब तेरहवें वर्ष में इस ग्रंथ के द्वितीय संस्करण के प्रकाशित होने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। इसकी माँग देखते हुए जान तो यही पड़ता है कि कदाचित् एक ही दो साल के भीतर तृतीय संस्करण निकालने की आवश्यकता हो जाय, पर यदि इसके लेखकों की अयोग्यता का विचार करके हिंदी के विद्वान् इससे मुहँ मोड़ लें तो बात ही दूसरी है।

पिछले संस्करण में १२१३ पृष्ठों के तीन भागों में यह ग्रंथ छपा था जिस में ३७१७ लेखकों के विषय में कुछ लिखा गया था। इस बार अनेक अन्य लेखकों का पता चला है एवं कुछ अन्य नवीन

बातें भी आवेंगी, जिससे प्रतीत होता है कि प्रायः १७००-१८०० से कम पृष्ठ एवं कोई ४५०० से कम लेखक न होंगे तथा चार भागों में ग्रंथ निकालना पड़ेगा। मूल्य भी इन्हीं एवं अन्य स्पष्ट कारणों से अवश्य ही कुछ बढ़ जायगा, यद्यपि हमें पूर्ण विश्वास है कि प्रकाशक महाशय इसमें अपने हिंदी-प्रेम का परिचय देते हुए जितना कम मूल्य हो सकेगा नियत करेंगे। इस बार अँगरेज़ी भाषा की भूमिका छपाने की आवश्यकता नहीं समझी गई। इस संस्करण की दो विशेष ध्यान रखने योग्य बातें नीचे दी जाती हैं—

(१) पुराने कवियों तथा गद्यकारों के समय में ज्ञान-विस्तार के कारण कभी-कभी हेर-फेर करना पड़ा है। ऐसी दशा में उनके पुराने नंबर काटे नहीं गए बरन् नवीन नंबर का हवाला वहाँ पर दे दिया गया है। उसका कारण स्पष्ट ही है। लोग जब कहीं किसी कवि का हवाला "विनोद" के संबंध में देते हैं तब प्रायः उसका नंबर ही लिख देते हैं क्योंकि प्रत्येक संस्करण में पृष्ठ-संख्या का हेर-फेर हो जाना अनिवार्य है। इससे यदि नंबरों में भी हेर-फेर कर दिए जायँ तो पूरा गड़बड़ मच जाय। इसी कारण आईन ग्रंथों में दफ़ाएँ जैसी की तैसी बनाए रखते हैं और यदि कोई दफ़ा मनसूख़ होती है, तो भी उसका नंबर अपने स्थान पर बना ही रहता है, तथा यदि कोई नई दफ़ा बढ़ी, तो वह अपने समुचित स्थान पर इस भाँति लिखी जाती है कि दफ़ा १०८ अ, दफ़ा १२५ ब, दफ़ा ३०४ अ, इत्यादि। इस प्रकार भारतीय दंड-संग्रह (Indian Penal Code) की दफ़ाओं के पूर्णांक (Whole number) जैसे लॉर्ड मेकाले के समय में थे, वैसे ही आज भी वर्तमान हैं; यद्यपि अनेक दफ़ाएँ मनसूख़ हो चुकीं व अनेक नई बन गई हैं।

(२) ऊपर लिखे नियम के अनुसार नव-ज्ञात कवियों एवं लेखकों के नंबर उस समय के अन्य कवियों व लेखकों के नंबर के

बाद उसी नंबर के नीचे बटा लगाकर लिखे गए हैं। यथा नंबर ८६/१, ८६/२, ८६/३, इत्यादि। इन दोनों नियमों के पालन के कारण "विनोद" के किसी कवि या लेखक का हवाला केवल नंबर से दिया जा सकता है और उसके अनेकानेक संस्करण हो जाने पर भी कभी किसी प्रकार की गड़बड़ी न पड़ेगी।

हम ऊपर लिख आए हैं कि इस ग्रंथ का हिंदी मर्मज्ञों तथा सर्व-साधारण ने अच्छा सम्मान किया, पर इससे यह न समझना चाहिए कि इसकी खंडनालोचना हुई ही नहीं। कईएक सज्जनों ने जी खोल-कर ऐसा भी किया, यहाँ तक कि हमें प्रायः गाली-प्रदान का गौरव भी मिल ही गया तथा हँसी-ठट्ठा उड़ाने की तो कुछ बात ही नहीं। अस्तु, हमने ऐसी बातों का उत्तर देना कभी उचित समझा ही नहीं; क्योंकि तू-तू मैं-मैं करना हमें रुचिकर नहीं है। हम नहीं कहते कि विनोद के प्रथम संस्करण में कोई भूलें थीं ही नहीं अथवा इस संस्करण में भूलें नहीं रह गई हैं, परंतु कतिपय महानुभाव हमारे निवेदनों पर ध्यान तक दिए विना उन्हीं बातों के कारण आक्रमण करने लगे जिनका पूर्ण उत्तर प्रथम संस्करण की ही भूमिका में दर्ज था। जैसे, दो चार सज्जनों ने हमारे श्रेणी-विभाग के प्रयत्न पर चिढ़कर यह जानने की इच्छा प्रकट की कि हमारे पास ऐसा कौन-सा तराज़ू था, जिससे हमने कवियों के गुण-दोषों को ऐसा तौल लिया कि उनकी भिन्न-भिन्न ६-७ श्रेणियाँ ही स्थिर कर दीं, यथा नवरत्न की, सेनापति को, दास की, पद्माकर की, तोष की साधा-रण एवं हीन श्रेणियाँ। हम यह नहीं कह सकते कि हमारा श्रेणी-विभाग का प्रयत्न नितांत ठीक है अथवा अनेकानेक कवियों को किसी एक श्रेणी में रखने में हमने कोई भूल की हो नहीं, पर क्या कोई सज्जन यह कहने का साहस कर सकते हैं कि तुलसीदास और मधु-सूदनदास में कोई अंतर ही नहीं? इस प्रकार का प्रयत्न हमने पहले-

पहल किया और संभव है कि ऐसा करने में हमने अनेक भूलें की हों, पर हमारी समझ में यह बिलकुल नहीं आता कि इसमें हमने पातक का क्या काम किया! "तराज़ू" के विषय में हम यही कहना चाहते हैं कि उसकी विवेचना प्रथम संस्करण की भूमिका के अंतर्गत "श्रेणी-विभाग" और "काव्योत्कर्ष का परखना"-शीर्षक दो प्रबंधों में पृष्ठ २७ से ५६ तक हमने कुछ विस्तार के साथ की है। यदि उसे देखे विना ही कोई उन्हीं प्रश्नों के उत्तर हमसे माँगने लगे तो हम कहो क्या सकते हैं? हाँ, यह अवश्य संभव है कि हैरान होकर हम यही सोचने लगें कि "कविता समझावनों ऽ॥ को सविता गहि भूमि पै डारनो है।" यही हाल उन आलोचकों का है जो "भाषा-संबंधी विचार"-शीर्षक भूमिकांश (पृष्ठ ६१ से ८४ तक) देखे विना ही हमारी उस विषयक अनेक प्रकार की "अशुद्धियाँ" निकालने दौड़ते हैं। निदान ऐसी आलोचनाओं का उत्तर देना व्यर्थ ही प्रतीत होता है और इसी से हम उनके उत्तर देने में प्रायः असमर्थ रहा करते हैं। कुछ आलोचनाओं के उत्तर कभी-कभी दिए भी गए और कतिपय बातों को ठीक पाकर हमनें उनसे लाभ भी उठाया। प्रथम संस्करण की ऐसी भूलें इस संस्करण से यथासंभव निकाल दी गई हैं। हमने सुना है कि हिंदी के एक "लेक्चरर" महाशय ने कई बार यह राय प्रकट की है कि "विनोद" हिंदी-कवियों एवं लेखकों की एक नामावली (Catalogue) मात्र है। यदि सच्चे हृदय से उनकी यही राय है तो हम लेकचरर महाशय को वास्तव में बड़े ही साहसकर्ता कहने से रुक नहीं सकते। यदि एक-एक कवि का नाम-मात्र दस-दस बारह-बारह पृष्ठों तक लिखा जा सकता हो, यदि केवल ३०१२ कवियों की कैटलाग (सूची) बना देने के लिये प्रायः १५०० पृष्ठों की आवश्यकता पड़ जाती हो, यदि "दशहस्ता हरीतकी" वाली प्रसिद्ध कहावत अब वास्तव में चरि-

तार्थ होने लगी हो, तो लेक्चरर महाशय की बात भी अवश्य ही ठीक माननी पड़ेगी। निदान ऐसी बे-सिर-पैर की आलोचनाओं का उत्तर देने से कोई लाभ नहीं।

इस मर्तबा हमें बहुत-सा नया मसाला मिला है, जिससे हिंदी की व्यापकता, और उसका भारतीय राष्ट्र-भाषा होना भली भाँति सिद्ध होता है। भारतवर्ष के सभी प्रांतों में हिंदी के कवि और लेखक पाए गए हैं यहाँ तक कि मद्रास भी ख़ाली नहीं रहने पाया। कम-से-कम सात-आठ सौ नवज्ञात कवियों और लेखकों का पता इस बार लगा है। चंदबरदाई तक से पहले के एक सत्कवि "भुवाल" का पता "हिंदी-हस्त-लिखित पुस्तकों की खोज" में लगा है जिसने संवत् १००० में श्रीमद् भगवद्गीता का हिंदी-पद्य में अनुवाद किया था, जो अब तक वर्तमान है। इसका हाल इस संस्करण के पृष्ठ १८९-१९० पर मिलेगा। अन्य अनेक अच्छे प्रतिभाशाली कवि भी विदित हुए हैं। हम प्रथम संस्करण में भी लिख चुके हैं कि लोगों के नाम के आगे पंडित, बाबू, मुंशी, इत्यादि सम्मान-सूचक शब्द हमने नहीं लिखे हैं, परंतु कुछ महाशय इस पर भी अप्रसन्न-से हुए। उनसे हमारा पुनः निवेदन है कि ग्रंथों में ऐसी ही रीति बरती जाती है। पंडित तुलसीदास, बाबू सूरदास, शेख़ कबीरदास, इत्यादि कभी नहीं लिखा जाता। कभी-कभी गोस्वामी, महात्मा इत्यादि बहुत बड़े महानुभावों के नाम के पहले लगा दिया जाता है, पर यह भी सदा अथवा सभी ठौर नहीं। फिर सब लोग ऐसे महात्माओं के जोड़ के होते भी नहीं। इससे हमने बहुत ही कम स्थानों को छोड़कर ये सम्मान-सूचक शब्द कहीं भी नहीं लगाए हैं, यहाँ तक कि महात्माओं के नाम के पहले भी बाबा, महात्मा इत्यादि शब्द तक प्रायः नहीं जोड़े हैं। आशा है कि वाचकवृंद हमारी इस कार्यवाही पर रुष्ट न होंगे।

अब हम उन सज्जनों को धन्यवाद देकर इस भूमिका को यहीं पर समाप्त करेंगे जिन्होंने हमें इस द्वितीय संस्करण के ठीक करने एवं वर्तमान काल तक लाने में अच्छी सहायता दी है।

हमारे प्राचीन मित्र और हिंदी-जगत् के सुपरिचित स्वर्गीय कवि गोविंदगिल्लाभाईजी ने काठियावाड़ से कवियों और गद्य-लेखकों की विवेचना-सहित एक बृहत् सूची भेजी जिससे प्रायः ५०० अज्ञात लोगों का हमें पता चला। श्रीयुत भास्कर रामचंद्र भालेराव ग्वालियर-निवासी ने गुजरात, महाराष्ट्र, बुँदेलखंड इत्यादि प्रांतों के १००-१५० कवियों के विषय में बड़े अमूल्य लेख भेजने की कृपा की। वृंदावन के श्रीहित रूपलाल गोस्वामीजी ने उस प्रांत के कवियों के संबंध में बड़ी सहायता दी एवं ४०-५० नए नाम विवेचना-सहित दिए। श्रीभवानीशंकर याज्ञिक से अनेक कवियों के समय स्थिर करने तथा एक ही कवि का दो-तीन बार दोहराकर नाम आ जाने से बचने में विशेष सहायता मिली। अन्य अनेक महाशयों ने भी थोड़ी बहुत सहायता दी। हम इन सभी महानुभावों के विशेष ऋणी हैं और उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं। अंत में यह भी लिख देना उचित है कि प्रिय दुलारेलाल भार्गव एवं चिरंजीव कृष्णविहारी मिश्र ने इस संस्करण के संपादन में बड़ी योग्यता एवं परिश्रम से काम किया और कर रहे हैं जिसका साधुवाद देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। यदि यह संस्करण हिंदी-मर्मज्ञों को कुछ भी रुचिकर हुआ तो हम अपने को बड़ा भाग्यशाली समझेंगे।

लखनऊ
मार्गशीर्ष, कृष्ण १४
संवत् १९८३

गणेशविहारी मिश्र
श्यामविहारी मिश्र
शुकदेवविहारी मिश्र
"मिश्र-बंधु"

भूमिका

(प्रथम संस्करण की)

ग्रंथ-निर्माण

दिसंबर १९०१ (संवत् १९५८) की सरस्वती पत्रिका में हमने हिंदी-साहित्य इतिहास-विषयक एक ग्रंथ बनाने की इच्छा प्रकट की थी और यह बात पृष्ठ ४१० तथा ४११ पर इस प्रकार कही गई थी—

"हमने भाषा के उत्तमोत्तम शत नवीन और प्राचीन कवियों की कविता पर समालोचना लिखने का निश्चय किया है और उन आलोचनात्मक लेखों के आधार पर हिंदी का जन्म और गौरव या अन्य किसी ऐसे ही नाम की पुस्तक निर्माण करने का भी विचार है। इसमें हिंदी में उसके जन्म से अद्यावधि क्या-क्या उन्नति तथा अवनति हुई है और उसके स्वरूप में क्या-क्या हेर-फेर हुए हैं, इनका वर्णन किया चाहते हैं। यह कार्य समालोचना-संबंधी ग्रंथों के बहुतायत के प्रस्तुत हुए विना और किसी प्रकार नहीं हो सकता। इसी हेतु हमने समालोचना करने का प्रारंभ किया है और जब शंकर की कृपा से एक सौ उत्तमोत्तम कवियों की समालोचना लिख आयगी, तब उक्त ग्रंथ के बनाने का प्रयत्न करेंगे। अपने इस अभिप्राय को हमने इस कारण विस्तारपूर्वक बतलाया है कि कदाचित् कोई सुलेखक हमारे इस विचार को उचित समझ कृपा करके समालोचनाओं द्वारा हमारी सहायता करें, अथवा स्वयं उस ग्रंथ के निर्माण करने का प्रयत्न करें। यदि कतिपय विद्वज्जन हमारी सहायता करेंगे, तो हम भी अपने अभीष्ट-साधन (उक्त ग्रंथ के निर्माण) में बहुत शीघ्र सफलमनोरथ होंगे, नहीं तो कई वर्ष इस कार्य में लगने संभव हैं।"

इसी निश्चयानुसार हमारा ध्यान समालोचनाओं की ओर रहा। संवत् १९६२ के लगभग भूषण की रचना पर एक समालोचना हम लोगों ने जयपुर के समालोचक पत्र में छपवाई। उसे देखकर काशी-नागरीप्रचारिणी सभा ने भूषण-ग्रंथावली का संपादन-कार्य हमें सौंपा। संवत् १९६४ के लगभग सभा ने हमसे प्रायः २०० पृष्ठों का एक साहित्य-इतिहास लिखने की इच्छा प्रकट की। उस समय हम कालिदास-कृत रघुवंश का पद्यानुवाद कर रहे थे। उसे छोड़कर हमने समालोचना लिखने का काम उठाया, जो एक वर्ष तक तो निर्विघ्न चलता रहा, परंतु फिर ढाई वर्ष पर्यंत उसमें शिथिलता रही, और हमारा ध्यान रूस और जापान के इतिहास एवं "भारत-विनय"-नामक पद्य-ग्रंथ लिखने की ओर चला गया। ये ग्रंथ इन्हीं ढाई वर्षों में समाप्त हुए, जिनमें से रूस तथा जापान के इतिहास प्रकाशित भी हो गए हैं। प्रथम हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के समय विषय-निर्द्धारिणी समिति में हिंदी साहित्य के इतिहास के विषय में वादविवाद हुआ और समिति ने इसके शीघ्र बन जाने की इच्छा प्रकट की। उक्त समिति के हम भी सभासद् थे, सो अपनी अकर्मण्यता पर हमें ग्लानि हुई। उसी समय से इतिहास का कार्य फिर पूर्ण परिश्रम से चलने लगा और संवत् १९६८ में ग्रंथ बनकर तैयार हो गया, केवल अंतिम अध्याय में कुछ बढ़ाना एवं भूमिका का लिखना शेष रह गया। संवत् १९६९ के मई मास में छुट्टी लेकर हम लोगों ने यह कार्य भी समाप्त कर डाला।

प्रकाशन

पहले हम यह ग्रंथ संक्षेप में लिखना चाहते थे, परंतु धीरे-धीरे इसका आकार बढ़ता गया। तब हमने नव सर्वोत्कृष्ट कवियों से संबंध रखनेवाले लेख "हिंदी-नवरत्न" * के नाम से प्रयाग की

* हिंदी-नवरत्न का द्वितीय, संशोधित संस्करण भी अब गंगा-पुस्तकमाला में निकला है।

"हिंदी-ग्रंथ-प्रसारक मंडली" द्वारा एक पृथक् ग्रंथ-रूप में छपवा दिए। फिर भी शेष इतिहास ग्रंथ का आकार कुछ बढ़ अवश्य गया, परंतु उसके घटाने का हमने विशेष प्रयत्न भी नहीं किया। हमने पहले काशी-नागरीप्रचारिणी सभा को वचन दिया था कि यह ग्रंथ उसी को प्रकाशनार्थ दिया जायगा। पीछे से ग्रंथ-प्रसारक मंडली ने इसे छापने का अनुरोध किया। सभा ने भी मंडली द्वारा ही इसका प्रकाशित होना स्वीकार कर लिया। हिंदी-नवरत्न के छापने में मंडली ने बड़ा सराहनीय उत्साह दिखलाया था। इसी से हमको भी उसी के द्वारा इस ग्रंथ के प्रकाशित होने में प्रसन्नता हुई। हमने आज तक अपने किसी हिंदी-संबंधी कार्य द्वारा कोई आर्थिक लाभ नहीं उठाया, इसी से स्वभावतः हमें उत्साही प्रकाशकों का प्रोत्साहन रुचिकर होता है।

नाम

पहले हम इस ग्रंथ का नाम "हिंदी-साहित्य का इतिहास" रखनेवाले थे, परंतु इतिहास की गंभीरता पर विचार करने से ज्ञात हुआ कि हममें साहित्य-इतिहास लिखने की पात्रता नहीं है। फिर इतिहास-ग्रंथ में छोटे-बड़े सभी कवियों एवं लेखकों को स्थान नहीं मिल सकता। उसमें भाषा-संबंधी गुणों एवं परिवर्तनों पर तो मुख्य रूप से ध्यान देना पड़ेगा, कवियों पर गौण रूप से; परंतु हमने कवियों पर भी पूरा ध्यान रक्खा है। इस कारण यह ग्रंथ इतिहास से इतर बातों का भी कथन करता है। हमने इसमें इतिहास-संबंधी सभी विषयों एवं गुणों के लाने का यथासाध्य पूर्ण प्रयत्न किया, परंतु जिन बातों का इतिहास में होना अनावश्यक है, उन्हें भी ग्रंथ से नहीं हटाया। हमारे विचार में प्रायः सभी मुख्य एवं अमुख्य कवियों के नाम तथा उनके ग्रंथों के कथन से एक तो इतिहास में पूर्णता आती है और दूसरे हिंदी-भांडार का गौरव प्रकट होता है। यदि कोई व्यक्ति किसी कवि के विषय में कुछ जानना चाहे

तो उसे भी उस विषय की सामग्री प्रचुरता से मिल सकती है। इन्हीं कारणों से साधारण कवियों एवं ग्रंथों के नाम छोड़कर इतिहास का शुद्ध स्वरूप स्थिर रखना हमें अनावश्यक समझ पड़ा। फिर भी इतिहास का क्रम रखने को हमने कवियों का हाल समयानुसार लिखा है और ग्रंथ के आदि में एक संक्षिप्त इतिहास भी दे दिया है। इन कारणों से हमने इसका नाम इतिहास न रखकर "मिश्रबंधु-विनोद" रक्खा है, परंतु इसमें इतिहास ही का क्रम रखने एवं इतिहास-संबंधी सामग्री सन्निविष्ट रहने के कारण हमने इसका उपनाम "हिंदी-साहित्य का इतिहास" तथा "कवि-कीर्तन" भी रक्खा है।

विषय

पहले हमारा विचार था कि प्रायः १०० कवियों की रचनाओं पर समालोचनाएँ लिखकर उन्हीं के सहारे इतिहास-ग्रंथ लिखें। सरस्वती से उद्धृत लेख में भी यही बात कही गई है। पीछे से यह विचार उत्पन्न हुआ कि केवल उत्कृष्ट कवियों की भाषा आदि के जानने से हिंदी का पूरा हाल नहीं ज्ञात हो सकता। भाषा पर बड़े कवियों का प्रभाव अवश्य पड़ता है पर समय विशेष की भाषा वही कही जा सकती है, जो सर्वसाधारण के व्यवहार में हो। इस विचार से भी छोटे-बड़े सभी कवियों का वर्णन हमें आवश्यक जान पड़ा। पहले हमने उन सभी कवियों की रचनाओं पर समालोचनाएँ लिखने का विचार किया था जिनका वर्णन इस ग्रंथ में हुआ है और इसी दृष्टि से कार्यारंभ भी हुआ था, पर पीछे से यह आपत्ति आ पड़ी कि हमें बहुत-से उन कवियों के भी हाल लिखने पड़े, जिनके ग्रंथ हमने नहीं देखे हैं, अथवा जो लेख लिखने के समय हमें प्राप्त नहीं हो सके। बहुत-से ऐसे भी कवि थे कि जिनके ग्रंथ तो भारी थे, परंतु उनमें तादृश काव्योत्कर्ष न था जिससे उन पर विशेष श्रम करना समय का अपव्यय समझ पड़ा। संवत् १९६२-६३ में जो

लेख लिखे गए, उनमें कुछ विशेष विस्तार था, परंतु पीछे से सम्मे-लन के जल्दी करने एवं अन्य कारणों से शीघ्रता करनी पड़ी। इससे पीछे के लिखे हुए लेख पहलेवालों की अपेक्षा कुछ छोटे हो गए, फिर भी कवियों की योग्यतानुसार लेखों में उनके गुण-दोष दिख-लाने का यथासाध्य प्रयत्न किया गया है। वर्तमान समय के लेखकों की रचनाओं पर समालोचना लिखने का कुछ भी प्रयत्न नहीं किया गया। उनके ग्रंथों के नाम और मोटी रीति से दो-एक अति प्रकट गुण-दोष लिखने पर ही हमने संतोष किया है। कारण यह है कि इतिहास के लिये वर्तमान समय का विस्तृत वर्णन परमावश्यक नहीं है, और आजकल के लेखकों पर कुछ लिखने की इच्छा रखनेवाला बड़ी सुगमतापूर्वक उनका पूरा ब्योरा जान सकता है। फिर वर्तमान लेखकों के प्रतिकूल उचित अथवा अनुचित प्रकार से कुछ भी लिखे जाने से झगड़े-बखेड़े का पूरा भय रहता है। नवरत्नवाले कवियों पर ग्रंथ अलग छप चुका है, सो इसमें भी उनके विस्तृत वर्णनों का लिखना अनावश्यक था और उनके नाम भी छोड़ देना ग्रंथ को अपूर्ण रखता, इन कारणों से हमने उन कवियों के छोटे-छोटे वर्णन इसमें लिख दिए हैं। जिन महाशयों को उनका कुछ विस्तृत हाल देखना हो, वे "नवरत्न" के अवलोकन का कष्ट उठावें।

लेखन-शैली

इस ग्रंथ को हम तीन भाइयों ने मिलकर बनाया है, सो लेखकों के लिये सदैव हम, हम लोग, आदि शब्द इसमें मिलेंगे। बहुत स्थानों पर लेखकों द्वारा ग्रंथादि देखे जाने या अन्य कार्य किए जाने के कथन हैं। इन स्थानों पर हम शब्द से सब लोगों के द्वारा उसके किए जाने का प्रयोजन निकलता है, परंतु हम तीनों में से किसी ने भी जो कुछ किया है, उसका भी वर्णन हमने हम शब्द से किया है। एक-एक दो-दो मनुष्यों के कार्यों को अलग लिखने

से ग्रंथ में अनावश्यक विस्तार होता और भद्दापन आता । फिर अधिकतर स्थानों पर सभी की राय मिलाकर लेख लिखे गए हैं। तीनों लेखकों के कार्यों को अलग-अलग दिखाना हमें अभीष्ट भी न था । इस ग्रंथ में जहाँ एक संवत् के नीचे कई नाम आए हैं या अज्ञात अथवा वर्तमान समय में विना संवत् लिखे ही नाम लिखे गए हैं, वहाँ वे अकारादि क्रम से लिखे हैं । इस क्रम में नामों के आदि में आनेवाले 'ब' और 'व' एक ही माने गए हैं और कहीं कहीं 'श' और 'स' का भी यही हाल है ।

काल-क्रम

कवियों के पूर्वापर क्रम रखने में हमने जन्म-संवत् का विचार न करके काव्यारंभ काल के अनुसार क्रम रक्खा है । साहित्य-सेवा की दृष्टि से किसी का जन्म उसी समय से माना जा सकता है, जब से कि वह रचना का आरंभ करे । इसी कारण कई छोटी अवस्थावाले लेखकों के नाम बड़ी अवस्थावालों के पूर्व आ गए हैं । ऐसे लोगों ने छोटी ही अवस्थाओं से साहित्य-रचना की ओर ध्यान दिया । काल-नायकों के कथनों में इस नियम से प्रतिकूलता है । कालनायक केवल काव्योत्कर्ष के विचार से नहीं रक्खे गए हैं, वरन् इसके साथ उनके वर्णित विषय, उनका तात्कालिक प्रभाव और उनके समयों के विचार भी मिल गए हैं । सूदन-काल-संवत् १८११ से १८३० तक चलता है । इसके नायक बोधा भी हो सकते थे, परंतु उनका कविता-काल १८३० से प्रारंभ होता है, सो सबसे पीछे होने के कारण वह समय-नायक नहीं बनाए गए । फिर भी उनका वर्णन इसी समय हुआ । हमने कवियों के किसी समय में रखने के विचार में उनका काव्यारंभ काल ही जोड़ा है । कई स्थानों पर ऐसा हुआ है कि कवियों ने जिस संवत् में उनका वर्णन हुआ है, उससे बहुत पीछे तक रचना की है । जैसे सुंदर-दादूपंथी का कथन संवत् १६७८ में हुआ है,

परंतु उनका रचना-काल १७४६ तक चला गया है। ऐसे स्थानों पर इतिहास-ग्रंथ में प्रकट में कुछ भ्रम अवश्य देख पड़ेगा, परंतु किसी कवि का वर्णन तो एक ही स्थान पर हो सकता है और वह स्थान उसके रचनारंभ का ही होना चाहिए, नहीं तो उससे पीछे के कवि-गण उससे पहले के समक्ष पड़ेंगे।

आधार

हमने इस ग्रंथ में बहुत-से कवियों तथा ग्रंथों के नाम लिखे हैं। बड़े लेखों में तो प्रायः संवतों और ग्रंथों के ब्योरे वहीं लिख दिए गए हैं कि किस प्रकार वह उपलब्ध हुए परंतु छोटे लेखों में बहुधा ऐसा नहीं लिखा गया है। कहीं-कहीं ठीक संवत् न लिखकर हमने केवल यह लिख दिया है कि कवि अमुक संवत् के पूर्व हुआ। संवतों एवं ग्रंथों के नाम हमें निम्न प्रकार से ज्ञात हुए हैं—

(१) स्वयं उन्हीं कवियों की रचनाओं से।
(२) अन्य कवियों की रचनाओं से।
(३) काशी-नागरीप्रचारिणी सभा की खोज से।
(४) शिवसिंहसरोज से।
(५) डॉक्टर ग्रियर्सन-कृत माडर्न वर्नैकुलर लिटरेचर ऑफ़् हिंदुस्तान एवं लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़् इंडिया से।
(६) अपनी जाँच एवं किंवदंतियों से।
(७) जोधपुर-निवासी मुंशी देवीप्रसाद के लेखों से।

विवरण

(१) हिंदी-इतिहास के संबंध में यह बड़े हर्ष की बात है कि कवियों में रचना-काल दे देने की रीति प्राचीन समय से चली आती है। इससे सैकड़ों कवियों के विषय में सुगमता से भ्रमहीन संवत् प्राप्त हो गए। कविगण अपने ग्रंथों में स्वरचित अन्य ग्रंथों के भी हवाले कहीं-कहीं देते हैं। इन हवालों से उनके अन्य

ग्रंथों के नाम ज्ञात हुए हैं। विनोद में जहाँ कहीं संवत् लिखने में प्रकट रूप से कवि के ग्रंथों का हवाला नहीं दिया गया है, वहाँ भी गौण रूप से वह मिल जाता है। कहीं-कहीं रचना-काल में तो संवत् लिखा ही है, पर ग्रंथनामावली में ग्रंथ के सामने भी ब्रैकेट में संवत् लिख दिया गया है। ऐसे स्थलों पर समझ लेना चाहिए कि संवत् उसी ग्रंथ से ज्ञात हुआ है। कहीं-कहीं ग्रंथों या अन्य प्रकार से किसी कवि का जन्म-काल मिल गया, परंतु उसका रचना-काल प्रामाणिक रीति पर नहीं मिला। ऐसी दशा में कवि की योग्यता-नुसार ज्ञात बातों पर ध्यान देकर जन्म-काल में २० से ३० वर्ष तक जोड़कर हमने कविता-काल निकाला है। जहाँ लेख से किसी प्रकार यह न प्रकट होता हो कि संवत् ग्रंथ से मिला है, वहाँ उसे अन्य प्रकारों से उपलब्ध समझना चाहिए।

(२) बहुत-से कवियों ने अन्य भाषा-कवियों के नाम अपनी रचनाओं में रक्खे हैं। ऐसे लेखों से यह प्रकट हो गया कि लिखित कवि, लेखक कवि का या तो समकालिक था या पूर्व का। कहीं-कहीं कवियों के ग्रंथों की प्राचीन प्रतियाँ मिलीं, जिनमें उनके लिखे जाने के समय लिखे हैं। इन दोनों दशाओं में यह लिख दिया गया है कि कवि अमुक समय से पूर्व हुआ। जिन ग्रंथों में अन्य कवियों के नाम विशेषतया पाए जाते हैं, उनका ब्योरा यों है—

सं० १७१८ का कविमालासंग्रह है। इसमें भी कवियों के नाम हैं।

१७७६ सं० के लगभग संगृहीत कालिदास-हज़ारा, जिसमें २१२ कवियों की रचनाएँ हैं।

१७९२ संवत् का दलपतिराय-वंशीधर-कृत अलंकार-रत्नाकर है इसमें ४४ कवियों के नाम हैं।

१८०० संवत् का प्रवीण कवि द्वारा संगृहीत सारसंग्रह। यह

पंडित युगलकिशोर के पुस्तकालय में है। इसमें प्रायः १५० कवियों की रचनाएँ पाई जाती हैं।

सं० १८०३ का सत्कविगिराविलाससंग्रह।

सं० १८७४ का विद्वन्मोदतरंगिणीसंग्रह।

सं० १९०० का रागसागरोद्भवसंग्रह।

इन ग्रंथों के अतिरिक्त सूदन कवि ने सं० १७१० में सुजान-चरित्र-नामक ग्रंथ रचा, जिसमें उन्होंने १५० कवियों के नाम प्रारंभ में दिए हैं। सूर्यमल-कृत १८९७ वाले वंशभास्कर में भी प्रायः १२५ कवियों के नाम हैं।

(३) सरकारी सहायता से काशी-नागरीप्रचारिणी सभा सं० १९५६-५७ से हस्त-लिखित ग्रंथों की खोज करा रही है। इसमें प्रायः २००० कवियों के नाम आए हैं और अनेकानेक उपयोगी ग्रंथों एवं उनके समयों का पता लगा है। खोज करनेवाले पुरुष स्थान-स्थान पर घूमकर ग्रंथों को देखते और उनके संवतों आदि का पता लगाते हैं। इसकी * आठ रिपोर्टें प्रकाशित हो चुकी हैं और शेष हस्त-लिखित हैं। जहाँ हमको ग्रंथों से कोई पता नहीं लगा है, वहाँ किसी अन्य उचित कारण के अभाव में हमने खोज का प्रमाण माना है। इस खोज का हमने खोज शब्द से ही ग्रंथ में यत्र-तत्र हवाला दिया है। इससे हमको सामग्री-संचय में बड़ा सहारा मिला है।

(४) जहाँ सरोज और खोज में भेद निकला है, वहाँ किसी ख़ास कारण के अभाव में हमने खोज का ही प्रमाण माना है। खोज ने किसी ख़ास पते के अभाव में सरोज के संवत् को स्वीकार किया है। सरोज के संवतों में गड़बड़ रह गया है और उनके दुरुस्त करने का पूरा प्रयत्न भी नहीं किया गया जैसे कालिदास,

* इसके पश्चात् ४ रिपोर्टें और निकली हैं।

कविंद और दूलह को सरोजकार ने पिता, पुत्र और पौत्र मानकर भी उनके समयों में बहुत ही कम अंतर रक्खा है। खोज में इससे अधिक श्रम किया गया है। इसी कारण हमने उसका अधिक प्रमाण माना है। सरोज में प्रायः कविता-काल को उत्पत्ति-काल लिखा गया है। शिवसिंहसरोज का हमने प्रायः 'सरोज' शब्द से हवाला दिया है।

(५) डॉक्टर साहब ने विशेषतया 'सरोज' का ही आधार ग्रहण किया है, परंतु कई स्थानों पर उन्होंने नई बातें भी लिखी हैं, जिनकी सत्यता के कारण भी दे दिए हैं। सरोज में मैथिल लेखकों का कथन संतोषदायक नहीं है। इधर डॉक्टर साहब स्वयं बिहार में नियुक्त रहे हैं, इस कारण मैथिल-कवियों के विषय में आपके अनुसंधान माननीय हैं। आपके ग्रंथों से हमें कुछ मैथिल-कवियों का पता मिला है।

(६) जब किसी अन्य समुचित प्रकार से समय का पता नहीं लगा, तब हमने लोगों से पूछ-ताँछकर कई कवियों के काल निर्द्धारित किए। ऐसी दशा में हमने यह बात उन वर्णनों में लिख दी है। वर्तमान समयवाले कवियों के हाल में पता लगाए हुए लेखक बहुत अधिक हैं। उनमें जहाँ कुछ न लिखा हो, वहाँ यही समझना चाहिए कि हाल पता लगाने से ही मिला है।

(७) स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादजी हमारे यहाँ प्रसिद्ध इतिहासज्ञ थे। आपने इतिहास के विषय पर खोज भी अच्छी की थी। राजपूतानावाले कवियों के विषय में हमें आपसे अच्छी सहायता मिली थी। वर्तमान समय के कवियों एवं लेखकों के नाम हमें विशेषतया समस्यापूर्ति के पत्रों, पत्रिकाओं, सामाजिक पत्रों एवं अन्य पत्र-पत्रिकाओं से मिले। उनके ग्रंथ आदि का हाल जानने को हमने प्रायः ५०० कार्ड लेखकों के पास भेजे और भेजवाए, तथा प्रायः २० सामयिक पत्रों में यह प्रार्थना प्रकाशित कराई कि हम इतिहास-ग्रंथ लिख

रहे हैं, सो कवि एवं लेखकगण कृपया अपना या औरों के हाल हमें भेजने का अनुग्रह करें। इनके उत्तर में प्रायः ३०० महाशयों ने अपनी या औरों की जीवनी हमारे पास भेजने की कृपा की। इसके अतिरिक्त जो कुछ हमें ज्ञात था उसके सहारे से हमने इस ग्रंथ में लेखकों के वर्णन लिखे हैं। जिन वर्तमान लेखकों के निश्चित परिचय नहीं मिल सके, उनकी अवस्था आदि के विषय में कहीं-कहीं अनुमान से भी वर्णन लिख दिए गए हैं, परंतु ये अनुमान ऐसों ही के विषय में किए गए हैं कि जिनसे हम मिल चुके हैं। इस ग्रंथ में बहुत-से ऐसे कवियों का वर्णन है, जिनके काल-निरूपण में भूल होना संभव है। इस संबंध में यही निवेदन करना है कि यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि एक मनुष्य सब कुछ नहीं जान सकता। बहुत-सी ऐसी भी बातें हैं जो पता लगाने से भी हमें न ज्ञात हुईं, परंतु औरों को वे सहज ही में मालूम हैं। यदि वे उन बातों को हमें सूचित करेंगे, तो आगे के संस्करणों से वे भूलें निकल सकेंगी।

सहायक

इसी स्थान पर हम उन सज्जनों का भी कथन कर देना चाहते हैं जिन्होंने कृपा करके इस ग्रंथ की रचना में हमको सहायता दी। सबसे अधिक धन्यवादास्पद बाबू श्यामसुंदरदास हैं। यह उन्हीं के प्रयत्नों का फल है कि काशी-नागरीप्रचारिणी सभा ने सरकार से हिंदी-ग्रंथों की खोज के लिये धन-सहायता पाई और १८ वर्षों से सभा यह काम सफलतापूर्वक कर रही है। यदि खोज ने ऐसा प्रशंसनीय काम न कर रक्खा होता, तो ऐसा पूर्ण साहित्य-ग्रंथ कदापि न बन सकता। शिवसिंहसरोज से भी हमको अच्छी सहायता मिली है। मुंशी देवीप्रसादजी मारवाड़-निवासी ने हमें प्रायः ८०० कवियों की एक नामावली भेजी, जिसमें हमको २०९ नए नाम मिले। मुंशीजी

ने हमारे पूछने पर इन २०९ कवियों के विषय में विशेष हालात लिखने की भी कृपा की। लाला भगवानदीनजी ने भी हमें १८९ कायस्थ कवियों की नामावली भेजी और स्वर्गीय पंडित मन्नन द्विवेदी गजपुरी तहसीलदार संयुक्तप्रांत ने भी प्रायः ४० कवियों की नामावली हमें भेट की। इन दोनों नामावलियों में भी प्रायः ६० नए नाम मिले। सतना-निवासी स्वामी भोलानाथ ने ६३ कवियों की नामावली भेजने की कृपा की। पंडित व्रजरत्न भट्टाचार्य ने वर्तमान समय के २७ लेखकों के नाम हमें लिख भेजे। इन दोनों महाशयों के नामों में भी कुछ नए नाम मिले। गँधौली-निवासी स्वर्गवासी पंडित युगलकिशोर ने प्राचीन एवं प्रसिद्ध कवियों तथा ग्रंथों के विषय में हमको बहुत-सी बातें बताईं। जिनके कथन इस ग्रंथ में एवं नवरत्न में जहाँ-तहाँ मिलेंगे। कोरौना-निवासी पंडित विश्वनाथ त्रिवेदी ने हमारे लिये वर्तमान कवियों के पास प्रायः ३०० कार्ड भेजने की कृपा की। उपर्युक्त महानुभावों को हम उनकी कृपा के लिये अनेकानेक धन्यवाद देते हैं। श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर छतरपुर ने वैष्णव संप्रदाय के तथा अन्य कवियों के विषय में बहुत-सी उपयोगी बातें हमें बताने की दया की और हमें अपना बृहत् पुस्तकालय भी दिखलाकर बड़ा अनुग्रह किया। श्रीमान् सरीखे महानुभावों की दया विना वैष्णव कवियों एवं संप्रदायों का पूरा हाल हमें न ज्ञात होता।

ग्रंथ-विवरण

हिंदी-भाषा की उत्पत्ति संवत् ७०० के लगभग अनुमान की जा सकती है, परंतु उस समय का कोई ग्रंथ मिलना बहुत कठिन है। संवत् १३४३ तक सिवा चंद और तत्पुत्र जल्हन के, और किसी के भी काव्य-ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आए। इसीलिये ग्रंथ में हमने यह समय हिंदी का पूर्वारंभिक काल माना है। इसी

प्रकार ज्यों-ज्यों उन्नति होती गई, त्यों-त्यों हिंदी का भी परिवर्तन होता गया। ग्रंथ में काल-विभाग इस प्रकार किया गया है—

नाम	समय (किस संवत् से	किस तक)	कितनी कविता मिलती है
पूर्वारंभिक काल	७००	१३४३	बहुत कम
उत्तरारंभिक काल	१३४४	१४४४	थोड़ी
पूर्वमाध्यमिक काल	१४४५	१५६०	कुछ अधिक
प्रौढ़ माध्यमिक काल	१५६१	१६८०	अच्छी मात्रा में
पूर्वालंकृत काल	१६८१	१७९०	बहुत अच्छी मात्रा में
उत्तरालंकृत काल	१७९१	१८८९	वर्धमान मात्रा में
अज्ञात काल	——	——	साधारण
परिवर्तनकाल	१८९०	१९२५	प्रचुरता से
वर्तमान काल	१९२६	अब तक	बहुत अधिक

अज्ञात काल के कविगण प्रायः उत्तरालंकृत एवं परिवर्तन काल के समझ पड़ते हैं।

ग्रंथ में इस काल-विभाग के उठानें के पूर्व सात अध्यायों में हिंदी का संक्षिप्त इतिहास लिखा गया है। इस भाग का नाम संक्षिप्त प्रकरण है। इसके पीछे पूर्वारंभिक उत्तरारंभिक और पूर्व माध्यमिक कालों को मिलाकर आदिप्रकरण बनाया गया है। इसमें इन्हीं तीनों कालों के नामों पर तीन अध्याय हैं। तीन काल एक ही में रखनें पर भी कवियों की कमी से यह प्रकरण छोटा है। इसके पीछे छओं कालों में प्रत्येक के नाम पर एक-एक प्रकरण है। प्रौढ़ माध्यमिक प्रकरण में सात अध्याय हैं, जिनमें सूर और तुलसी-काल का वर्णन हुआ है। पूर्वालंकृत प्रकरण में सात अध्यायों द्वारा भूषण और देव-काल का कथन है और उत्तरालंकृत प्रकरण में छः अध्यायों में दास-पद्माकर-काल वर्णित है। इन दोनों प्रकरणों के

नाम 'अलंकार' लिए हुए इस कारण से रक्खे गए हैं कि इस समय के कवियों ने सालंकार भाषा लिखने का अधिक प्रयत्न किया। अज्ञात-प्रकरण इतिहास-ग्रंथों में होता ही नहीं और हमारे यहाँ भी न होना चाहिए था, परंतु हिंदी में चरित्र-वर्णन की कमी से बहुतेरे लेखकों का पता नहीं लगता। यदि केवल इतिहास-ग्रंथ लिखते होते, तो हम इस प्रकरण को न लिखते, परंतु हमारा विचार यथासाध्य कुल प्राचीन कवियों के नाम लिखने का है; इसी-लिये अज्ञात समयवाले रचयिताओं का भी कथन कर दिया गया। आशा है कि ग्रंथ के द्वितीय संस्करण के समय तक लोगों की कृपा से यह प्रकरण आकार में बहुत संकुचित हो जायगा। परिवर्तन-प्रकरण में तीन अध्यायों द्वारा उस समय का हाल कहा गया है, जब कि योरपीय संघर्ष से उत्पन्न नवीन विचार हिंदी में स्थान पाने का प्रयत्न कर रहे थे। वर्तमान प्रकरण में पाँच अध्याय हैं। उपर्युक्त नूतन विचारों का इस समय अच्छा प्रभाव पड़ रहा है।

इस ग्रंथ में अनेक अध्यायों के आकार बहुत बड़े हो गए हैं। इसका मुख्य कारण हिंदी में कवियों की अधिकता है। हमने बड़े अध्यायों में प्रायः बीस वर्ष से अधिक समय नहीं लिया है, परंतु फिर भी उनके आकारों की वृद्धि किसी अध्याय के उचित फैलाव से बहुत आगे निकल गई। बहुत स्थानों पर बीस वर्ष से भी कम समय का कथन एक अध्याय में करना हमें उचित नहीं जान पड़ा। आशा है कि ग्रंथ-विस्तार के विचार से सहृदय पाठकगण हमारे अध्याय-विस्तार के दोष को क्षमा करेंगे।

विविध समय और उनकी दशा

हिंदी-साहित्य के उत्पन्न करने का यश ब्रह्मभट्ट कवियों को प्राप्त है। सबसे प्रथम इन्हीं महाशयों ने नृपयशवर्णन के व्याज से हमारे साहित्य की अंगपुष्टि की, यही क्यों उसे जन्म ही दिया, क्योंकि

प्रारंभकाल के कवियों में केवल पुष्य कवि की जाति में संदेह है, फिर भी उसका बनाया अलंकार-ग्रंथ सबसे प्रथम होने पर भी संदिग्ध ही है और अभी तक उसके अस्तित्व पर भी पूर्ण विश्वास नहीं होता। इन कवियों ने राजयश वर्णनों के साथ वीर और शृंगार-रसों की प्रधानता रक्खी। कथाएँ तो इन्होंने कहीं, परंतु शांति और स्फुट विषयों की उन्नति न हुई, एवं गद्य और नाटक का अभाव रहा। उत्तर प्रारंभिक काल में वीर, शृंगार, शांति और कथा-विभागों की प्रायः समान उन्नति हुई, तथा इन सबका कुछ बल रहा, परंतु रीति-ग्रंथों और नाटक का अभाव, एवं स्फुट विषयों तथा गद्य का शैथिल्य बना रहा। इस समय से ब्राह्मणों ने भी महात्मा गोरखनाथ की देखा-देखी हिंदी को अपनाया। पूर्व काल में प्राकृत मिश्रित भाषा का चलन रहा, परंतु उत्तर में कोई भी भाषा स्थिर न हुई और विविध कवियों ने यथारुचि व्रज, अवधी, राजपुतानी, खड़ी, पूर्वी आदि सभी भाषाओं में रचना की। पूर्व माध्यमिक काल में वीर और शृंगार-काव्य शिथिल हो गए, परंतु नाटक ने कुछ बल पकड़ा। शेष विभाग प्रायः जैसे के तैसे रहे, किंतु भाषाओं में व्रज, अवधी, पूर्वी और पंजाबी की प्रधानता हुई। प्रौढ़ माध्यमिक काल में शृंगार, शांति और कथा-विभागों ने अच्छी उन्नति की और स्फुट विषयों एवं गद्य ने भी कुछ बल पाया। भाषाओं में सबको दबाकर व्रजभाषा प्रधान हुई और अवधी का भी कुछ मान रहा। पूर्वालंकृत काल में वीर एवं रीति-वर्णनों ने ज़ोर पकड़ा और शृंगार की विशेष वृद्धि से शांति-रस दब गया। व्रजभाषा का और भी बल बढ़ा और अवधी दबने लगी। उत्तरालंकृत काल में शृंगार तथा रीति-वर्णन की विशेष बल-वृद्धि हुई और कथा एवं गद्य का भी चमत्कार देख पड़ा, परंतु वीर-काव्य मंद पड़ गया। व्रजभाषा का महत्त्व पूर्ववत् रहा, किंतु अवधी की कुछ वृद्धि हुई और खड़ी बोली की भी कुछ प्रतिष्ठा

हुई। परिवर्तन-काल में कथा और रीति-विषय कुछ कम पड़ गए और गद्य का बल बढ़ा। अवधी भाषा लुप्तप्राय हो गई और खड़ी बोली व्रजभाषा की कुछ अंशों में समता-सी करने लगी, यद्यपि प्राधान्य व्रजभाषा का ही रहा। शृंगार-रस इस काल से ही कुछ घट चला था और वर्तमान काल में वह बहुत न्यून हो गया है; यद्यपि अब भी उसका कुछ बल शेष है। अब कथा और स्फुट विषयों का विशेष ज़ोर है और गद्य ने बहुत अच्छी उन्नति करके पद्य को दबा दिया है। परिवर्तन-काल में वीर-रस का प्रायः अभाव हो गया था और अब भी वह शिथिल है। शांति और नाटक बलवान् हैं और रीति-ग्रंथों का शैथिल्य है जो उचित भी है। अब खड़ी बोली प्रधान भाषा है, और व्रजभाषा का केवल पद्य में व्यवहार होता है; सो भी सब कवियों द्वारा नहीं।

संवत्

इस ग्रंथ में ईसवी सन् न लिखकर हमने विक्रमीय संवत् लिखा है। इस विषय पर बहुत विचार करके हमने संवत् ही का लिखना उचित समझा। हमारे यहाँ प्राचीन काल से अब तक संवत् का ही प्रयोग होता चला आया है, सो कोई कारण नहीं है कि हम अपने साहित्य-इतिहास में भी बाहरी सन् का व्यवहार करें। यह ग्रंथ हिंदी जाननेवालों के लाभार्थ लिखा गया है। उनमें से अधिकांश अँगरेज़ी सन् एवं महीनों का हाल ही नहीं जानते, अतः सनों के प्रयोग से उनको लाभ न होता। जो अँगरेज़ीदाँ हिंदी-रसिक हैं, वे संवत् से ५७ घटाकर सुगमता से सन् जान सकते हैं। कहा जा सकता है कि सनों में ही इतिहास जानने के कारण अकबर, औरंगज़ेब, एलीज़-बेथ आदि राजा-रानियों के समयों पर ध्यान रखकर तत्सामयिक हिंदी-इतिहास की घटनाओं पर विचार करने में अड़चन पड़ेगी। यह बात अवश्य यथार्थ है, परंतु थोड़ा-सा कष्ट उठाकर विद्वान् लोग

इस अड़चन को सुगमता से दूर कर सकेंगे। उधर अँगरेज़ी न जाननेवाले ग्रामवासियों को सनों के समझने में जो कष्ट पड़ेगा, उसका प्रतीकार बहुत दशाओं में अनिवार्य हो जायगा। देशी रियासतों में अब तक इन्हीं एवं अन्य विचारों से संवत् का प्रयोग होता है, यहाँ तक कि टाड साहब ने अपने राजस्थान में भी बहुतायत से संवत् लिखे हैं। शिवसिंह-सरोज में भी संवतों में ही समय लिखा गया है। और भी सभी कवि बराबर इसी का प्रयोग करते चले आए हैं। किसी ने हिजरी, ईसवी आदि सनों का व्यवहार नहीं किया। ऐसी दशा में इतिहास-ग्रंथ में संवतों का चलन स्थिर रखकर हमने कोई नई बात नहीं की, वरन् स्थिर प्राचीन प्रथा का अनुसरण-मात्र किया है।

उपाधि

हमारे यहाँ थोड़े दिनों से समस्यापूर्ति करानेवाली एवं अन्य प्रकार की हिंदी-संबंधी सभाएँ, समाज आदि स्थापित हुए थे और हैं। इनसे हिंदी-प्रचार में कुछ लाभ अवश्य हुआ, परंतु अनुपयोगी विषयोंवाली रचनाओं की वृद्धि भी हुई है। इनमें से कुछ ने एक यह भी चाल निकाली थी कि प्राचीन प्रथा के अनेक साधारण कवियों को (जिनमें कई का स्वर्गवास हो गया है, और कई अब भी मौजूद हैं) काव्य-धराधर, वसुधाभूषण, वसुंधरा-रत्न-जैसी भारी-भारी उपाधियाँ दीं। हमारी समझ में यह छोटे मुँह बड़ी बातें हैं। यदि बिलकुल साधारण कविगण वसुधाभूषण कहलाने लगें, तो बड़े-बड़े महानुभाव एवं महात्मागण किन उपाधियों से विभूषित किए जायँगे? यदि बड़े-बड़े हिंदी-रसिक किसी दो-एक परम योग्य विद्वानों को कोई उचित उपाधि दें, जैसी कि बाबू हरिश्चंद्र को दी गई, तो शेष लोग उसे सहर्ष स्वीकार करें, परंतु जब दर्जनों साधारण मनुष्यों को बड़ी-बड़ी अनुचित उपाधियाँ साधारण मनुष्यों द्वारा मिलने लगें,

तब सभ्य-समाज में वे कैसे ग्राह्य मानी जा सकती हैं। इन्हीं कारणों से हमने उन उपाधियों को न मानकर ग्रंथ में उनका उल्लेख नहीं किया है। हमें आशा है कि उपाधिधारी महाशय हमें क्षमा करेंगे।

नाम-लेखन-शैली

पुराने कवियों के नामों के पूर्व पंडित, बाबू, मिस्टर आदि लिखने की रीति नहीं है। इस ग्रंथ में पुराने लोगों से बढ़ते हुए धीरे-धीरे हम वर्तमान लेखकों तक पहुँच गए हैं, परंतु भेद न डालने के विचार से हमने वर्तमान लेखकों के नामों के प्रथम भी पंडित, बाबू आदि नहीं लिखा। आशा है कि लेखकगण हमें क्षमा करेंगे।

वर्तमान लेखक

बहुत लोगों का विचार है कि इतिहास-ग्रंथ में वर्तमान लेखकों का वर्णन न होना चाहिए। अँगरेज़ी-साहित्य-इतिहासकार वर्तमान लेखकों का हाल नहीं लिखते हैं। शायद इसी से हमारे यहाँ भी बहुत लोगों का यही मत है। पर हम बहुत विचार के बाद वर्तमान लेखकों का कथन भी आवश्यक समझते हैं। इतिहास में वर्तमान काल भी सम्मिलित है, इसमें तो किसी प्रकार का संदेह नहीं हो सकता। साधारण इतिहास-ग्रंथों तक में वर्तमान समय का कथन सदैव होता है। ऐसी दशा में साहित्य के इतिहास से उसे निकाल डालने के लिये पुष्ट कारणों का होना आवश्यक है। कहा जा सकता है कि वर्तमान लेखकों पर निर्भयता-पूर्वक सम्मति प्रकट करने से कलह का भय है, तथैव किसी वर्तमान लेखक के विषय में यह भी निश्चय नहीं हो सकता कि वह मरण-पर्यंत कैसा लेखक ठहरेगा? कलहवाली आपत्ति में कुछ बल नहीं है, क्योंकि यदि उसे मान लें, तो वर्तमान लेखकों की रचनाओं पर समालोचनाओं का लिखना भी छोड़ना पड़ेगा। कहा जा सकता है कि दो-एक लेखकों पर समालोचना लिखनी और बात है, पर सभी वर्तमान लेखकों के गुण-दोषों को दिखाने

से कुछ हानि हो सकती है । यह बात कुछ-कुछ यथार्थ है, परंतु इसके लिये उनका वर्णन ही छोड़ देना आवश्यक नहीं । हमने वर्तमान लेखकों के ग्रंथों का वर्णन कर दिया है और उनके सहारे वर्तमान साहित्योन्नति का कथन भी किया है, परंतु प्रत्येक लेखक के गुण-दोषों पर विशेष ध्यान नहीं दिया है । गुण-दोषों के वर्णन में हमने वर्तमान काल की लेखन-शैली पर अपने विचार प्रकट कर दिए हैं । इसी कारण से हमने वर्तमान लेखकों में श्रेणी-विभाग नहीं किया । श्रेणियों का वर्णन आगे आवेगा । दूसरी आपत्ति में हमें कुछ भी बल नहीं समझ पड़ता है । हम ग्रंथ इस समय लिख रहे हैं, सो हमारे कथनों में इसी समय तक की उन्नति का हाल रहेगा । इस समय जो लेखक जैसा है, उसका वर्णन भी वैसा ही हो सकता है । भविष्य में जब वह जैसी उन्नति करेगा, तब भविष्य के इतिहासकार उसका वैसा ही कथन करेंगे । हमारे यहाँ इस मामले में अँगरेज़ी इतिहासकारों की प्रणाली नहीं मानी जा सकती । विलायत में समालोचना-संबंधी पत्रों का बड़ा बल एवं गुण-ग्राहकता की बड़ी धूम है । वहाँ प्रत्येक ग्रंथ की अनेकानेक समालोचनाएँ उसके छपते ही प्रकाशित होने लगती हैं और उन समालोचनाओं की भी अनेक आलोचनाएँ निकल जाती हैं । इसलिये वहाँ साधारण पाठकों तक को ग्रंथ का वास्तविक स्वरूप बहुत जल्द ज्ञात हो जाता है । अच्छे ग्रंथकारों के अनेक जीवन-चरित्र भी पत्र-पत्रिकाओं में निकल जाते हैं । वहाँ सद्गुणों की इतनी अधिक पूजा होती चली आई है कि किसी गुणी मनुष्य के जीवन-चरित्र एवं यश का लुप्त हो जाना बहुत करके असंभव है । इँगलैंड का कवि चासर संवत् १३९७ में उत्पन्न हुआ था और ६० वर्ष की अवस्था में उसका शरीरांत हुआ । ऐसे प्राचीन कवि के विषय में भी पूरा हाल ज्ञात है, यहाँ तक कि उसके बाप-दादों तक का निश्चित वर्णन लिखा है । इधर हमारे यहाँ सूरदास, केशवदास,

बिहारीलाल, सेनापति, लाल प्रभृति महाकवियों के जन्म-मरण आदि के विषय में भी केवल अनुमानों का सहारा लेना पड़ता है। हमारे यहाँ लोगों ने कवियों के ग्रंथ स्थिर रखने और उनसे आनंद उठाने का कुछ प्रयत्न किया भी, परंतु उनके हालात जानने में प्रेम नहीं दिखाया। यहाँ जीवन-चरित्र लिखने की परिपाटी स्थिर नहीं हुई और यह निश्चय नहीं होता है कि यदि किसी लेखक का नाम छोड़ दिया जाय, तो वह अन्य प्रकार से स्थिर रहेगा। शायद इन्हीं कारणों से सरोजकार ने भी अपने समय में वर्तमान कवियों का हाल लिखना उचित समझा था। यदि वह अपने समयवाले कवियों के नाम न लिखते, तो आज हमको उनमें से आधे महाशयों के नाम कदाचित् ज्ञात न हो सकते। फिर पिछले २५ वर्षों के भीतर हिंदी ने प्रायः सभी विषयों में बड़ी संतोषजनक उन्नति की है। आज-कल के गद्य-लेखकों ने हिंदी में सैकड़ों परमोपयोगी ग्रंथ लिखकर उसके प्रायः सभी विभागों को पुष्ट किया है। इन लेखकों में अधिकांश अभी जीवित हैं, सो इस उन्नति के कथन को छोड़ रखना इतिहास-ग्रंथ एवं हिंदी-उन्नति के वर्णन को अपूर्ण छोड़ देना है। इन कारणों से हमने वर्तमान लेखकों का विवरण साहित्य-ग्रंथ के लिये आवश्यक समझा। खेद केवल इतना ही है कि इस वर्णन का हमने यथोचित विस्तार नहीं किया, क्योंकि ऐसा करने से ग्रंथ में अन्य समयों के आकार-प्रकार को देखते हुए वर्तमान समय का आकार अपेक्षाकृत बहुत बढ़ जाता। हमारा विचार है कि "हरिश्चंद्र के पीछे हिंदी" या किसी ऐसे ही अन्य नाम की एक बड़ी पुस्तक बननी चाहिए, जिसमें अँगरेज़ी ढंग एवं समालोचना-शैली के अनुसार वर्तमान लेखकों की रचनाओं का सांगोपांग कथन हो।

ग्रंथ का आकार तथा लेखकों की अयोग्यता

हमारे इस ग्रंथ का आकार देखने में कुछ बड़ा समझ पड़ता है, परंतु वास्तव में यह उचित से बहुत छोटा है । इसमें प्रत्येक कवि का विवरण थोड़ा है और समालोचनाएँ भी छोटी और पूर्ण संतोष-प्रद नहीं हैं। जब प्रत्येक कवि के ग्रंथों का पूरा अध्ययन करके उन पर गंभीर मनन किया जाय और तब अच्छे विद्वान् उन पर समालोचनाएँ लिखें, तभी वह सांगोपांग दुरुस्त बनेंगी, नहीं तो साधारण गुण-दोषों ही का कथन उनमें मिलेगा। परंतु यह काम बहुत बड़ा है और दो-चार मनुष्यों द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता। यदि वर्तमान लेखकों में से कतिपय विद्वान् दस-दस पाँच-पाँच कवियों को लेकर उनके ग्रंथों का पूरा अध्ययन करके उन पर समालोचनाएँ प्रकाशित करें, तो अच्छे समालोचना-संबंधी लेख भी निकल सकते हैं और उनके आधार पर बढ़िया इतिहास-ग्रंथ भी बन सकते हैं। यदि उन्नत भाषाओं के साहित्य-इतिहासवाले ग्रंथ देखे जायँ, तो प्रकट होगा कि उनके लेखक साधारण कवियों के विषय में भी दो-चार विशेषण ऐसे चुस्त कर देते हैं, जो उन्हीं रचयिताओं के विषय में लिखे जा सकते हैं, औरों के लिये नहीं। हमारे यहाँ अभी कुछ दिन तक ऐसे उन्नत इतिहास-ग्रंथों का बनना कठिन है । एक तो वहाँ के उत्कृष्ट गद्य-लेखकों की बराबरी हम लोग नहीं कर सकते और दूसरे उनको मसाला बहुत अच्छा मिलता है। वहाँ समालोचना-संबंधी हज़ारों बढ़िया लेख वर्तमान हैं और प्रत्येक कवि के गुण-दोषों का पूरा विवरण उस कवि-कृत ग्रंथ का एक पृष्ठ पढ़े बिना भी ज्ञात हो सकता है । ऐसी दशा में अच्छा साहित्य-इतिहास-लेखक थोड़े परिश्रम से भी उत्कृष्ट ग्रंथ लिख सकता है। हमारे यहाँ यह दोष है कि कपड़ा बनाने के लिये उसी व्यक्ति को खेत जोतने, बोने, सींचने, रखवाली करने, काटने, रुई निकालने, ओटने, कातने, अच्छा सूत बनाने और

कपड़ा बीनने के काम करने पड़ते हैं। ऐसी दशा में यहाँ परम चतुर मनुष्य का भी काम उन्नत देशों के कार्यों की अपेक्षा हलका जँचना स्वाभाविक है। फिर हिंदी के दुर्भाग्य से इस ग्रंथ के लिखने का काम हम लोगों के मत्थे पड़ा है, जो भाषा-संबंधी मर्मों से बिलकुल अनभिज्ञ हैं। इस कारण यह ग्रंथ बिलकुल शिथिल बना है। हमें इसके लिखने का साहस न था, परंतु बड़ों की आज्ञा शिरोधार्य कर हमने इसमें हाथ लगाया। इसकी सामग्री एकत्र करने में हमें एक और भारी कठिनाई पड़ी, वह यह कि बड़े-बड़े कवियों के भी ग्रंथ अमुद्रित होने के कारण उनका प्राप्त करना दुस्तर हो गया और सैकड़ों ग्रंथ न मिल सके। बहुत-से ग्रंथ मिले भी, तो ऐसी जल्दी में कि उनका भली भाँति अध्ययन करना कठिन हो गया। थोड़े समय में हज़ारों ग्रंथ पढ़ने के कारण हर समय चित्त पूरे ताज़ेपन के साथ उनमें प्रविष्ट नहीं हो सका। हमने यथासाध्य सभी प्राप्त ग्रंथों या उनके मुख्य भागों को पढ़कर ही कवियों के विषय में लेख लिखे हैं और लेखों के यथार्थ गुण-दोष दिखलाने का पूरा प्रयत्न किया है। यदि विनोद की समालोचनाओं से हिंदी-पठित समाज में कुछ भी समालोचना-प्रेम जागृत हुआ, तो हम अपने को धन्य समझेंगे। किसी विषय पर प्रथम प्रयत्न में बड़े-बड़े पंडितों की भी रचनाओं में त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक है, फिर जब बिलकुल साधारण लेखक साहित्य-इतिहास-जैसे गंभीर विषय पर ग्रंथ-रचना का साहस करें, तब उसमें कितने दोष आ जायँगे, इसका विद्वज्जन स्वयं विचार कर सकते हैं। इस कारण हम विनोद की भूलों की बाबत अभी से क्षमा माँगे लेते हैं।

श्रेणी-विभाग

हमने इस ग्रंथ में एक अपूर्व मत पर चलने का साहस किया है। आशा है कि कविगण हमारी इस धृष्टता को भी क्षमा करेंगे। हमने

काव्योत्कर्ष-प्रदर्शनार्थ कुछ श्रेणियाँ स्थिर कर दी हैं और कुछ श्रेणियों का एक-एक श्रेणी-नायक बना दिया है। विशेषतया कथा-प्रसंग से संबंध न रखनेवाले कवियों की १ सेनापति, २ दास, ३ पद्माकर, ४ तोष, ५ साधारण और ६ हीन-नामक छः श्रेणियाँ हैं। इनमें काव्योत्कर्ष की मात्रा इसी कथित क्रमानुसार है। कथा प्रासंगिक कवियों की लाल, छत्र और मधुसूदन दास-नामक तीन श्रेणियाँ हैं। लाल की श्रेणी सेनापतिवाली श्रेणी से समानता करती है, छत्र की तोषवाली से, तथा मधुसूदन दास की साधारण श्रेणी से। लाल की श्रेणी में प्रायः कोई भी कवि नहीं पहुँचा। इसी कारण हमने लाल को भी सेनापति की श्रेणी में लिख दिया। जो कथा प्रासंगिक कविगण छत्र एवं मधुसूदन-श्रेणी से श्रेष्ठ समझ पड़े, उनको अन्य श्रेणियों में भी स्थान मिला है। कुछ कवि ऐसे निकले कि उनकी रचना तो परम चामत्कारिक है, परंतु आकार में बहुत ही छोटी है। उनको किसी श्रेणी में न रखकर हमने श्रेणी-हीन कवियों में रक्खा है। कुछ कविगण हैं तो बड़े-बड़े महात्मा या महाराज, परंतु उनकी रचनाएँ वैसी अच्छी नहीं हैं। इसी कारण इनकी श्रेणियों में न रखकर हमने उन्हें किसी श्रेणी में नहीं रक्खा। कई कारणों से कुछ अन्य महाशयों को भी किसी श्रेणी में रखना हमें उचित नहीं जान पड़ा। विनोद में कथित सैकड़ों कवियों की रचनाएँ देखने का हमें सौभाग्य नहीं हुआ। ऐसे लोगों को भी हम किसी भी श्रेणी में नहीं रख सके। प्रत्येक श्रेणी का काव्योत्कर्ष श्रेणी-नायक-संबंधी समालोचना से प्रकट हो सकता है। साधारण श्रेणीवाले कविगण तोष-श्रेणी के नीचे हैं और हीन श्रेणीवालों की रचनाएँ सदोष हैं, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें गुण नहीं हैं।

अपेक्षाकृत काव्योत्कर्ष

साधारण श्रेणीवाले कवियों की रचनाएँ यद्यपि हमारी भाषा में साधारण समझी गई हैं, परंतु अन्य भाषाओं के काव्योत्कर्ष की अपेक्षा वह भी सराहनीय हैं। भारत में श्रीस्वामी शंकराचार्य के पीछे प्रायः सभी बातों में अवनति हुई, परंतु साहित्य इस नियम से छूट रहा है। यहाँ परमोन्नत देशों की अपेक्षा बुद्धि-गौरव में न्यूनता नहीं है और हमारी प्रचंड अवनति के कारणों में विचार-शून्यता एक नहीं है। भारत में गौतम बुद्ध के समय से दया का आविर्भाव बहुत अधिक रहा है। धर्मोन्नति भी यहाँ अन्य देशों की अपेक्षा ख़ूब हुई। इन दोनों ने मिलकर हमारे यहाँ विज्ञान-वृद्धि में जीव-दया एवं संसार की असारतावाले विचारों का बहुत बड़ा प्राबल्य कर दिया। यहाँ दया-बाहुल्य से पर-दुःख-हानीच्छा ऐसी बलवती हो गई कि करुणाकर को यह सोचने का समय न रहा कि अनुकंपा-पात्र के दुःखों का जन्म उसी के दोषों से हुआ है या अन्य कारणों से। इसका फल यह हुआ कि लाखों हृष्ट-पुष्ट मनुष्य यहाँ काम करना नहीं चाहते और पीढ़ियों तक दूसरों की दया पर ही छकते रहते हैं। इसी प्रकार पंडे, पुरोहित, गुरुसंतान, बहुत-से ब्राह्मण, इत्यादि-इत्यादि लाखों मनुष्य विना कोई उपकारी काम किए ही साधारण काम-काजियों से श्रेष्ठतर दशाओं में रहते हैं। जीवन-होड़ का हमारे यहाँ पूर्व काल में प्राबल्य नहीं हुआ, परंतु सांसारिक उन्नति के लिये जीवन-होड़-संबंधी प्रबलता परमावश्यक है। विना इसके कोई व्यक्ति परिश्रम करना न चाहेगा और परिश्रमी जनों की न्यूनता से, देश की सभी प्रकार से अवनति होगी। हमारे यहाँ धर्म, कर्म, रस्म-रवाजों आदि की परिपाटी, दया एवं संसार की अनित्यता के भावों से ऐसी कुछ बिगड़ गई है कि जिस रीति को देखिए, उसी से अकर्मण्यता की वृद्धि होती

है। दुर्भाग्यवश हमारे यहाँ ईर्ष्या का बल भारी रहा है। इसने एवं जीवन-होड़-निर्बलता ने ऐक्य को बड़ी ही मंद दशा में पहुँचाया। इन कारणों से समाज-बल कई अन्य बातों में चूर्ण हो गया और देश की अधिकाधिक अवनति होती गई, परंतु यह अवनति उत्तम भावों के उचित से अधिक प्रभाव बढ़ जाने से हुई थी, सो अवनति के साथ देश में नीचता नहीं आई और बुद्धि का ह्रास विद्वान् मनुष्यों में नहीं हुआ, केवल जिन बातों में अनुचित सिद्धांत मान लिए गए थे, उन्हीं में देशीय बुद्धिवैभव दबा रहा। इन कारणों से हमारे यहाँ उपकारी विषयों की वृद्धि तो साहित्य में नहीं हुई, परंतु जिन-जिन विषयों पर रचना की गई, उनमें काव्योत्कर्ष कमाल को पहुँचा दिया गया। सुतरां अनुपयोगी विषयों पर भी काव्य करनेवाले साधारण महानुभावों तक की रचनाओं में वह काव्योत्कर्ष देख पड़ता है, जो चित्त प्रसन्न कर देता है। इसलिये यहाँ के साधारण कविजन भी अन्य भाषाओं के उत्कृष्ट कवियों तक का सामना कर सकते हैं। यहाँ लोकोपकारी विषयों की ओर लोगों का ध्यान कम रहा और कार्य-प्रचुरता के भार से भी वे दबे नहीं रहे हैं। इस कारण साहित्य की ओर लोगों का विशेष ध्यान रहा है, सो गणना एवं साहित्य-प्रौढ़ता में हमारे कविजन अन्य भाषाओंवाले अपने भ्राताओं से बहुत बढ़े-चढ़े हैं। हिंदी में इतने महाराजाओं, राजाओं, महर्षियों, महंतों एवं अन्य महापुरुषों ने रचनाएँ की हैं कि अन्य भाषाओं में उसका लेश-मात्र नहीं देख पड़ता। विनोद में लिखे हुए ग्रंथों की नामावली एवं उनके आकार पर विचार करने से प्रकट होगा कि हिंदी में काव्य-ग्रंथ अन्य भाषाओं के साहित्य-ग्रंथों से बहुत अधिक हैं। * यदि किसी समय हिंदी

---

* हर्ष की बात है कि हिंदी अब कई विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाने लगी है।

एम्० ए० तक भी पढ़ाई जाय तो कुल क्लासों के लिये दस-बीस वर्षों तक को विनोद में लिखी हुई पुस्तकों में से नए-नए पाठ्य-ग्रंथ सुगमता से चुने जा सकते हैं। फिर भी प्राचीन समय में रेल, तार, डाक, प्रेस तथा पुस्तकालयों के अभाव से सैकड़ों ग्रंथ लुप्त एवं नष्ट हो गए। इन्हीं अभावों के कारण कवि लोग औरों द्वारा रचित ग्रंथों का हाल पूर्णतया नहीं जान पाते थे, सो एक ही विषय पर सैकड़ों, हज़ारों ग्रंथ बनते चले गए। प्रेस के अभाव ने हमारी विद्वन्मंडली एवं भाषा को ऐसी प्रचंड हानि पहुँचाई कि जिसका अत्युक्ति-पूर्ण कथन होना कठिन है। साहित्य-गरिमा पर स्वतंत्रता-पूर्वक उचित विचार करने से प्रकट होगा कि लाभदायिनी पुस्तकें तो हमारे यहाँ कम हैं, परंतु उक्ति-युक्ति-पूर्ण अलौकिक आनंददायक ग्रंथ भरे पड़े हैं। यहाँ साहित्य-गांभीर्य खूब है, परंतु अँगरेज़ी की भाँति विषयों में फैलाव नहीं है। हमारे यहाँ अवनति में रहते-रहते और सभी बातों में हीनता देखते-देखते लोगों में आत्मनिर्भरता इतनी कम रह गई है कि वह अपनी किसी वस्तु को पाश्चात्य पदार्थों के सम्मुख प्रशंसनीय नहीं समझते हैं। इस कारण से साहित्य-गरिमा की अलौकिक छटा रखते हुए भी हिंदी-काव्य उन्हें पाश्चात्य कवियों की रचनाओं के सामने तुच्छ जँचता है। हमने हिंदी-नवरत्न में नव सर्वश्रेष्ठ हिंदी-कवियों पर समालोचनाएँ लिखी थीं। उनमें यत्र-तत्र उन कवियों की प्रशंसा करते हुए हमने अन्य भाषाओं की अपेक्षाकृत हीनता का भी कुछ कथन किया था। इस पर एक सहृदय समालोचक महाशय ने प्रसिद्ध मासिक पत्र मॉडर्न रिव्यू में हमारे ग्रंथ की उचित से भी अधिक प्रशंसा करते हुए इतना अवश्य कह दिया कि ग्रंथ में ठौर-ठौर उमंगजनित अत्युक्तियों के भी प्रयोग हुए हैं। हमने उमंग-वश कोई कथन नहीं किया, क्योंकि समालोचना लिखने में शब्द

तौल-तौलकर रक्खे जाते हैं । ऐसे लेखों में उमंग के लिये स्थान नहीं है, परंतु फिर भी एक सहृदय समालोचक को उनमें अत्युक्ति देख पड़ी, जिसको उसने सहृदयता दिखलाते हुए अशुद्ध कथन न कहकर उमंगजनित अत्युक्ति कहकर टाल दिया । ऐसे विचारों के उठने का कारण यही है कि बहुत लोगों ने सभी पाश्चात्य पदार्थों को अपनी वस्तुओं से श्रेष्ठतर समझ रक्खा है । अतः वे लोग सोचते हैं कि साहित्य ही इस नियम से कैसे छूट सकता है ? हम लोग बाल-वयस् से ही शेक्सपियर आदि की महिमा सुनने लगते हैं । उनकी रचनाएँ सराहनीय हैं भी और बहुत काल से प्रशंसा सुनते-सुनते हम लोग उन्हें और भी अधिक श्लाघ्य मानने लगे हैं । योरप में ऐसी गुण-ग्राहकता की बान पड़ी हुई है कि लोग थोड़े भी गुण की बहुत बड़ी प्रशंसा करते हैं । विद्वद्वर शा महाशय ने अँगरेज़ी-साहित्य का एक अच्छा इतिहास लिखा है, जो हमारे यहाँ प्रायः एम्० ए० के कोर्स में रहता है । उसमें उन्होंने सौ-सवा सौ बार यह कहा है कि अमुक कवि का अमुक गुण संसार-साहित्य में सर्वश्रेष्ठ है । इधर हमारे यहाँ लोग अच्छे पदार्थों की भी मुक्त कंठ से प्रशंसा नहीं करते । इसका कारण चाहे ईर्ष्या हो या आत्मगौरव का ह्रास, या कुछ और, परंतु हम लोगों में यह बात कुछ-कुछ पाई अवश्य जाती है । इन कारणों से हमारे यहाँ के विद्वज्जन भी हिंदी-साहित्य का गौरव सुनकर कुछ चौंक अवश्य पड़ते हैं । एक आलोचक महाशय नवरत्न में प्रशंसा देखकर कहने लगे कि हम लोगों की समझ में तो यह भी उत्तम, वह भी उत्तम और सभी उत्तम है । ऐसी बातों का लिखना उनकी राय में किसी विद्वान् को शोभा नहीं देता । यदि हम यह भी अधम, वह भी अधम और सभी अधम कहते, तो शायद समालोचक महाशय प्रसन्न होते । परंतु किसी वस्तु को निंद्य ठहराने में उस पर कुछ

विचार कर लेना चाहिए । विद्वान् को यह कभी शोभा नहीं देता कि विना विचार किए दूसरों के विचारों को अपने मत के स्वरूप में लिख देवे । यदि हिंदी के किसी अच्छे ग्रंथ से उससे अधिक प्रसिद्ध भी कोई अँगरेज़ी या फ़ारसी का ग्रंथ मिलाया जाय और यह जोड़ा जाय कि काव्य-संबंधी गुण-दोष किसमें विशेष हैं, तो विदित हो कि हिंदी में कैसी जाज्वल्यमान साहित्य-प्रभा वर्तमान है। परंतु यदि कोई औरों ही की सम्मतियों को अपने विचार समझकर विना मिलान किए ही उचित सम्मतियों को हिंदी में केवल अनुपयोगी विषयों के कारण अग्राह्य, अत्युक्ति-पूर्ण एवं शिथिल समझे, तो उससे कोई क्या कह सकता है ? अस्तु ।

श्रेणी-विभाग के कारण

हमारी सम्मति से विनोद में कथित साधारण श्रेणी तक के कविगण अपेक्षाकृत दृष्टि से कुछ-कुछ उत्कृष्ट हैं । इस कारण प्रत्येक कवि की समुचित प्रशंसा करने में कवि-संख्या-बाहुल्य के कारण ग्रंथ बहुत बढ़ जाता । फिर कई पदार्थों के प्रशंसनीय-मात्र कहने से उनमें अपेक्षाकृत प्रशंसा की मात्राओं के भेद विना वर्णन बढ़ाए समझ में नहीं आ सकते । श्रेणी-विभाग स्थिर करने से यह भेद बहुत शीघ्र दो ही शब्दों द्वारा प्रकट हो जाते हैं । विना श्रेणी-विभाग के वर्णन बढ़ाने से भी हर बार पूर्ण अंतर समझ में आ जाना कठिन है । सरोजकार एवं अन्य भाषाओं के इतिहासकारों ने श्रेणी-विभाग स्थिर किए विना ही कवियों की प्रशंसा की है । इन प्रशंसाओं से अधिकांश दशाओं में कवियों की अपेक्षाकृत गरिमा का भेद ज्ञात नहीं होता । इन्हीं कारणों से हमने किसी प्राचीन प्रमाण के अभाव में भी श्रेणी-विभाग चलाने का साहस किया है । श्रेणियों में रखने के विचार में हमने केवल काव्य-प्रौढ़ता पर ध्यान दिया है और कवियों के महात्मा या महाराज आदि होने की कुछ भी परवा नहीं

की, केवल दो-चार ऐसे महाशयों को इस कारण से किसी श्रेणी में नहीं रक्खा, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। श्रेणी-विभाग में एक आपत्ति यह अवश्य है कि इसमें मत-भेद का होना स्वाभाविक है। हमने स्वयं कई बार अनेक कवियों को एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी में हटाया है। इससे यदि कोई महाशय किसी ऐसे कवि को, जिसे हमने किसी श्रेणी में रक्खा हो, किसी दूसरी श्रेणी में रखना चाहें, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। हमने बहुत-से कवियों की रचनाओं के उदाहरण दे दिए हैं, सो पाठकगण उनके विषय में स्वयं भी विचार कर सकते हैं। हमने श्रेणी-विभाग का कथन प्रायः उन सब कवियों के विषय में कर दिया है, जिनकी कविता हमने देखी है। इन सभी स्थानों पर हमारे लेखों से कवि की किसी ख़ास श्रेणी में स्थिति के कारण नहीं मिलेंगे। ऐसे स्थानों पर ये स्थितियाँ हमारी सम्मति-मात्र प्रकट करती हैं। यदि कोई महाशय उन कवियों के ग्रंथ पढ़-कर हमारे मत को अग्राह्य मानें, तो हमें उनसे कुछ नहीं कहना है। यह श्रेणी-विभाग उन्हीं लोगों को लाभदायक हो सकता है, जिन्होंने इन कवियों के ग्रंथ न देखे हों और जो हमारी कारण-कथन-हीन सम्मति-मात्र को ग्राह्य मानें। विद्वज्जनों को ग्रंथावलोकन से इन सम्मतियों के कारण स्वयं ज्ञात हो जायँगे, क्योंकि यथासाध्य पूर्ण विचार के बाद ही सम्मति दी गई है। प्रत्येक स्थान पर कारण लिखने से ग्रंथ का विस्तार बहुत अधिक बढ़ जाता। विनोद में बहुत-से कवियों पर समालोचनाएँ लिखी गई हैं और बहुतेरों को चक्र में स्थान मिला है। इससे यह प्रयोजन नहीं है कि चक्रवाले कविगण समालोच्य लेखकों से न्यून हैं। उनके चक्र में स्थान पाने का मुख्यतया यही कारण है कि हम उनके ग्रंथ भली भाँति या कुछ भी देख या प्राप्त न कर सके। आजकल के जीवित लेखकों में हमने बहुतों का कथन चक्र में संकेतों के नीचे किया है और कुछ का वर्तमान कालवाले शीर्षक

में। ऐसा उन्हीं के विषय में किया गया है, जिनके रचनारंभ-काल पर कोई अनुमान नहीं किया जा सका। वर्तमान समयवाले बहुत-से लेखकों की केवल नामावली ग्रंथ में दी गई है। इनके विषय में साधारण जाँच से कुछ ज्ञान नहीं पड़ा और इसमें विशेष परिश्रम इस कारण से नहीं किया गया कि वर्तमान समय यों ही कुछ बढ़ चुका था। जब कभी आधुनिक समय पर हमें या किसी और को ग्रंथ-रचना का सौभाग्य प्राप्त होगा, तब इस विषय पर विशेष ध्यान दिया जा सकेगा।

काव्योत्कर्ष

काव्योत्कर्ष क्या है? इस ग्रंथ में स्थानाभाव एवं अन्य कारणों से कवियों के वर्णन पूरे नहीं हो सके हैं। हमने स्थान-स्थान पर काव्यो-त्कर्ष एवं साहित्य-गरिमा आदि का कथन किया है। यदि कोई पूछे कि किन गुणों के होने से हम काव्य को गौरवान्वित मानते हैं, तो हमको विवश कहना पड़ेगा कि इन गुणों एवं कारणों का कथन हरएक छंद के लिये पृथक् है। इसका कोई छोटा-सा नियम नहीं बताया जा सकता। आचार्यों ने दशांग-कविता पर अनेकानेक ग्रंथ रचे हैं। उनमें गुण-दोषों का सांगोपांग वर्णन है। ऐसे ग्रंथ हिंदी-साहित्य में भरे पड़े हैं, जैसा कि अन्यत्र कहा गया है। इन गुणों के अतिरिक्त शील, गुण-कथन एवं भारी वर्णनों के सम्मिलित प्रभावों पर भी ध्यान देना पड़ता है। शब्द-प्रयोग का भी सम्मिलित प्रभाव छंद-लालित्य-प्रवर्द्धक होता है। इन सब बातों पर समालोचक की रुचि प्रधान है। कोई किसी गुण को श्रेष्ठ मानता है और कोई किसी को। हम स्फुट छंदों के गुण-दोष परखनेवाली अपनी प्रणाली के कुछ उदाहरण यहाँ देते हैं—

देव-कृत छंद

सखी के सकोच गुरु सोच मृगलोचनि, रि-
सानी पिय सों जु उन नेकु हँसि छुयो गात;
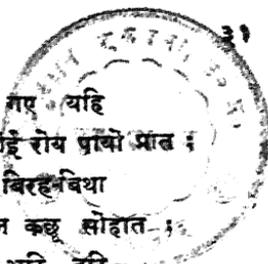
देव वै सुभाय मुसुकाय उठि गए यहि
सिसिकि-सिसिकि निसि खोई रोय पायो प्रात ;
को जानै री बीर बिनु बिरही बिरह-बिथा
हाय-हाय करि पछिताय न कछू सोहात ;
बड़े-बड़े नैनन सों आँसू भरि-भरि ढरि
गोरो-गोरो मुख आजु ओरो-सो बिलानो जात।

यह रूपघनाक्षरी छंद है, जिसमें ३२ वर्ण होते हैं और प्रथम यति सोलहवें वर्ण पर रहती है। "एक चरन को बरन जहँ दुतिय चरन मैं तीन ; सो जतिभंग कबित्त है, करै न सुकबि प्रवीन।" यहाँ रिसानी शब्द का 'रि' अक्षर प्रथम चरण में है और 'सानी' दूसरे में। इस हेतु छंद में यतिभंग-दूषण है।

चतुर्थ पद में आँसू भर भरकर तथा ढर करके पीछे वाक्य-कर्ता द्वारा कोई अन्य कर्म माँगता है, परंतु कवि ने कर्ता-संबंधी कोई क्रिया न लिखकर "गोरो-गोरो मुख आजु ओरो-सो बिलानो जात"-मात्र लिखा है, जिससे छंद में दुष्प्रबंध-दूषण लगता है। को जानै री बीर में कई गुरु-वर्ण साथ-साथ एक स्थान पर आ गए हैं, जिनसे जिह्वा को क्लेश होने से प्रबंध-योजना अच्छी नहीं है। यहाँ अंतरंगा सखी का वचन बहिरंगा सखी से है। जिस बहिरंगा सखी के सम्मुख गात छुआ गया था, वह चली गई थी। वचन दूसरी बहिरंगा से कहा गया है, जो वह हाल नहीं जानती है। केवल अंतरंगा सखी के सम्मुख यदि गात छुआ गया होता, तो नायिका को संकोच न लगता, क्योंकि अंतरंगा सखी को आचार्यों ने सभी भेदों की जाननेवाली माना है, जिसमें पूरा विश्वास रक्खा जाता है।

यहाँ गुरु-सोच से गुरुजनों से संबंध रखनेवाला शोक नहीं माना जा सकता, क्योंकि एक तो शब्द गुरुजनों को प्रकट नहीं करते और दूसरे उनके सम्मुख गात्र-स्पर्श आदि बाह्यरति-संबंधिनी भी कोई

क्रियाएँ नहीं हो सकतीं। एतावता संकोचभव भारी शोक का प्रयोजन लेना चाहिए। मृगलोचनि में वाचक धर्मोपमान लुप्ता उपमा है। यहाँ उपमेय-मात्र कहा गया है। पूर्ण उपमा है मृग के लोचन समान चंचल लोचनवाली स्त्री, परंतु यहाँ धर्म चंचलता, वाचक एवं उपमान का प्रकट कथन नहीं है। थोड़ा ही-सा गात छूने से क्रोध करने का भाव नायिका का मुग्धात्व प्रकट करता है। नायक अच्छे भाव से मुस-कराकर उठ गया। यहाँ सुभाय एवं मुसकाय शब्द जुगुप्सा को बचाते हैं, क्योंकि यदि नायक अप्रसन्न होकर उठता, तो बीभत्स-रस का संचार हो जाता, जो शृंगार का विरोधी है। नायक के उठ जाने के पीछे नायिका ने जितने कर्म किए हैं, उन सबसे मुग्धात्व प्रकट होता है। निशि खोने एवं प्रात पाने में रूढ़ि लक्षणा है। न निशि अपने पास का कोई पदार्थ है, जो खोया जा सके और न प्रात कोई पदार्थ है, जो मिल सके। इस प्रकार के कथन संसार में प्रचलित हैं, जिससे रूढ़ि लक्षणा हो जाती है। 'गोरो-गोरो मुख आजु ओरो-सो बिलानो जात' में गौणी सारोपा प्रयोजनवती लक्षणा एवं पूर्णोपमालंकार है। मुख में गुण देखकर ओलापन स्थापित किया गया है। उपमा में यहाँ गोराई और बिलाने के दो धर्म हैं। बिलानेवाले गुण में दुष्प्रबंध दूषण लगने का भय था, क्योंकि ओला बिलकुल लोप हो जाता है, किंतु मुख नहीं। कवि ने इसी कारण बिलकुल बिला जाना न कहकर केवल बिलानो जात कहा है। बीर, बिरही, बिथा, सकोच, गुरु-सोच, मृगलोचनी, गोरो-गोरो, ओरो, भाय, मुसकाय, भरि-भरि, ढरि आदि शब्दों से वृत्त्यानुप्रास का चमत्कार प्रकट होता है। भरि-भरि, गोरो-गोरो, सिसिकि-सिसिकि, बड़े-बड़े और हाय-हाय वीप्सित पद हैं। वीप्सा का यहाँ अच्छा चमत्कार है। इस छंद में पूर्ण शृंगार-रस है। नेकु हँसि छुयो गात में रति स्थायी होता है। "नेकु जु प्रिय जन देखि सुनि आन भाव चित होय ; अति कोबिद पति कबिन के

सुमति कहत रति सोय।" प्रिया को देखकर नायक के चित्त में दर्शन-भव आनंद से बढ़कर क्रीड़ा-संबंधी भाव उत्पन्न हुआ। इस भाव ने इतनी वृद्धि पाई कि उसने हँसकर पत्नी का गात छुआ, सो यह भाव केवल आकर चला नहीं गया, बरन् ठहरा। यह था रति का भाव, सो हमें स्थायी रति का भाव प्राप्त हुआ। यही श्रृंगार-रस का मूल है। रस के लिये आलंबन की आवश्यकता है। यहाँ पति और पत्नी रस के आलंबन हैं। रस जगाने के लिये उद्दीपन का कथन हो सकता है, परंतु वह अनिवार्य नहीं है। इस छंद में कवि ने उद्दीपन नहीं कहा है। नायक का हँसकर गात छूना और मुसकराना संयोग-श्रृंगार के अनुभाव हैं, तथा नायिका का रिसाना मानचेष्टा होने से वियोग-श्रृंगार का अनुभाव है। सिसिकि-सिसिकि निशि खोना तथा रोकर प्रात पाना संचारी नहीं हैं, क्योंकि ये समुद्र-तरंगों की भाँति नहीं उठे हैं, बरन् बहुत देर स्थिर रहे हैं। हाय-हाय करके पछताना और कुछ भी अच्छा न लगना भी ऐसे ही भाव हैं। इनको एक प्रकार से अनुभाव मान सकते हैं। आँसुओं का ढलना तनसंचारी है। अतः यहाँ श्रृंगार-रस के चारों अंग पूर्ण हुए, सो प्रकाश श्रृंगार-रस-पूर्ण है। पहले संयोग था, परंतु पीछे से वियोग हो गया, जिसकी प्रबलता रहने से छंद में संयोगांतर्गत-वियोग-श्रृंगार है। बहिरंगा सखी के सम्मुख नायक ने कुछ हँसकर गात छुआ, जिससे हास्य-रस का प्रादुर्भाव छंद में होता है, परंतु दृढ़ता-पूर्वक नहीं। श्रृंगार का हास्य मित्र है, सो उसका कुछ आना अच्छा है। थोड़ा हँसकर गात छूने और मुसकराकर उठ जाने से मृदु हास्य आया है, जिसका स्वरूप उत्तम है, मध्यम अथवा अधम नहीं। श्रृंगार में क्रोध का वर्णन अप्रयुक्त नहीं है। यहाँ मुग्धा कलहांतरिता नायिका है। पात्र-भेद में यह वाचक पात्र है, जिसकी शुद्धस्वभावा स्वकीया आधार है। सखी का वर्णन स्वकीया के साथ होता है और दूती का परकीया के

साथ। कुछ ही गात के छूने से क्रोध करना भी स्वकीयत्व प्रकट करता है और रात-भर रोना-धोना स्थिर रहने से उसी की अंगपुष्टि होती है। वाचक पात्र होने से छंद में अभिधा का प्राधान्य है, जिसका भाव लक्षणा के रहते हुए भी सबल है। यहाँ अर्थांतरसंक्रमित वाच्य-ध्वनि निकलती है, क्योंकि कलहांतर्गत पश्चात्ताप की विशेषता है, जिससे चित्त का यह भाव प्रकट होता है कि क्रोध का न होना ही रुचिकर था। नायिका मुग्धात्व-पूर्ण स्वभाव से क्रोध करने पर विवश हुई। उसकी इच्छा नायक के मनाने की है, परंतु लज्जा के कारण वह ऐसा कर नहीं सकती। वाचक के जाति, यदृच्छा, गुण तथा क्रिया-नामक चार मूल होते हैं। यहाँ उसका जाति मूल है। नायिका स्वभाव से ही गात के छुए जाने से क्रोधित हो गई। इस छंद में गौण रूप से समता, प्रसाद एवं सुकुमारता गुण आए हैं, परंतु उनमें अर्थ-व्यक्ति का प्राधान्य है। छंद में कैशिकी वृत्ति और नागर नायिका है, क्योंकि उसने ज़रा-सा गात छुए जाने से सखी के संकोचवश लज्जा-जनित क्रोध किया और नायक के उठ जाने से थोड़े-से अनरस पर ऐसा शोक किया कि रात-भर रोदन, हाय-हाय, पछताना, आँसुओं का बाहुल्य आदि जारी रक्खा। एतावता छंद-भर में नागरत्व का प्राधान्य है, सो ग्रामीणतासूचक रस में अनरस होते हुए भी नायिका नागर है।

छंद में दो स्थानों पर उपमालंकार आया है, जिसका चमत्कार अन्यत्र नहीं देख पड़ता *। इससे यहाँ एकदेशोपमा समझनी चाहिए। यहाँ विषादन और उल्लास का आभास है, परंतु वह दृढ़ नहीं होते। 'को जानै री बीर बिन बिरही बिरह-व्यथा' में लोकोक्ति-अलंकार है और कुछ गात छुए जाने से रिसाने के कारण स्वभावोक्ति

---

* शब्द-रसायन में देवजी ने इसे एकदेशोपमा के उदाहरण में रक्खा भी है।

आती है। यह नहीं प्रकट होता कि नायक ने कोई लज्जा का अंग छुआ, परंतु फिर भी नायिका क्रुद्ध हुई। सुतरां अपूर्ण कारण से पूर्ण कार्य हो गया, जिससे दूसरी विभावना-अलंकार हुआ। नायक उत्तम है, क्योंकि वह नायिका के क्रोध से मुसकराता ही रहा। नायिका मध्यमा है। नायिका पहले सिसकी फिर रोई; फिर उसने हाय-हाय किया और अंत में उसके आँसू बहने लगे। इसमें उत्तरोत्तर शोक-वृद्धि से सारालंकार आया। नायिका के क्रोध से नायक में सुंदर भाव हुआ, सो अकारण से कारज की उत्पत्ति होने के कारण चतुर्थ विभावना-अलंकार निकला। नायक के हँसकर गात छूने से नायिका हँसने के स्थान पर क्रोधित हुई, अर्थात् कारण से विरुद्ध कार्य उत्पन्न हुआ, सो पंचम विभावना-अलंकार आया। "अलंकार यक ठौर में जहँ अनेक दरसाहिं; अभिप्राय कवि को जहाँ सो प्रधान तिन माहिं।" इस विचार से छंद में उपमा का प्राधान्य है।

सखी के मुख से मृगलोचनि एवं बड़े-बड़े नैन कहे गए, जिससे सखी-मुख-गर्व प्रकट है। वाचक प्राधान्य से यहाँ प्राचीन मत से उत्तम काव्य है। कुल मिलाकर छंद बहुत अच्छा है। इसमें दोष बहुत कम और सद्गुण अनेक हैं।

तुलसीदास-कृत छंद

जे पुर ग्राम बसहिं मग माहीं; तिनहिं नाग सुर-नगर सिहाहीं।
केहि सुकृती केहि घरी बसाए? धन्य पुन्यमय परम सोहाए।
जहँ-जहँ रामचरन चलि जाहीं; तहँ-समान अमरावति नाहीं।
परसि राम-पद—पदुम-परागा; मानति भूरि भूमि निज भागा।

ये दो चौपाई-छंद हैं। तुलसीदास की चौपाइयों में दस-पंद्रह छंद निकलते हैं, परंतु उन्होंने इन सबको चौपाई कहा है। ऊपर लिखे छंद पादाकुलक हैं।

पुर कहिए छोटो नगर राजनगर के तीर ;
बन में जे लघु पुर बसैं तिनसों कहियत ग्राम ।

नगर पुर से भी बहुत बड़ा होता है । कवि ने यहाँ लिखा है कि इन ग्रामों और पुरों को न केवल साधारण नगर, बरन् नाग एवं पुर-नगर सिहाते हैं, सो यहाँ अयोग्य के योग्य वर्णन से संबंधातिशयोक्ति अलंकार पूरा हुआ। पुर-ग्रामों में स्वयं बड़ाई नहीं है, परंतु राम के रास्ते में पड़ने से उनमें गौरव आया है, जिससे द्वितीय अर्थांतर-न्यासालंकार होता है । पहले नाग-नगर सिहाए और फिर उनसे भी श्रेष्ठतर सुर-नगर सिहा गए, सो उत्तरोत्तर महत्त्व-वृद्धि से वर्णन में सारालंकार आया । 'केहि सुकृती केहि घरी बसाए' में केहि के उत्तमता-पूर्वक दो बार आने से पदार्थावृत्त दीपक अलंकार है । ऐसे स्थानों पर वर्ण्य एवं अवर्ण्य का धर्म प्रायः एक नहीं होता, परंतु आचार्यों ने फिर भी यह अलंकार माना है । इन दोनों प्रश्नों से कवि का कुछ पूछने का प्रयोजन नहीं है, बरन् इनसे वह प्रकट करता है कि किसी बड़े सुकृती ने उन्हें किसी अच्छी घड़ी में बसाया। इस प्रकार काकु-अलंकार हुआ । इन दोनों प्रश्नों एवं 'धन्य पुन्यमय परम सोहाए' से उनके माहात्म्य का बड़ा भारी गौरव दिखलाया गया है, जिससे उदात्त अलंकार होता है । 'धन्य पुन्य' में वृत्त्यानुप्रास है । किसी सुकृती ने अच्छे समय पर ग्राम बसाया, जिसके योग से अल्प ग्राम ने भी इतनी बड़ाई पाई कि उसमें राम-चरण गए । यहाँ द्वितीय अर्थांतर-न्यासालंकार है । "जहँ-जहँ" में वीप्सालंकार है और "राम-चरण चलि जाहीं" में उपादान-लक्षणा है ; क्योंकि चरण राम के चलाने से चलते हैं । "तहँ-समान अमरावति नाहीं" में चतुर्थ प्रतीपालंकार है ; क्योंकि यहाँ उपमेय से उपमान का निरादर हुआ है । यहाँ द्वितीय अर्थांतर-न्यासालंकार एवं संबंधातिशयोक्ति भी है । "परसि पद-पदुम-परागा"

में आदि वर्ण वृत्त्यानुप्रास आया है। इन दोनों पदों में अधिक अभेद रूपक है। पराग के कारण परिणाम नहीं होने पाया। भूरि, भूमि, भागा में भी वृत्त्यानुप्रास है। राम पद-रज के स्पर्श से भूमि के भूरि भाग्य-वर्द्धन से उसमें श्लाघ्य चरित्र का महत्त्व प्रकट हुआ, जिससे उदात्तालंकार आया। यहाँ ऋद्धि से भी उदात्त हो सकता है, परंतु आचार्यों ने ऋद्धिवाले उदात्त का धन से ही रूढ़ि कर लिया है। पुर ग्राम धन्य, पुन्यमय तथा शोभायमान हैं। यहाँ समुच्चय अलंकार हुआ। प्रथम दो पदों में विशेष वर्णन, द्वितीय दो में सामान्य और तृतीय दो में फिर विशेष है, सो यहाँ विकस्वर अलंकार हुआ। कुछ अलंकारों में अप्रस्तुत प्रशंसा मुख्य है; क्योंकि प्रस्तुत राम की सीधी इन छंदों में बड़ाई न करके कवि ने मार्गस्थ ग्रामों आदि का यश गाया है, जिससे राम-यश निकलता है। इन छंदों में यद्यपि लाक्षणिक पद आए हैं, तथापि वाचक पात्र है और उसी का सर्वत्र प्राधान्य है। यहाँ अर्थव्यक्ति प्रधान गुण है, परंतु समता, समाधि, सुकुमारता, उदारता, प्रसाद और कांति भी हैं। सो इन दो छंदों में साहित्य के १० गुणों में से श्लेष, माधुर्य और ओज छोड़कर सभी वर्तमान हैं। इतने गुणों का एक स्थान पर मिलना प्रायः असंभव है। इनमें भारती और सात्वती वृत्तियाँ हैं। दोषों में यहाँ भूरि-शब्द पर ध्यान जाता है, जो कि भाग और भूमि दोनों की ओर जा सकने से संदिग्ध हुआ जाता है, परंतु वह भी भाग का प्राबल्य से विशेषण होता है, सो दोषोद्धार हो जाता है। वर्णन नागर है; क्योंकि पद रज पड़ने से प्रतिस्थान ऐसा हो जाता है कि उससे अमरावती भी शरमाती है। यहाँ अद्भुत रस का समावेश है। इसके आलंबन रामचरण, एवं मार्गस्थ पुर-ग्राम हैं और स्थायी यह आश्चर्य है कि मार्गस्थ पुर ग्रामों के महत्त्व को नाग तथा सुर-नगर सिहाते हैं, एवं अमरावती उनकी समता नहीं कर पाती। उद्दीपन यहाँ रामगमन का

समय है। राम-चरण का चलना, भूमि द्वारा राम-पद का स्पर्श होना, तथा अपना भूरि भाग माना जाना संचारी हैं। 'केहि सुकृती केहि घरी बसाए ? धन्य पुन्यमय परम सुहाए' और 'तहँ-समान अमरावति नाहीं' अनुभाव हैं। चलने में उग्रता संचारी है, जो शृंगार-रस में वर्जित है, किंतु इतर रसों में नहीं। अतः अद्भुत रस पूर्ण है। यह रस यहाँ प्रच्छन्न है।

सब बातों के ऊपर यहाँ रामचंद्र का महत्त्व और कवि की उनमें प्रगाढ़ भक्ति मुख्य हैं, सो तात्पर्याख्यावृत्ति सर्वप्रधान है। कुल बातों पर ध्यान देने से प्रकट है कि यह उत्तम काव्य है।

बिहारी-कृत छंद

अरी खरी सटपट परी बिधु आधे मग हेरि ;
संग लगे मधुपन लई भागन गली अँधेरि।

यह दोहा छंद है, जिसमें २४ मात्राएँ होती हैं और प्रथम यति तेरहवीं मात्रा पर रहती है। यहाँ परकीया कृष्णाभिसारिका नायिका है। वह काले वस्त्रालंकारों से विभूषित निश्चित स्थान को परपति से मिलने जाती थी कि अर्द्धमग में चंद्रोदय हो गया, जिससे वह घबड़ाई। अरी खरी सटपट परी एवं सटपट में वृत्त्यानुप्रास है। यही दो अंतिम पद परकीयात्व-प्रदर्शक हैं। भौंरों के छाए हुए होने से भाग्यवश गली अँधियारी हो गई, जिससे आन हेतु मिलकर कार्य सुगम हुआ, सो समाधि अलंकार आया। भौंरों के साथ होने से प्रकट हुआ कि नायिका पद्मिनी है, उसके तन से कमल की सुगंध आती है। छंद में प्रथम प्रहर्षण भी है। पहले नायिका अँधियारे में चली थी, पर बीच में उजियाला हुआ, किंतु भ्रमरों से अंधकार फिर हो गया, सो पूर्वरूप अलंकार निकला। चंद्रोदय के प्रतिबंधक होने पर भी कार्य सिद्ध हुआ, सो तृतीय विभावना है और चांद्र दोष द्वारा दोष न लगने से अवज्ञालंकार आया। चंद्र-ज्योति का

गुण परकीयावाले अभिसार के कारण दोष हुआ, सो प्रथम व्याघात हुआ। इन सब अलंकारों में समाधि मुख्य है। भौंरगण पहले पीछे आ रहे थे कि इतने में उजियाले से नायिका सटपटाकर ठहरी। इस विलंब से भौंरे आगे बढ़ आए और अंधकार फिर हो गया। रात में भौंरों का उड़ना कालविरुद्ध दूषण है, किंतु कविजन इसका वर्णन करते हैं, सो यह दोष नहीं है। माघ, कादंबरी एवं मतिराम में ऐसे ही वर्णन हैं। चंद्रोदय होने पर भी इच्छा-सिद्धि से नायिका मुदिता भी हुई।

इस दोहे में वाचक चमत्कार होते हुए भी व्यंग्य प्रधान है; क्योंकि इसके प्रायः सभी भाव व्यंग्य से निकलते हैं। छंद में समाधि अलंकार में पूर्वरूप का व्यंग्य हुआ है। यहाँ ओज-गुण प्रधान है, किंतु गौण-रूप से अर्थ व्यक्त और कांति भी है। इसमें आरभटी वृत्ति है। नायिका नागर है। रात्रि को कुंजादिक का गमन ग्रामीणता-प्रदर्शक है, परंतु काम-प्राबल्य नहीं है और नायिका पद्मिनी है, सो नागरत्व प्रधान रहा। परकीया नायिका होने से पात्र व्यंजक है। श्रृंगार-रस में यहाँ नायिका और नायक आलंबन हैं। यद्यपि नायक का प्रकट कथन नहीं है, तथापि वह माना जायगा, क्योंकि विना उसकी इच्छा के अभिसारिकात्व नहीं होता। भ्रमर एवं अंधकार उद्दीपन हैं। सटपटाना संचारी एवं मधुपों का गली अँधेरी कर लेना अनुभाव है। एतावता यहाँ पूर्ण प्रकाश श्रृंगार-रस है।

व्यंग्य कविता का जीव कहलाता है, सो यह रचना उत्कृष्ट है।

लेखराज-कृत छंद

करि अंजन मंजन गंजन को मृग कंजन खंजन औ झखियाँ ;
पलकोट की ओट बचाय कै चोट अगोट सबै सुख में रखियाँ।
लेखराज कहै अभिलाख लखाय कै लाखन पूरे किए सखियाँ ;
तेई हाय बिहाय हमैं जरि जाय ऐ जी को जवाल भईं अँखियाँ।

यह दुर्मिला सवैया है, जिसमें आठ सगण होते हैं। इसमें वृत्त्या-नुप्रास का विशेष बल है। प्रथम पद में चार उपमानों की निंदा से चतुर्थ प्रतीप हुआ है। 'पलकोट की ओट बचाय कै चोट' में समाभेद रूपक है। अभिलाख चित्त करता है न कि आँखें, सो यहाँ रूढ़ि-लक्षणा आती है। आँखों के लिये सब कुछ किया, पर उन्होंने छोड़ दिया, सो प्रथम लेशालंकार हुआ। गुण से गुण नहीं हुआ, सो प्रथम अवज्ञा भी हुई। नेत्र हितकारी हैं; उनके अहितकर वर्णन से प्रथम व्याघात अलंकार है। यहाँ शुद्ध परकीया नायिका का पूर्वा-नुराग सबल रूप से है, जिससे व्यंजक पात्र एवं अर्थांतरसंक्रमित वाच्य ध्वनि है। प्रथम पद में मुग्धा ज्ञातयौवना, एवं रूपगर्विता का प्राधान्य है, द्वितीय में मध्या और तृतीय में प्रौढ़ा का। कुल छंद में प्रौढ़ा की सबलता है। प्रथम तीन पदों में से इसी प्रकार एक-एक में स्वकीया, परकीया तथा गणिका नायिकाएँ हैं, परंतु छंद-भर में नागर परकीया का प्राधान्य है। गुणों में यहाँ माधुर्य का प्राधान्य है, परंतु समता और अर्थ व्यक्त भी हैं। छंद में कैशिकी वृत्ति है। रसों की यहाँ अच्छी बहार है। देवजी कहते हैं कि—

"बाहर भीतर भाव ज्यों, रसनि करत संचार;
त्यों ही रस भावन सहित, संचारी सिंगार।
यह सूक्ष्म रीति जानत रसिक, जिनके अनुभव सब रसन।"

यहाँ प्रथम पद में वीर-रस का संचार है, एवं द्वितीय में भया-नक तथा तृतीय में अद्भुत का। ये दोनों शृंगार के पोषक हैं। गौण-रूप में नायक के दर्शन को यहाँ स्थायी भाव मानना होगा। पूर्वानुराग उसी दर्शन का फल है। आलंबन नायिका है और प्रच्छन्न रूप से नायक भी। उद्दीपन का कथन यहाँ अंजन, मंजन द्वारा हुआ है। अभिलाषों का लखाना तथा पूरा करना अनुभाव है और पलकोट की ओट चोट बचाना व्रीड़ासंचारी दिखाता है। चतुर्थ पद

से उद्वेग निकलता है, जो वियोग शृंगार की एक दशा है। दोषों में यहाँ दो-एक स्थानों में लघु की जगह गुरु अक्षर आए हैं, परंतु पिंगलाचार्यों ने इसे दोष नहीं माना है और ऐसे अवसरों पर मृदु उच्चारण करके गुरु से लघु का प्रयोजन ले लिया है। कुल मिलाकर यहाँ उत्तम काव्य है। यह प्रकाश शृंगार-रस का उदाहरण है।

सम्मिलित प्रभावादि

किसी पूरे वर्णन में सम्मिलित प्रभाव, शील-गुण आदि का विवरण यहाँ गोस्वामी तुलसीदास-कृत राजा भानुप्रताप की कथा के सहारे किया जाता है। पाठक महाशय उस वर्णन को पढ़कर इस कथन के देखने से विशेष आनंद पा सकते हैं। इसमें उपर्युक्त गुण-दोष न दिखलाकर हम वर्णन एवं सम्मिलित प्रभाव-संबंधी कथन करेंगे।

प्रतापभानु तथा अरिमर्दन ऐसे नाम हैं, जैसे क्षत्रियों के होने चाहिए। सचिव का नाम धर्मरुचि भी अच्छा कहा गया है। वर्णन बहुत छोटा है, इससे कवि ने उपांगों को छोड़कर कथा के मुख्यांगों ही पर ध्यान रक्खा है। इसी से राजा सत्यकेतु का ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर हरि-सेवा-हित वन जाना तो कहा गया है, परंतु यह नहीं कि पूर्व प्रथानुसार ऐसा हुआ, अथवा राजा ने अवस्था के उतरने, भक्ति-प्रचुरता, सांसारिक अनित्यता आदि के भावों को पुष्ट मानकर ऐसा किया। इसी प्रकार सेना, युद्धों आदि का विशेष वर्णन न करके कवि ने राजा द्वारा विश्वविजय-मात्र कह दिया।

राजा के सुराज्य का कवि ने कुछ विशेष कथन किया। कवि को राजा के साथ सहृदयता का रखना कई उचित कारणों से अभीष्ट था, सो ब्राह्मणों के साथ गुप्त परामर्श द्वारा उनके वश करने के लिये जो आगे थोड़ा-सा अपराध किया जायगा, उसे राजा के अन्य गुणों के आगे तुच्छ दिखाने के विचार से उसने गुणों का कुछ सविस्तर कथन प्रथम से कर दिया।

वर्णन-वृद्धि रोकने को ही कवि ने विंध्याचल या उसके जंगल का वर्णन नहीं बढ़ाया, परंतु वाराह का वर्णन कथा के मुख्यांशों में है, सो उसका कथन कुछ बढ़ाकर किया गया। फिर भी कवि ने उसके दाँतों, रंग एवं गुरुता को छोड़ अन्य बातों पर विशेष ध्यान नहीं दिया, और इतने छोटे-से वर्णन में वाराहों के कई स्वाभाविक गुण थोड़े-से शब्दों में बड़ी सुंदरता-पूर्वक कह दिए। बनैले का घुरघुराना, कान उठाए घोड़े को देखना, एवं उससे बचने को ज़ोर से भागना ख़ूब दिखाया गया है। जिस घने वन में हाथी-घोड़े का निर्वाह कठिनता से हो सकता है, उसमें विपुल क्लेश सहन करते हुए भी राजा का बनैले का पीछा न छोड़ना उसके धैर्य को दिखलाता है, और आगे प्रकट-रूप से भी कवि ने उसका कथन किया है। इसी धैर्य के कारण कपटी मुनि और कालकेतु वाराह ने राजा को भूख, प्यास, श्रम आदि द्वारा ख़ूब थका लिया, जिससे वे मुनि को जान न सकें। उसने देखते ही-देखते विना कुछ कहे राजा को तालाब दिखाकर बाधित किया, जिससे आगे की कार्यवाही बढ़े और कृतज्ञतावश राजा को उस पर संदेह का विचार भी न हो। कपटी को किसी प्रकार राजा से बातचीत करनी थी, सो उसके नगर की दूरी बहुत बढ़ाकर उसने बताई, तथा रात के घोर भाव एवं वन की गंभीरता का कथन किया कि जिससे राजा रात को वहीं रहने का संकल्प करे।

बड़े कविगण जगन्मान्य सत्य सिद्धांतों का कथन करके कथा में उनके उदाहरण प्रायः दिखला देते हैं। इसीलिये कवि ने कहा है कि—

"तुलसी जसि भवितव्यता तैसी मिलइ सहाइ;
आपु न आवइ ताहि पहँ ताहि तहाँ लेइ जाइ।"

इस कथा का सारांश यही दोहा है। इससे राजा की आनेवाली आपदा का भी दिग्दर्शन करा दिया गया; "बैरी पुनि छत्री

पुनि राजा ; छल-बल कीन्ह चहइ निज काजा ।" में भी यही उपर्युक्त भाव है ।

कपटी का कहना कि अब मेरा नाम भिखारी है, प्रकट करता है कि वह अपना पूर्वकालिक गौरव व्यंजित करता था, परंतु राजा ने स्वभावतः उस गौरव पर विचार न करके उसके वर्तमान ऋषि-पन पर विशेष ध्यान दिया, जिससे उसने भी यह जानकर कि राजा आर्ष भाव से ही सहज में ठगा जा सकता है, अपने आदिम महत्त्व की वार्ता को बिलकुल उड़ा दिया और अपने को एकतनु कहकर अपनी उत्पत्ति आदि सृष्टि के साथ बतलाई, तथा आगे चलकर यहाँ तक कहा कि "आजु लगे अरु जब तें भयऊँ ; काहू के गृह-ग्राम न गयऊँ ।" यदि राजा चतुर होता, तो इन कथनों का अंतर समझकर उसकी धूर्तता को ताड़ जाता ; क्योंकि यदि वह कभी किसी के गृह-ग्राम में गया ही नहीं, तो "अब भिखारी, निर्धन-रहित निकेत" कैसे हो गया ? फिर भिखारी के लिये औरों के यहाँ जाना आवश्यक है । गोस्वामीजी ने जान-बूझकर ये फेर डाल दिए हैं कि जिनसे राजा की मूर्खता प्रकट हो । उन्होंने कह दिया कि "तुलसी देखि सुबेखु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर" उन्होंने यह भी व्यंजित किया कि चतुर पुरुष विचार करके धोखेबाज़ों की बातों का पूर्वापर-विरोध जान सकता है । एक ओर कपटी मुनि यह भी कहता जाता था कि उसने अब तक अपना हाल किसी को भी नहीं बतलाया और दूसरी ओर थोड़ी-सी मुलाक़ात से राजा को सब हाल बतलाता जाता था । इसके उसने दो कारण दिए । एक तो यह कि उसे कभी कोई मनुष्य मिला ही नहीं और दूसरे राजा शुचि, सुमति और उसका प्रीतिभाजन था, सो वह अपने शुद्ध चरित्र-कथन पर बाधित था । यदि वह किसी को भी नहीं मिला था, तो उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि की कहानी उसने

कैसे जानी ? यदि योग-बल से जानी हों, तो भी किसी को कभी भी किसी मनुष्य का न मिलना बिलकुल अनर्गलवाद है। फिर भी राजा ने मूर्खतावश इन बातों पर विश्वास कर लिया। इसी प्रकार थोड़े ही से कथोपकथन एवं मुनिवेष से कपटी पर पहले ही से राजा ने पूरा अनुराग दिखलाया, जो विना पूर्ण परिचय के अप्रयुक्त था। इतनी शीघ्रता से उसे राजा को शुचि, सुमति जानना तथा प्रीतिभाजन मानना भी संदेह से ख़ाली न था। किसी को एकाएकी आदि सृष्टि के समय उत्पन्न मान लेना मूर्खता की पराकाष्ठा है, परंतु राजा ने थोड़ी-सी तप-महिमा सुनकर उसे भी मान लिया। उसे समझना चाहिए था कि उसका पहचानना किसी के लिये कठिन न था ; क्योंकि उसके राजा होने से लाखों मनुष्य उसे जानते थे। फिर भी उसने कपटी मुनि की परीक्षा भी लेने में अपना नाम-मात्र पूछना अलं समझा। कपटी ने नाम भी एकाएकी न बतलाकर पूरे निश्चय के साथ भूमिका बाँधकर पिता के नाम-सहित राजा का नाम कहा। फिर भी उसे समझ पड़ा कि राजा शायद कुछ और पूछ बैठे और पोल खुल जाय, अतः उसने उसे सोचने और प्रश्न करने का अवसर ही न देकर तुरंत वरदान माँगने का लालच दे दिया और उसने मूर्खतावश मान भी लिया।

वरदान देने के पीछे से प्रभाव प्रदर्शन के उपाय छोड़कर कपटी ने कार्य-साधन की ओर ध्यान दिया और वरदान में एक त्रुटि लगा दी, जिसे दूर करने के लिये भविष्य में प्रयत्न करना पड़े, और इस प्रकार प्रयोजन बने। उसे यह भी संदेह था कि यदि यह किसी से ये बातें कह देगा, तो वह इसे इसकी प्रचंड मूर्खता पर सचेत कर देगा। इसीलिये मरण का द्वितीय कारण कथा का प्रकट करना इस धूर्तराज ने बता दिया। इसके पीछे ब्राह्मणों के वश करने के विषय में स्वयं कुछ न कहकर इसने राजा को ही

वह प्रबंध बाँधने को छोड़ दिया। वह जानता ही था कि राजा उससे उसकी विधि अवश्य पूछेगा। इसीलिये अपनी ओर से एकाएकी बहुत कुछ कहकर उसने संदेह का कारण उपस्थित नहीं किया।

राजा के पूछने पर उसने यह युक्ति भी अपने अधीन बताई, परंतु अपना प्रभाव स्थिर रखने को यह भी कह दिया कि वह राजा के यहाँ नहीं जा सकता। फिर भी इस भय से कि प्रभाव-महत्त्व के कारण शायद राजा उसे घर ले जाने का अनुरोध ही न करे, कपटी ने यह भी कह दिया कि "जौं न जाउँ तव होय अकाजू ; बना आइ असमंजस आजू।" इस पर राजा ने हठ किया और वह तुरंत मान गया। किसी नए मनुष्य के एकाएक भोजन बनाने से औरों को संदेह उठ सकता था, इसी से उसने राजपुरोहित के वेष में ऐसा करना उचित समझा और तीन दिन में वहाँ का सब हाल जान लेने के विचार से इतना समय अपने हाथ में रक्खा। कपटी को स्वयं आश्रम ही में रहना था, अतः उसने कह दिया कि मैं पुरोहित को अपने रूप में यहीं रक्खूँगा।

अब कपटी का पूरा प्रबंध ठीक हो गया, सो अधिक वार्तालाप में किसी प्रश्नोत्तर द्वारा संभवतः संदेह उठ पड़ने का भय समझकर उसने राजा को तुरंत सोने की आज्ञा दे दी, तथा कालकेतु की माया के सहारे स्वप्रभाव-वर्द्धन के विचार से राजा को सोते ही नगर पहुँचाने का वचन दिया और उसे पूरा भी कर दिखाया।

शूकर का कालकेतु निशिचर के स्वरूप में एकाएक आने से पाठक पर नाटक के समान भारी प्रभाव पड़ता है। "स्रमित भूप निद्रा अति आई। सो किमि सोव सोच अधिकाई।" में स्वभाव-वर्णन की अच्छी बहार है। कालकेतु के कार्यों में कर्म-शूरता ख़ूब देख पड़ती है।

कपटी ने स्वयं राजा के परोसने का इसीलिये प्रबंध बाँधा था कि उसी पर पूरा दोष समझ पड़े । उसने समझा था कि साल-भर में कभी-न-कभी विप्र-मांस का हाल खुल ही जायगा । उसके भाग्य-वश ऐसा पहले ही दिन हो गया । राजा ने शूकर का पीछा करने में धैर्य दिखलाया था, परंतु आकाशवाणी सुनकर बुद्धिशून्यता के शाप से प्रथम घबड़ाकर वह कुछ भी न कह सका । वह शूरता के कर्मों में धैर्यवान् था, परंतु बुद्धि में बालकों के समान अजान था । शापोद्धार के विषय में भी उसने ब्राह्मणों से कुछ विनती न की और उन्होंने भी प्रकट में तो उसे निर्दोष कह दिया, किंतु उसकी वास्तविक कुटिलता पर विचारकर शाप-तीक्ष्णता को कुछ भी न घटाया ।

कालकेतु एवं कपटी राजा ने एक वर्ष भी न ठहरकर अपने सहायकों सहित राजनगर घेरकर भानुप्रताप का सर्वनाश कर डाला । कवि ने इस वर्णन के पीछे विप्र तथा भावी माहात्म्य-विषयक निम्न छंद कथा के सार-स्वरूप कहे—

"सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा ; बिप्र-साप किमि होइ असाँचा ।
भरद्वाज सुनु जाहि जब होइ बिधाता बाम ;
धूरि मेरु सम जनक जम ताहि ब्याल सम दाम ।"

ये छंद इस कथा के अंतिम भाग में बहुत ही उपयुक्त हैं । दोहे से कवि ने प्रकट किया कि ब्राह्मण हानिकारक नहीं होते, परंतु राजा के लिये विधि वाम होने से वे ही नाशकारी हो गए, जैसे पिता तक यम-तुल्य हो सकता है ।

इस कथा के राजा, कपटी मुनि और कालकेतु प्रधान पात्र हैं । राजा वीर, धैर्यवान्, धर्मी, परंतु मूर्ख था और कुसंगति से कुटिल तथा स्वार्थी भी हो सकता था । उसने ब्राह्मणों के साथ छल किया, जिसका फल उसे पूरा मिला । कालकेतु पूरा मायावी तथा कार्यकुशल था, परंतु कपटी मुनि की भाँति बुद्धि-वैभव

दिखलाकर कार्य-साधन के प्रबंध नहीं कर सकता था। इसीलिये उसने इस धूर्त की सहायता ली। ये दोनों मनुष्य बदला लेने में ख़ूब सन्नद्ध थे। कपटी मुनि बड़ा ही चतुर एवं प्रबंधकर्ता था। पहले उसने राजा को भुलाया और फिर अन्य राजाओं को पत्र लिखकर युद्ध का प्रबंध किया। इसने अपने को आदि सृष्टि में उत्पन्न कहकर बड़ी ही संदेह-पूर्ण दशा में डाला, परंतु ऐसा कहने के पूर्व यह समझ चुका था कि राजा पूरा मूर्ख है और पूर्णतया इसके वश में है। कपटी मुनि और कालकेतु चाहते तो सोते में राजा को वहीं समाप्त कर देते; परंतु वे उसका सकुटुंब नाश करना चाहते थे; सो केवल उसे मारना उन्होंने काफ़ी न समझा। कवि ने इस कथा द्वारा शायद यह भी दिखाया कि ब्राह्मणों ने क्रोधवश थोड़े-से अपराध पर राजा के सपरिवार नाश करने में अनौचित्य दिखलाया, जिससे समय पर रावण द्वारा उन्हें दुःख हुआ।

इस कथा में गोस्वामीजी ने छल-वार्ता कराने में अच्छी सफलता दिखलाई और राजा की मूर्खता प्रकट करने को कुछ ऐसे भी कथन करा दिए, जिनसे बुद्धिमान् मनुष्य को संदेह होना उचित था। यदि युद्ध में कालकेतु तथा कपटी मुनि की गोस्वामीजी दुर्दशा दिखला देते, तो पाठक को अधिक प्रसन्नता होती, परंतु संक्षिप्त वर्णन के कारण वे ऐसा न कर सके।

उपर्युक्त उदाहरणों से ज्ञात होगा कि हमने कवियों की साहित्य-गरिमा कैसे विचारों से स्थिर की है। प्रत्येक लेखक के विषय में ऐसे-ही-ऐसे विस्तृत कथन करने से ग्रंथ का आकार बहुत अधिक बढ़ जाता, बरन् यों कहना चाहिए कि इतिहास-ग्रंथ में ऐसे कथनों को स्थान मिल ही नहीं सकता। ऐसे ही विचारों से हमने प्रत्येक स्थान पर कारण लिखे विना कवियों को श्रेणीबद्ध किया और उनकी रचनाओं पर अनुमति प्रकट की है।

काव्य-रीति

इस ग्रंथ-भर में साहित्य का विषय कहा गया है, सो उचित जान पड़ता है कि उसका भी सूक्ष्म कथन यहाँ कर दिया जाय। विस्तार-पूर्वक वर्णन से इस विषय का एक भारी ग्रंथ बन सकता है, परंतु यहाँ दिग्दर्शन-मात्र का प्रयोजन है। भाषा-साहित्य का आधार संस्कृत-काव्य है और हमारी रीति-प्रणाली विशेषतया उसी से निकली है। भाषा के आचार्यों ने बहुत करके मम्मट के मत पर अनुगमन किया है, यद्यपि संस्कृत के अन्य आचार्य बिलकुल छोड़ नहीं दिए गए हैं। हमारे आचार्यों ने संस्कृत का आधार मानकर भी बहुत स्थानों पर अपने पृथक् नियम बनाए हैं। हिंदी और संस्कृत दो पृथक् भाषाएँ हैं, सो ऐसी विभिन्नताओं का होना स्वाभाविक भी है। प्रत्येक आचार्य ने पुरानी रीतियों पर चलते हुए बहुत-सी बातों में नई प्रणालियाँ स्थिर की हैं। हमारे यहाँ इतने आचार्य हो गए हैं कि हिंदीवालों को संस्कृत रीति-ग्रंथ पढ़ने की अब कोई आवश्यकता नहीं रही है। इन्हीं आचार्यों के आधार पर यहाँ कथन किया जायगा।

पदार्थ-निर्णय

सबसे पहले पाठक को पदार्थ-निर्णय पर ध्यान देना चाहिए। पद वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक होते हैं और जिन शक्तियों से ये जाने जाते हैं, उन्हें अभिधा, लक्षणा और व्यंजना कहते हैं। अभिधा से सीधा-सादा अर्थ लिया जाता है और लक्षणा में मुख्यार्थ न बनने से वह तट से ले लिया जाता है, जैसे "लाठी चलती है" के कहने से उसके चलानेवाले का बोध होता है। ये कई प्रकार की होती हैं। व्यंजना में सीधा अर्थ छोड़कर और ही अर्थ लिया जाता है, जैसे 'दुशालों के पाँवड़े पड़े हैं' कहने से अहंकार या अमीरी व्यंजित होती है। व्यंजना अभिधामूलक, लक्षणामूलक

और व्यंग्यमूलक होती है और वचन, क्रिया, सुर तथा चेष्टा से प्रकट होती है। यहाँ तक शब्दों से मुख्य प्रयोजन रहा, परंतु आगे चलकर ध्वनि-भेद में वाक्यों से संबंध है। किसी वाक्य से कुछ शब्दार्थ निकलता है और उस शब्दार्थ से कुछ पृथक् भाव भी कहीं-कहीं प्रकट होता है। यही पृथक् भाव दिखाने में ध्वनि-भेद काम आता है। यदि कहा जाय कि "आपके चरण की रज से मैं पवित्र हो गया", तो यहाँ प्रकट में तो रज का यश-गान है, परंतु वास्तव में आपका माहात्म्य कहा गया है। यही माहात्म्य ध्वनि-भेद से प्रकट होता है। ध्वनि अगूढ़ और गूढ़ होती है। अगूढ़ ध्वनि वह है, जो साधारण लोगों की समझ में आ जाय; परंतु गूढ़ ध्वनि को केवल साहित्यवेत्ता एवं प्रवीण पुरुष ही समझ सकते हैं। अत्यंत तिरस्कृत वाच्य-ध्वनि, अर्थांतरसंक्रमित-ध्वनि आदि १८ प्रकार की ध्वनियाँ होती हैं। इसके आगे भी तात्पर्य प्रधान है। यदि आपने मुझसे कहीं जाने को कहा और मैंने सीधा-सादा इनकार न करके जाने में बहुत-सी आपत्तियाँ बताकर कथन किया कि आगे जैसी मर्ज़ी, तो सब बातों का तात्पर्य यह निकला कि मैं आना नहीं चाहता। किसी प्रबंध के सारांश को तात्पर्य कहते हैं।

पिंगल

पदार्थ-निर्णय के पीछे पिंगल पर विचार करना चाहिए। इसमें मेरु, मर्कटी, पताका, नष्ट, उद्दिष्ट और प्रस्तार में सिवा कौतुक के और कुछ नहीं है। छंद दो प्रकार के होते हैं—एक मात्रावृत्त और दूसरे वर्णवृत्त। मात्रावाले छंदों में वर्णों का विचार नहीं होता और वर्णवाले छंदों में मात्रा का नहीं। सवैया आदि की भाँति कुछ छंद ऐसे भी होते हैं, जिनमें मात्रा तथा वर्ण दोनों का विचार होता है। वर्ण गुरु और लघु होते हैं। 'काम' में 'का' गुरु एवं 'म' लघु है। इसी प्रकार अंजन एवं बौद्ध में भी पहले ही अक्षर गुरु

हैं। जहाँ छंद बिगड़ने लगता है, वहाँ गुरु को लघु करके भी मृदु उच्चारण द्वारा पढ़ लेते हैं; परंतु लघु अक्षर गुरु का काम कभी नहीं दे सकता। उपर्युक्त तीन प्रधान उपविभागों में एक-एक में बहुत-से छंद हैं, यहाँ तक कि कुल छंदों की संख्या सैकड़ों पर पहुँची है और फिर भी पिंगलों में कहे हुए नियमों से हज़ारों नए छंद बनाए जा सकते हैं। छंदों के चरणों में भी ठहरने के लिये कुछ गिने हुए वर्णों के पीछे रुकावट होती है, जिसे यति कहते हैं। जब एक चरण के शब्द का वर्ण दूसरे चरण में चला जाता है, तब छंद में यतिभंग-दूषण लगता है। छंद के खंडित हो जाने से छंदोभंग-दूषण आता है।

गणागण

गणागण विचार भी इसी से मिलता हुआ है। इसमें कहीं छंद के प्रथम तीन और कहीं प्रथम छः अक्षर लेकर उन पर देवताओं के प्रभाव और फलों का विचार होता है। इसका कुछ कथन मनी-राम-संबंधी लेख में है। इसी प्रकार दग्धाक्षर का विचार है।

"प फ ब भ ट ठ ढ ण म ख ह य झ र व ल थ सत्रह अंक।
कवित आदि मैं देहु जनि करत राज सों रंक॥"

गणागण विचार एवं दग्धाक्षर को हम बखेड़ा-मात्र समझते हैं। इनमें कोई सार पदार्थ नहीं समझ पड़ता।

गुण

साहित्य-गुण-कथन में आचार्यों का कुछ मत-भेद है, जो विशेषतया केवल गुण-गणना-संबंधी है। श्रीपति ने गुणों को रस-अंगी धर्म कहकर दस शब्द-गुण तथा आठ अर्थ-गुण माने हैं। यथा—

शब्द-गुण = उदारता, प्रसाद, उदात्त, समता, शांति, समाधि, उक्ति-प्रमोद, माधुर्य, सुकुमारता और संक्षिप्त।

अर्थ-गुण = भव्यकल्प, पर्यायोक्ति, सुधर्मिता, सुशब्दता, अर्थ-व्यक्त, श्लेष, प्रसन्नता और ओज।

इन्होंने इन सब गुणों के पृथक्-पृथक् लक्षण दिए हैं। देवजी ने शब्द एवं अर्थ को मिलाकर केवल दस गुण माने हैं—यथा, अर्थ-श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यक्त, समाधि, कांति, ओज और उदारता।

हम इन्हीं को ग्राह्य मानते हैं और मोटे प्रकार से तो केवल ओज, माधुर्य और प्रसाद ही प्रधान गुण माने गए हैं। कोई आचार्य इनकी संख्या अपनी रुचि के अनुसार और भी बढ़ा सकता है। यद्यपि स्वभावोक्ति एक अलंकार है, तथापि उसकी गणना गुणों में भी होनी चाहिए।

दोष

आचार्यों ने बहुत प्रकार के दोष माने हैं और भिन्न-भिन्न आचार्यों में उनकी संख्याओं के विषय में बड़ा अंतर है। दोष शब्द, अर्थ, वाक्य एवं प्रबंध-संबंधी हो सकते हैं। केशवदास ने थोड़े ही दोष कहे हैं, परंतु श्रीपति ने इनका अच्छा विस्तार किया है। दास ने भी दोषों का उत्कृष्ट वर्णन किया है। कवियों ने यहाँ तक कहा है—'ऐसो कवित न जगत में जामें दूषन नाहिं', परंतु इसे अत्युक्ति समझना चाहिए।

भाव

भाव-भेद, रस-भेद एवं अलंकार काव्य के मुख्यांग हैं।

हमारे आचार्यों ने स्थायी, विभाव, अनुभाव, सात्विक (तन-संचारी), संचारी (मन-संचारी) और हाव-नामक भाव के छः भेद माने हैं। कोई-कोई हाव को मुख्य भेदों में नहीं मानते। स्थायी भाव बीजांकुर-समान रस का कारण होता है। विभाव के आलंबन और उद्दीपन-नामक दो भेद हैं। 'रस उपजै आलंबि जेहि सो आलं-

बन होय ; रसहि जगावै दीप ज्यों उद्दीपन कहि सोय ।' आलंबन में नायक-नायिका का वर्णन आता है और उद्दीपन में आभूषण, चंदन, षट्ऋतु, वन, नदी, पहाड़, लता, कुंजादि का। अनुभाव में क्रियाएँ अथवा दशाएँ हैं, जिनसे रस का अनुभव होता है। स्तंभ, स्वेद, रोमांच, वेपथु, स्वरभंग, वैवर्ण्य, आँसू और प्रलय नामक आठ सात्त्विक भाव हैं । कोई-कोई जृंभा को नवाँ सात्त्विक मानते हैं । निर्वेद, ग्लानि, शंका आदि ३३ संचारी भाव हैं। हाव का लक्षण यह है— "होहिं सँजोग सिँगार मैं दंपति के तन आय ; चेष्टा जे बहु भाँति की ते कहिए दस हाय"। नायक के पति, उपपति और बैसिक-नामक तीन प्रधान भेद हैं। इनके भेदांतर बहुत हैं। पीठ मर्द, विट, चेटक और विदूषक नायक सखा अथवा नर्म सचिव कहलाते हैं । नायिका के भेदांतर जाति, कर्म, अवस्था, मान, दशा, काल और गुण के अनुसार किए गए हैं ; परंतु देवजी ने उन्हें वंश, अंश, जाति, कर्म, देश, काल, गुण, वय, सत्त्व और प्रकृति के अनुसार विभक्त किया है। इनके अतिरिक्त नागर, ग्रामीण, ज्येष्ठा-कनिष्ठा और सखी के भी कथन आए हैं। स्वकीया नायिका के यौवन, रूप, गुण, शील, प्रेम, कुल, भूषण और विभव-नामक आठ अंग हो सकते हैं । इन आठों अंगोंवाली नायिका को अष्टांगवती कहते हैं । परकीया में कुल को छोड़कर शेष सात अंग हो सकते हैं, परंतु गणिका में कुल, विभव, प्रेम और शील का अभाव है । इसी से कई आचार्य इसको वर्णन-योग्य नहीं समझते। उपर्युक्त सातों भेदों के अनुसार सूक्ष्मतया नायिका-भेद यहाँ लिखा जाता है—

(१) जाति=पद्मिनी, चित्रिणी, संखिनी और हस्तिनी।

(२) कर्म=स्वकीया, परकीया और सामान्या। ज्येष्ठा-कनिष्ठा का कथन स्वकीया के अंतर्गत होता है।

(३) अवस्था=मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा।

(४) मान=धीरा, धीराधीर और अधीरा।

(५) दशा=अन्य-सुरति-दुःखिता, मानवती और गर्विता।

(६) काल=प्रोषितपतिका, कलहांतरिता, खंडिता, अभिसारिका, उत्कंठिता, विप्रलब्धा, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, प्रवत्स्यत्पतिका और आगतपतिका।

(७) गुण=उत्तमा, मध्यमा और अधमा।

उपर्युक्त भेदों के भेदांतर बहुत अधिक हैं। इसी को नायिका-भेद कहते हैं।

रस

रस की उत्पत्ति भावों से है, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। "जो विभाव, अनुभाव अरु बिभिचारिन करि होय ; थिति की पूरन बासना, सुकवि कहत रस होय ।" रस दो प्रकार का माना गया है अर्थात् लौकिक और अलौकिक। अलौकिक रस स्वाप्निक, मानोरथ तथा औपनायक-नामक तीन उपविभागों में बँटा है। लौकिक रस नव प्रकार का होता है, अर्थात् शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्‌भुत और शांत। शांत-रस नाटक में नहीं कहा जाता है। हरएक रस प्रच्छन्न या प्रकाश होता है। शृंगार दो प्रकार का है—संयोग और वियोग। संयोग-शृंगार में दश हावों का भी कथन होता है। वियोग-शृंगार में पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुणात्मक-नामक चार भेदांतर हैं। पूर्वानुराग में अभिलाष, चिंता, सुमिरन, गुन-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण-नामक दश दशाएँ होती हैं। कवि लोग मरण के स्थान पर प्रायः मूर्च्छा-मात्र का वर्णन कर देते हैं। मान लघु, मध्यम या गुरु होता है। "सहजै हाँसी खेल में, बिनै बचन सुनि कान ; पाँय परे पिय को मिटै लघु, मध्यम, गुरु मान।" प्रवास दूर या समीप का होता है और करुणात्मक वियोग के दो उपभेद हैं, जिन्हें करुणतम

एवं करुणा कहते हैं। प्रथम में रति और शोक दोनों रहते हैं, परंतु करुणा में केवल शोक रह जाता है।

नव रसों में कुछ मुख्य हैं और शेष उनके संगी।

मुख्य रस	उनके संगी रस
शृंगार	हास्य, भयानक
वीर	रौद्र, करुण
शांत	अद्भुत, बीभत्स

शृंगारी कवियों ने वीर और शांत को भी शृंगार के संगी मानकर उसे रस-राज कहा है।

अब कुछ अन्य रसों के भेदांतरों का भी दिग्दर्शन यहाँ कराए देते हैं।

हास्य=उत्तम, मध्यम, अधम।

करुण=सुख करुण, लघु करुण, अति करुण, महा करुण। करुण रस का प्रादुर्भाव इष्टहानि, अनिष्टश्रवण, शोक एवं आशा के छूटने से होता है।

बीभत्स=तन-संकोच, मन-संकोच।

वीर=युद्ध, दया, दान।

निम्न-लिखित रस एक दूसरे के मित्र या शत्रु हैं—

मित्र	शत्रु
शृंगार का हास्य	शृंगार का बीभत्स
रौद्र का करुण	वीर का भयानक
वीर का अद्भुत	रौद्र का अद्भुत
बीभत्स का भयानक	करुण का हास्य

जो रस एक दूसरे के मित्र या शत्रु नहीं हैं, वे उदासीन कहलाते हैं। मित्र एवं उदासीन रसों का साथ-साथ वर्णन हो सकता है, परंतु शत्रुओं का नहीं।

देश-विरोधी, काल-विरोधी, वर्ण-विरोधी, विधि-विरोधी, संघ-

विरोधी, पात्र-विरोधी, रस-विरुद्ध और भाव-विरुद्ध वर्णनों को नीरस कहते हैं।

संयोग श्रृंगार में आलस्य, उग्रता, एवं जुगुप्सा का वर्णन नहीं हो सकता। कवियों ने विशेष रसों के संचारी भी लिखे हैं।

श्रृंगार

शंका, सूया, भय, गलानि, धृति, सुमृति, नींद, मति;
चिंता, विस्मय, व्याधि, हर्ष, उत्कंठा, जड़गति।
मद, विषाद, उन्माद, लाज, अवहित्था जानहु;
सहित चपलता ये विशेष सिंगार बखानहु।
सामान्य मते संयोग मैं सकल भाव बरनन करहु;
आलस्य, उग्रता भाव द्वै सहित जुगुप्सा परिहरहु।

हास्य

श्रम, चापल, अवहित्थ अरु निंदा, स्वप्न, गलानि;
संका, सूया हास्य-रस संचारी ये जानि।

करुण

करुण रोग, दीनता, स्मृति, ग्लानि चित्त निर्वेद;

रौद्र

चापल, सूय, उछाह, रिस, रौद्रहु गर्व अखेद।

वीर

श्रम, सूया, धृति, तर्क, मति, मोह, गर्व अरु क्रोध;
रोम हर्ष, उद्धत्व रस बीरावेग प्रबोध।

भयानक-बीभत्स

त्रास मरन ये भयानक अरु बीभत्स बिषाद;
भय, मद, व्याधि बितर्क अरु अपस्मार उन्माद।

अद्भुत-शांत

मोह, हर्ष, आवेग मति, जड़ता, विस्मय आनि;

वृत्ति

रसों का यह सूक्ष्म वर्णन यहीं समाप्त होता है। रसों एवं गुणों को मिलाकर कवियों ने कैशिकी, आरभटी, भारती और सात्वती-नामक चार वृत्तियों का कथन किया है।

पात्र

पात्र-विचार भी रसों एवं भावों के विषय से मिलता-जुलता है। पात्र वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक होते हैं। इनके आधार मुख्यतया इस प्रकार हैं—

वाचक पात्र के आधार—शुद्धस्वभावा स्वकीया, अनुकूल पति, सखी विद्याशीला, गुराइनि, नर्म सचिव पीठमर्द, गुरुजन धाय, कुल धर्म का उपदेश।

लाक्षणिक पात्र के आधार—गर्वस्वभावा स्वकीया, दक्षिण पति, धृष्टा सखी, विट नर्म सचिव, दूती मालिनि नायनि, उपदेश पिय वश करने के उपाय।

व्यंजक पात्र के आधार—शुद्ध परकीया, नायक शठ व धृष्ट, नर्म सचिव, विट एवं विदूषक, दूती नीच पुर-जन, उपदेश निंद्य कर्म।

अलंकार

अब अलंकारों का वर्णन शेष रहा। अलंकार शब्द एवं अर्थ-संबंधी होते हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास के अंतर्गत वीप्सा, यमकादि आते हैं। ये गणना में थोड़े हैं। चित्र-काव्य इसी के अंत-र्गत है, जिसमें शब्द-वैचित्र्य की प्रधानता है। भाव-शिथिलता के कारण आचार्यों ने इसे प्रशंसनीय नहीं माना है। अर्थालंकारों में १०१ मुख्य अलंकार हैं जिनके भेदांतर अनेक हैं। देवजी ने

३१ ही अलंकार मुख्य माने हैं और उनमें से भी उपमा और स्वभाव को विशेषतया प्रधान रक्खा है। अलंकारों में उपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, प्रतीप, रूपक और परिणाम उपमा से पूरा संबंध रखते हैं। इनके अतिरिक्त उत्प्रेक्षा, तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टांत, निदर्शना, व्यतिरेक, समासोक्ति, अप्रस्तुत प्रशंसा, प्रस्तुतांकुर और ललित भी उपमा के ही समान हैं। और भी अपह्नुति, अतिशयोक्ति, निदर्शना, उक्ति, आक्षेप, विभावना, असंगति, विशेष, प्रहर्षण और उल्लास प्रधान अलंकार हैं। रसवदादिक सात अलंकार ऐसे हैं जो रस-भेद में भी गिने जा सकते हैं। साधारण कवि अलंकारों के लाने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं, पर तो भी उनकी रचना में एकआध अलंकार कठिनता से आता है। उधर उत्कृष्ट कवि साधारण वर्णन करते चले जाते हैं, परंतु वे ऐसे शब्द एवं भाव लाते हैं जिनमें आप-से-आप अलंकारादि-संबंधी उत्तमताएँ बहुतायत से आ जाती हैं।

काव्यांग

आचार्यों ने रसों को काव्य-फल का रस माना है। एक महाशय ने कविता के विषय में कहा है कि—

> व्यंग्य जीव ताको कहत शब्द अर्थ है देह ;
> गुन गुन, भूषन भूषनै, दूषन दूषन एह।

इस मत में व्यंग्य को जीव मानना सर्वसम्मत नहीं है। यदि वाक्य को देह कहकर कवि अर्थ को मस्तिष्क और रस को जीव बतलाता, तो उसके कथन में शायद सर्वसम्मति की मात्रा बढ़ जाती।

साहित्य-प्रणाली का यह अत्यंत सूक्ष्म वर्णन यहीं समाप्त होता है। हमें शोक है कि स्थानाभाव से हम इसका कुछ भी विस्तार नहीं कर सके। आशा है, यह वर्णन सहृदय पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करने को काफ़ी होगा। रीति-ग्रंथों के अवलोकन से इसका पूरा स्वाद मिल सकता है। यहाँ इतना और कह देना चाहिए कि

हमारे यहाँ का रीति-विभाग बहुत ही पूर्ण है और संस्कृत को छोड़ अन्य भाषाओं में इसका जोड़ मिलना कठिन है।

वर्तमान शैली

इस रीति-वर्णन से साधारण पाठक को भ्रम पड़ सकता है कि क्या हमारे यहाँ साहित्य-रीति में स्वाभाविक वर्णन, प्रकृति-निरीक्षण, चरित्र-चित्रण आदि पर विशेष ध्यान नहीं दिया जा सकता है? ऐसा विचार उठना न चाहिए। उपर्युक्त रीति-कथन में कई स्थानों पर ऐसे वर्णनों का आदर किया गया है। देवजी ने अलंकारों में उपमा और स्वभाव को मुख्य माना है। स्वभावोक्ति में इन बातों की ही गुरुता है। इसी प्रकार समता, सुधर्मिता और प्रसन्नता-नामक गुणों में सुप्रबंध का अच्छा चमत्कार रहता है। सुप्रबंध में स्वभाव-वर्णन, प्रकृति-निरीक्षण, चरित्र-चित्रण आदि भली भाँति आते हैं। सुप्रबंध का मुख्य तात्पर्य यही है कि जिस विषय का वर्णन लिया जाय, उससे संबंध रखनेवाली सभी बातों का पूरा और सांगोपांग यथोचित कथन हो। यदि गुलाब को उठाया जाय, तो उसके वृक्ष, पत्ती, काँटे, डालियाँ, फूल, फूल की पत्तियाँ, उनकी सुगंध, रूप, रंग, पुष्प-रस, अर्क, इत्र, भ्रमर, कली का प्रातःकाल चिटककर फूटना, इत्यादि सभी बातों का कथन हो। यदि कोई मनुष्य नापदान तक के वर्णन में सुप्रबंध को स्थिर रक्खेगा, तो उसकी रचना सराहनीय होगी। हमारे यहाँ बहुत-से कवियों ने प्राकृतिक वर्णन अवश्य नहीं किए, परंतु इससे यह नहीं कहा जा सकता है कि हमारी साहित्य-रीति में ही इसका अभाव अथवा अनादर है।

भाषा-संबंधी विचार

हिंदी-ग्रंथों की भाषा कैसी होनी चाहिए, यह विषय भी विचारणीय है। कतिपय संस्कृत के विशेष प्रेमी विद्वानों का मत है कि हिंदी में कम-से-कम गद्य-लेखन-शैली प्रायः पूर्णतया संस्कृत व्याक-

रण से नियम-बद्ध होनी चाहिए। वे महाशय बाल की खाल निकालते हुए छोटी-छोटी बातों पर साधारण हिंदी-लेखकों की रचनाओं में मनमानी अशुद्धियाँ निकालने लगते हैं। ऐसे महानुभाव यह बात प्रायः बिलकुल भूल जाते हैं कि संस्कृत और हिंदी दो अलग-अलग भाषाएँ हैं। हिंदी का ढाँचा चाहे संस्कृत से भले ही बना हो, पर उसकी चाल-ढाल संस्कृत से विभिन्नता रखती है। यदि उन विद्वानों को संस्कृत का ऐसा प्रगाढ़ मोह है, तो उन्हें हिंदी को अलग छोड़ उसी भाषा में लिखना-पढ़ना चाहिए। हमने इस विषय पर बहुत दिनों तक भली भाँति पूर्ण विचार करके निश्चय किया है कि हिंदी को संस्कृत-व्याकरण के फेर में डालने से लाभ अति स्वल्प हो सकता है, पर हानि ऐसी प्रबल और असह्य होगी कि जिसका वार-पार नहीं। लाभ केवल इतना ही प्रतीत होता है कि हिंदी संस्कृत हो जायगी, अर्थात् उसका संस्कार होकर वह ऐसी नियम-बद्ध और स्थिर हो जायगी कि मनमानी घर-जानी की बात हटकर उसका एक नियमित रूप निश्चित हो जायगा और लेखक की इच्छानुसार उसमें हेर-फेर न हो सकेंगे। पर स्मरण रहे कि यह बात अन्य प्रकार से भी संपादित हो सकती है, क्योंकि किसी भी व्याकरण के निश्चित हो जाने पर उक्त गड़बड़ी मिट सकती है। हिंदी एक जन-समुदाय की सरल भाषा है और उसे दुर्गम एवं जटिल बना देने का एक-मात्र परिणाम यही होगा कि पाँच-सात वर्ष के उत्कट परिश्रम विना किसी को अपनी मातृ-भाषा का भी बोध न हो सकेगा। यह तो स्पष्ट ही है कि साधारण जन-समुदाय में एकदम विद्यानुराग जागृत नहीं हो सकता, अतः अगत्या अपढ़ और कुपढ़ एवं साधारण पढ़े-लिखे लोगों की भाषा कोई और ही हो जायगी। स्मरण रहे कि हमारे यहाँ साधारण "त" "म" कर लेनेवालों तक की संख्या सैकड़ा पीछे दस-ग्यारह से अधिक नहीं है और यदि स्त्रियों को भी जोड़ लें, तो यह लज्जास्पद-परता

प्रायः इसका भी आधा ही रह जाता है ! ऐसी कुदशा में सिवा इसके और हो ही क्या सकता है कि थोड़े ही दिनों में बेचारी हिंदी भी संस्कृत की भाँति मृत भाषाओं (Dead Languages) में परिगणित होकर शांत हो जाय और कोई दूसरी गँवारी नष्ट-भ्रष्ट भाषा उसकी स्थानापन्न बन बैठे ! इसका प्रयोजन कोई यह न समझ ले कि हम संस्कृत के मृत भाषा होने से प्रसन्न हैं, अथवा हमें उसको इस विशेषण से स्मरण करने में शोक नहीं होता, पर जो बात सत्य और अकाट्य है उससे इनकार करना भी व्यर्थ ही प्रतीत होता है। क्या ही अच्छा हो, यदि संस्कृत-भाषा की गणना प्रचलित जीवित भाषाओं में हो जाय, पर बुद्धिमान् मनुष्य का काम यह है कि वर्तमान और होनहार दशा पर ध्यान देता हुआ इस प्रकार चले कि आगे को कोई बुराई न होने पावे। हमारी तुच्छ बुद्धि में यह आता है कि यदि संस्कृत किसी समय में जन-समुदाय की भाषा रही होगी, तो उसका चलन इसी कारण सर्वसाधारण से उठ गया होगा कि उसका व्याकरण परम परिपूर्ण और संपन्न होने के कारण अति क्लिष्ट और दुर्ज्ञेय है। अतः हमारे विचार से हम लोगों का यह पवित्र कर्तव्य है कि हिंदी को उस दशा में जा पड़ने से बचाया जाय। यह अभीष्ट कैसे सिद्ध हो सकता है, इसका ब्योरेवार वर्णन हम नीचे करते हैं—

लिपि-प्रणाली

(१) लिपि-प्रणाली में कड़ाई न होनी चाहिए। कोई आवश्यकता नहीं है कि हम हिंदी-गद्य में भी शब्दों के शुद्ध संस्कृत रूप ही व्यवहृत करें। यदि कोई संस्कृत लिखता हो, तो बात और है, पर हिंदी में वैसा क्यों किया जाय ? क्या संस्कृत और हिंदी में कोई भेद ही नहीं है ? फिर संस्कृत-शब्दों के रोज़ाना बोलचाल में प्रचलित रूप हिंदी में क्यों न लिखे जायँ और एक ही शब्द को कई तरह लिखने में कौन-सी हानि हुई जाती है ? हमीं लोग सदा फ़ारसी

लिपि पर यह दोष ठीक ही आरोपित किया करते हैं कि उसके एक ही ध्वन्यात्मक अनेक अक्षरों की गड़बड़ी के कारण उसमें शुद्ध लिखने में बाधा पड़ा करती है और बालकों को यदि ठीक हिंदी लिख-पढ़ सकने के लिये दो वर्ष अलं हैं, तो उर्दू में उन्हें पाँच-छः वर्ष से कम नहीं लगते (यथा "द्वै वर्ष ही मैं लेहिं बालक शुद्ध लिखि पढ़ि याहि ; पर अन्य लिपि के ज्ञान-हित षट वर्षहू बस नाहिं")। ऐसी दशा में हिंदी-भाषा और नागरी लिपि को भी वैसी ही जटिल और दुर्बोध बना देने में हमें कोई भी लाभ प्रतीत नहीं होता। अतः हम हिंदी-हितार्थ यह आवश्यक समझते हैं कि एक ही शब्द नीचे लिखे हुए अथवा ऐसे ही चाहे जिस रूप में लिखा जाय—

नायिका—नायका, नाइका।

शतसई—सतसई, शतसैय्या, शतसैया, सतसैया, सतसइया।

सूर्य्य—सूर्य, सूर्ज, सूरज।

सकता—सक्ता।

अङ्ग—अंग।

कीर्त्ति—कीर्ति, कीरति।

विचार—बिचार।

कैकेयी—कैकेई, केकई, केकयी।

वेष—भेष, वेश, बेश, भेस, भेख।

महात्म्य—महात्म, महातम, माहात्म, माहात्म्य।

ईर्ष्या—इर्ष्या, इर्षा, इर्खा, इर्शा, इरखा।

क्षत्रिय—क्षत्री, छत्री।

धर्म्म—धर्म, धरम।

रसमयी—रसमई।

में—मैं।

मण्डन—मन्डन, मंडन, इत्यादि-इत्यादि।

इन अनेक रूपों पर कोई उत्कट संस्कृतज्ञ महाशय चाहे जितनी नाक-भौं चढ़ावें, पर हिंदी में इन सबका बेधड़क व्यवहार होता है, और होना चाहिए। कोई आवश्यकता नहीं कि इनमें से कोई एक स्थिर रूप अटल मान लिया जाय। सच पूछिए तो हिंदी में शब्दों के शुद्ध रूप वे हैं जिनका साधारण पठित जन-समुदाय में व्यवहार होता हो, यथा लाल-टेन, इस्टेशन, बिहार, अलोप, असास, अंजन, सिकत्तर, सोहै इत्यादि। इनके स्थानों पर यदि कोई लैन्टर्न, स्टेशन, विहार, लोप, आसायश, एन्जिन, सेक्रेटरी और शोभै लिखे, तो रियायत करके हम इन प्रयोगों को मान अवश्य लेंगे, पर उन्हें बेजा कहने में कोई संकोच नहीं हो सकता। इनमें कई शब्द विशेषतया विचारणीय हैं। आप चाहे जितना कहें, पर "बिहार" को साधारण जन-समुदाय कभी "विहार" न कहेगा। हिंदी में ब का प्रयोग प्रचुरता से होता है पर संस्कृत में प्रायः व को छोड़ ब कम देखने में आता है। जहाँ हिंदी में "ब" का प्रयोग प्रचलित हो, वहाँ उसी का व्यवहार होना चाहिए (यथा बिहारी, बिकास, बल इत्यादि)। हिंदी में शुद्ध संस्कृत-शब्दों के प्रयोगों पर ज़ोर देना वैसा ही समझा जायगा, जैसे कोई अँगरेज़ी में लैटिन शब्द लिखने का आग्रह करे। क्या "जान मिलटन" को अँगरेज़ लोग "जोनस मिल्टोनस" लिखना पसंद करेंगे? हमें हिंदी में अनेकानेक लेखकों की आवश्यकता है, पर बहुतेरे अँगरेज़ी पढ़े विद्वान् संस्कृत-व्याकरण के पूर्णज्ञ नहीं होते। अनेक केवल हिंदी जाननेवाले लोग भी भाषा की अच्छी सेवा किया करते हैं। यदि इन सब महाशयों को तिरस्कृत कर हिंदी-सेवा से विमुख कर दिया जाय, तो दस-पाँच पुराने पगगड़बाज़ों को छोड़ शायद किसी में भी हिंदी लिखने की पात्रता न समझी जायगी। यदि १२ वर्ष तक सिद्धांत-कौमुदी की फक्किका और महाभाष्य रटे विना कोई मनुष्य हिंदी का लेखक नहीं हो सकता, तो उसकी उन्नति के लिये शायद एकदम हताश होना पड़ेगा।

शब्दों के नए रूप

(२) इतना ही नहीं, बरन् शब्दों के नूतन रूप बना लेने में भी हम कुछ भी हानि नहीं समझते। बँगला के प्रसिद्ध लेखक बंकिम-चंद्र चटर्जी ने कहीं "सौजन्य" के ठौर "सौजन्यता" शब्द व्यवहृत किया था, जिस पर किसी संस्कृतज्ञ महात्माजी ने उन पर घोर आक्रमण किया। बंकिम बाबू ने केवल इतना कहकर झगड़ा मेट दिया कि "मैं तो 'सौजन्यता' लिखता हूँ, जब आप कोई ग्रंथ निर्माण करिएगा, तब उसमें आप सौजन्य ही लिखिएगा। सर्वसाधारण इस शुद्ध रूप पर मोहित होकर कदाचित् आप ही का ग्रंथ पढ़ेंगे।" पर वहाँ ग्रंथ बनावे कौन ? वहाँ तो दूसरों की कीर्ति बढ़ती देख हृदय में शूल हुआ चाहे और विना उनकी निंदा किए कब रहा जाय ! बस, ऐसे महापुरुषों को पर-निंदा से काम। प्रायः ऐसा ही हाल बँगला-कवि-कुल-मुकुट मधुसूदनदत्त के विषय में "गायिका" और "गायकी" पर हुआ था। द्वेषी लोग चामत्कारिक लेखकों पर यों ही व्यर्थ के आक्रमण करते आए हैं। उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि हिंदी के परम प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ कवियों तक ने बेधड़क ऐसे-ऐसे शब्द लिखे हैं, जो कि संस्कृत-व्याकरण से नितांत अशुद्ध ठहरते हैं, पर वे महात्मा जानते थे कि संस्कृत एक भाषा है और हिंदी दूसरी। संस्कृत के प्रकांड पंडित श्रीगोस्वामी हरिवंशहितजी ने हिंदी-कविता करने में सदा ही ध्यान रक्खा कि उनकी रचनाओं में ऐसे शब्द न आने पावें कि जिनका व्यवहार हिंदी में न होता हो। महात्मा सेना-पतिजी ने "कविताई" शब्द का प्रयोग किया है—"सेनापति कविता की कविताई बिलसति है।" यह बंकिम की "सौजन्यता" के ही समान है। और की जाने दीजिए, श्रीस्वामी हरिदासजी "भर्तृहरि" को अपनी कविता में "भरथरी" कहते भी नहीं

सकुचे। सारांश यह कि बात-बात में संस्कृत की बारीकियों को हिंदी में ला घसीटना ठीक नहीं है। हम स्वीकार करते हैं कि ऐसी दशा में हमारी भाषा में कुछ "अनस्थिरता" अवश्य रहेगी, पर हमें उसी की ज़रूरत है। हम विशेष स्थिरता चाहते ही नहीं। कुछ अस्थिरता हमें हिंदी के लिये आवश्यक प्रतीत होती है, क्योंकि नूतन विचारों को व्यक्त करने के लिये भाषा का दिनोदिन विकास होना ही ठीक है।

संधि

(३) संधि के झगड़ों से भी हिंदी को पाक रखना ही उचित है। हमारा मतलब यह है कि शब्दों को चाहे एक में मिलाकर लिखा जाय, चाहे अलग-अलग, और उनके किसी अक्षर में संस्कृत-व्याकरण के नियमानुसार चाहे परिवर्तन किया जाय या नहीं। यथा यज्ञोपवीत या यज्ञ उपवीत; श्रीमत् शंकराचार्य या श्रीमच्छंकराचार्य, बृहत् अंश या बृहदंश, जगत् मोहन या जगन्मोहन जगत् आधार या जगदाधार इत्यादि। इन दो-दो रूपों में से हिंदी में कोई भी लिखा जा सकता है।

विभक्ति-प्रत्यय

(४) विभक्ति-प्रत्यय का विवाद कुछ दिनों से हिंदी में छिड़ पड़ा है। अधिकांश लोगों का मत यही है कि हिंदी में विभक्ति-प्रत्यय होते ही नहीं, वरन् उनके ठौर ने, को, से (अर्थात् के द्वारा) के लिये, से (जुदाई का चिह्न), का (की, के), में (पै, पर), इत्यादि कारकों (Postpositions) से काम चलाया जाता है, पर कुछ विद्वान् अब तक यही झगड़ते आते हैं कि ये कारक विभक्ति-प्रत्यय-मात्र हैं और इन्हें अपने मुख्य शब्द (संज्ञा अथवा सर्वनाम) में मिलाकर लिखना चाहिए, न कि स्वच्छंद शब्दों की भाँति अलग करके। यथा "राम ने रावण को मारा"; इसे उक्त

विद्वज्जन यों लिखेंगे कि "राम ने रावण को मारा", अर्थात् "ने" और "को" को वे महाशय "राम" और "रावण" के साथ मिलाकर लिखेंगे, न कि अलग करके। पंडितवर गोविंदनारायण मिश्र ने इस विषय पर "विभक्ति-विचार"-नामक एक छोटी-सी पुस्तक लिख डाली है, जिसमें उन्होंने बड़ी विद्वत्ता के साथ सिद्ध किया है कि ने, से, के, में इत्यादि शब्द संस्कृत और प्राकृत के विभक्ति-प्रत्ययों से ही निकले हैं। परंतु यह मान लेने पर भी कोई कैसे कह सकता है कि ये कारक शब्द उक्त प्रत्ययों की भाँति अपने मुख्य शब्द (संज्ञा या सर्वनाम) के साथ ही सटाकर लिखे जायँ? संस्कृत में शब्दांश होते हुए भी वे हिंदी में पृथक् शब्द होने का गौरव प्राप्त कर सकते थे और कर भी चुके हैं। हिंदी का रूप और ढंग संस्कृत से भिन्न है और उसमें इन झगड़ों को स्थान देने से एक अनावश्यक कठिनाई उपस्थित करने के सिवा कोई भी लाभ नहीं। "राम ही का भाई", "कृष्ण ही ने सुना", "मुझी को दो", "तुम्हीं से कहा", इत्यादि व्यवहारों से स्पष्ट विदित होता है कि हिंदी में कारक-शब्द संज्ञा और सर्वनाम से अलग ही लिखे जाने चाहिए, नहीं तो उनके बीच एक तीसरा शब्द (प्रत्यय) ही क्योंकर आ जाता? इन प्रयोगों को अपवाद (Exceptions) कहना ठीक नहीं, क्योंकि हिंदी में अब तक उनका शब्दांश माने जाने का नियम स्थिर ही नहीं हुआ है। फिर कोई शब्द या वाक्य उद्धृत करने में उसे उलटे कामाओं (Inverted commas) में बंद करने की रीति हिंदी में भी प्रचलित हो गई है, अतः कारकों को मूल-शब्द के साथ लिखने में जहाँ कोई मूल-शब्द उद्धृत करने की आवश्यकता होगी, वहाँ कारक को भी उलटे कामाओं में वृथा ही बंद करना पड़ेगा। यथा "राम ने रावण को मारा", इस वाक्य में "ने" और "को" को "राम" और "रावण" के साथ मिलाकर लिखने की आवश्यकता

नहीं। इस उदाहरण में यदि कारकों को मूल-शब्दों में मिलाकर लिखें, तो जिन दो-दो शब्दों को छोटे टाइप में छापा है, उन्हें एक-साथ उलटे कामाओं में बंद करके "को को" और "रावण के" लिखना पड़ेगा, जो उपहासास्पद है, क्योंकि इस "को को" में पहला "को" उद्धृत किए हुए शब्द में से आता है और दूसरा हम अपनी ओर से जोड़ रहे हैं! इतना ही नहीं, बरन् अंतिम "को को" जो यहाँ उद्धृत किया गया है, उसके साथ "में" भी उलटे कामाओं में रखना पड़ेगा, अर्थात् कोई कारक शब्द जै बार उद्धृत करना पड़ेगा, प्रायः उतने ही अन्य कारक-शब्द उसके साथ उलटे कामाओं में घुसते चले जायँगे! इसमें तो पूरी वही कहावत ठहरेगी कि "आधा पाँव मेरा, आधा मेरी बधिया का"! ऐसी दशा में कारक-शब्दों को अलग ही लिखना उचित प्रतीत होता है; क्योंकि प्रयोजन केवल मूल-शब्द को उद्धृत करने का है, न कि कारक को।

लिंग-भेद

(२) हिंदी में सबसे बड़ा झगड़ा लिंग-भेद का है। प्रायः अन्य सभी भाषाओं में नपुंसकलिंग एवं त्रिलिंग भी हुआ करते हैं, पर हिंदी में निर्जीव पदार्थ भी पुंलिंग अथवा स्त्रीलिंग ही के अंतर्गत माने गए हैं। अतः प्रत्येक ऐसे पदार्थ को इन दो में से किसी एक में मान लेना होता है। इसके कोई भी स्थिर नियम नहीं हैं, केवल बोलचाल और महाविरे के अनुसार इस पर कारवाई की जाती है। यही कारण है कि अँगरेज़ों एवं अन्य विदेशियों को हिंदी सिखाने में सबसे अधिक उलझन लिंग-भेद में ही पड़ती है और प्रायः आजन्म उन्हें इस बाधा से छुटकारा नहीं मिलता। इतना ही नहीं, बरन् हमारे यहाँ के वे समालोचक, जो ईर्षा-द्वेष-वश आलोच्य लेख एवं लेखक का खंडन करना ही अपना कर्तव्य समझते हैं, हिंदी में प्रसिद्ध लेखकों तक की ऐसी ही "भूलें" खोज निकालने के लिये

बड़े उत्सुक रहा करते हैं! वे इतना तक नहीं विचारते कि यदि हमारे नामी लेखकगण भी इस लिंग-भेद को नहीं समझ सकते, तो इसमें किसका दोष है! वास्तव में यह "भूलें" केवल समालोचकों के मस्तिष्क में चक्कर खाया करती हैं और कहीं उनका अस्तित्व ही नहीं। यह देखने के लिये कि ऐसी "भूलें" हमारे-जैसे अल्पज्ञ ही किया करते हैं, या भाषा के मर्मज्ञ लेखकों के विषय में भी यह कहा जा सकता है, हमने "सरस्वती" पत्रिका के प्रथम भाग के पृष्ठों को उलट-पलट-कर देखा, तो एक, दो, तीन की बात नहीं, वरन् एकदम सभी लेखकों के लेखों में वैसे प्रयोग पाए गए। कुछ उदाहरण हम नीचे देते हैं—

(१) अतुल पैतृक संपत्ति के नाशकारी (पृष्ठ ४ कालम १) बा० राधाकृष्णदास।

(२) अर्जुन मिश्र ने भावदीय नामक टीका बनाई (पृ० २५ का० २) पं० किशोरीलाल गोस्वामी।

(३) इसकी प्रस्तुत प्रणाली आश्चर्यजनक है (पृ० २८ का० १) बा० श्यामसुंदरदास बी० ए०।

(४) सरस सरसी (पृ० २० का० १) बा० कार्तिकप्रसाद खत्री।

(५) कुतुब मीनार...बनी थी (पृ० ९८ का० २) बा० काशीप्रसाद जायसवाल।

(६) तीव्र बुद्धि (पृ० १८८ का० २) बा० दुर्गाप्रसाद बी० ए०।

(७) शोचनीय अवस्था (पृ० १९३ का० १) पं० जगन्नाथप्रसाद त्रिपाठी।

(८) निम्न-लिखित चिट्ठी (पृ० १९७ का० १) बा० केशवप्रसादसिंह।

(९) ऐसी नाथ सुलभ नहिं बानी (पृ० २१६ का० २) ला० सीताराम बी० ए०।

(१०) इनकी मृत्यु काशी में हुई (पृ० २४९ का० २) बा० मनोहरलाल खत्री।

(११) दुखमय युक्ति (पृ० २१९ का० १) सेठ कन्हैयालाल ।

(१२) बंगालियों की भाषा हिंदी से भी हीन, मलीन, और रोगग्रस्त थी (पृ० ३९९ का० २) प्रकाशक ।

(१३) सुमन चाहि उपमा यह चित पर चटक चढ़ी है । (पृ० १२२ का० २) बा० जगन्नाथदास बी० ए० ।

(१४) अब रहे पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, जिनके इस साल की सरस्वतीवाले लेख हमने इस कारण नहीं देखे कि उनकी बेकन-विचार-रत्नावली के कुछ ही पृष्ठों में ऐसे तीन प्रयोग हमें पहले ही मिल चुके थे । यथा—

जिनकी विवेचक शक्ति ठीक नहीं है (पृष्ठ १८) ।

डर मृत्यु विषयक वार्ता सुन कर बढ़ जाता है (पृ० १८) ।

उसमें अच्छी प्रकार प्रवेश नहीं होता (पृ० १४) ।

बस, हमको छोड़ केवल इतने लेखकों ने सरस्वती के प्रथम भाग में लेख दिए थे और सभी ने इस प्रकार की भाषा लिखी है कि जिसमें लिंग-विषयक "भूलें" स्थापित की जा सकती हैं, जैसा कि हमने ऊपर के उदाहरणों में छोटे टाइप में छापकर दिखला दिया है । श्रम करने से ऐसे ही प्रयोग सैकड़ों अच्छे लेखकों में दिखलाए जा सकते हैं । प्राचीन कवियों में भी ऐसे उदाहरण बहुतायत से मिलते हैं । वास्तव में ये अशुद्धियाँ नहीं हैं और ऐसे प्रयोगों को अशुद्ध स्थापित करके हमें हिंदी को विना प्रयोजन ही दुर्गम न बना देना चाहिए । हमारा तो यह मत है कि जहाँ तक कोई नपुंसक-लिंग-वाला प्रयोग स्पष्ट और निर्विवाद रूप से अशुद्ध न ठहर जाय, वहाँ तक उसमें लिंग-भेदविषयक "अशुद्धियाँ" स्थापित न करनी चाहिए; क्योंकि वास्तव में निर्जीव पदार्थ न पुंलिंग है और न स्त्रीलिंग । उसको किसी एक में धींगाधींगी ही से मान लिया जाता है ।

लिंग-भेद का झगड़ा हिंदी में यहाँ तक बढ़ गया है कि संज्ञा

और सर्वनाम के अतिरिक्त क्रिया, विशेषण और क्रिया-विशेषणों तक में उसकी सत्ता हो गई है। संज्ञा, सर्वनाम और क्रिया पर उसका अधिकार निर्विवाद ही है, पर विशेषणों एवं क्रिया-विशेषणों का भी लोग पिंड छोड़ना नहीं चाहते। इन पर अभी लिंग-भेद का हर ठौर पूर्ण साम्राज्य नहीं जमने पाया है, पर शोक का विषय है कि बाल की खाल निकालनेवाले लेखकों एवं समालोचकों का झुकाव स्पष्ट रूप से इसी ओर है कि ये भी बचने न पावें। हमारी समझ में इन अनावश्यक बारीकियों को हिंदी में स्थिर कर देना एवं उनका नए सिरे से संचार करना बड़ा ही हानिकारक है और विज्ञ पुरुषों को इसका विरोध करना ही परम धर्म समझना चाहिए। अभी तक प्रचलित ढंग यह है कि अच्छा, अच्छी, बड़ा, बड़ी आदि ठेठ हिंदी के विशेषणों में लिंग-भेद माना जाता है, परंतु संस्कृत शब्दवाले विशेषणों में ऐसा नहीं किया जाता है। 'उनकी भाषा बड़ी मधुर और सरल है' में कोई मधुरा और सरला नहीं कहता। यही ढंग स्थिर रहना चाहिए।

हिंदी की स्वतंत्रता

इन सब बातों के अतिरिक्त इस मामले में एक भारी सिद्धांत का प्रश्न उठता है, अर्थात् हिंदी कोई स्वतंत्र-भाषा है या नहीं? जो लोग बात-बात में संस्कृत के नियमों का सहारा हिंदी लिखने में भी ढूँढ़ते हैं; वे हमारी समझ में हिंदी के अस्तित्व से भी इनकार करनेवालों में हैं और उनको हम हिंदी के प्रचंड शत्रु समझते हैं। उनका हिंदी से अति शीघ्र संबंध छूट जाना ही हमारी देशभाषा के लिये मंगलकारी है। प्रत्येक भाषा के लिये स्वतंत्रता एक परमावश्यक गुण है। प्राचीन काल में प्राकृत संस्कृत-भाषा की परवा न करके अज्जउत्त (आर्यपुत्र), नियोअ (नियोग), विअ (इव), पत्त (पत्र), संकप्प (संकल्प), प्पदाण (प्रदान) आदि अपने ही रूपों में शब्दों का प्रयोग करती रही। धीरे-धीरे

पंडितों ने उसे भी दुर्गम व्याकरण के अटल नियमों से जकड़ दिया, जिसका फल यह हुआ कि थोड़े दिनों में वह लुप्त हो गई और धीरे-धीरे हिंदी ने उसका स्थान लिया। अभी तक हिंदी में कोई परम दृढ़ व्याकरण नहीं स्थिर हुआ है ; इसी से वह दिनोंदिन उन्नति करती चली जाती है । जिस समय उसका भी परम कठिन व्याकरण बन जायगा, तब वह भी मृत भाषाओं में परिगणित होने के लिये दौड़ने लगेगी, और देश में कोई दूसरी ही सुगम भाषा चल पड़ेगी। व्याकरण भाषा का अनुगामी होता है, न कि भाषा व्याकरण की। हमारी समझ में प्रत्येक भाषा के व्याकरण को यथा-साध्य अत्यंत सरल एवं सुगम होना चाहिए। यदि कोई व्याकरण ऐसा बने कि पुराने भारी लेखकों की भी रचनाएँ उसके नियमानुसार अशुद्ध ठहरें, तो वह व्याकरण ही निंद्य होगा और उसके बराबर भाषा का दूसरा शत्रु खोजना कठिन होगा, क्योंकि वह अपनी स्वा-मिनी भाषा के ही मूलोच्छेदन में प्रवृत्त रहेगा। संस्कृत-भाषा के शास्त्रार्थ मुख्य विषय को छोड़कर प्रायः "अशुद्धाङ्कि वक्तव्यम्" पर ही समाप्त होते हैं। हमारे यहाँ कुछ लेखकों में भी इन्हीं बातों की ओर रुचि बढ़ती हुई देख पड़ती है, जो सर्वथा तिरस्करणीय है। प्राचीन समय के महात्मा गोरखनाथ आदि संस्कृत के पूर्ण पंडित थे। उन्होंने अनेक संस्कृत के ग्रंथ लिखने पर भी भाषा गद्य तक में शब्दों के संस्कृत-संबंधी रूपों का तिरस्कार किया। गोरखनाथ का रचना-काल संवत् १४०७ था । इनका एक ऐसा वाक्य ग्रंथ में उद्धृत है, जिसमें जज्ञ, अस्नान, छन, सर्व, पुजि चुकौ और पितरन-शब्दों का इन्हीं रूपों में व्यवहार हुआ है, न कि संस्कृत के रूपों में। यही दशा महात्मा बिट्ठलनाथ एवं गोकुलनाथ की रचनाओं में है। पद्य में भी सब लेखक बेधड़क ऐसे ही शब्द रखते चले आए हैं। हमारे यहाँ अब गद्य-काल में हिंदी पर संस्कृत का प्रचंड आक्रमण हो रहा है।

देखना यह है कि बेचारी हिंदी कहाँ तक अपना रूप स्थिर रखने तथा प्राण बचाने में समर्थ होती है? आजकल कितने ही लेखकों का मत है कि पद्य में तो हिंदी में प्रचलित शब्दों के रूपों का लिखना उचित है, परंतु गद्य में शुद्ध संस्कृत-शब्द ही लिखने चाहिए। यह मत गोरखनाथ, विट्ठलनाथ, गोकुलनाथ, नाभादास, बनारसी-दास आदि प्राचीन कवियों के गद्य-लेखों के नितांत प्रतिकूल है। कोई कारण नहीं है कि पद्य में तो हिंदी-शब्दों का प्रयोग हो, परंतु गद्य में उनका स्थान एक दूसरी भाषा के शब्द ले लेवें। हिंदी के स्वत्व पर संस्कृतादि भाषाओं का ऐसा अधिकार जमना घोर अन्याय है।

ग्रंथ-रचयिता

इस भूमिका को समाप्त करने के पूर्व अपने विषय में भी कुछ बातों का कथन हम परंपरानुसार उचित समझते हैं। पहले हम दो ही लेखक एकसाथ लेख या ग्रंथ लिखा करते थे, परंतु आलोचना-संबंधी लेखों में प्रायः गुरुभ्राता पं० गणेशविहारीजी की भी कुछ-कुछ सहायता रहा करती थी। इस बात का कथन सन् १६०० की सरस्वती में प्रकाशित हिंदी-काव्य-आलोचना-नामक लेख में इस प्रकार किया गया था—

"इस लेख की रचना में हमें अपने सहोदर अग्रज श्रीयुत पंडित शिवविहारीलालजी और विशेषकर श्रीयुत पंडित गणेश-विहारीजी महानुभावों से बहुत कुछ सहायता मिली है, पर उनकी कृतज्ञता प्रकाश करनी हमें सर्वथा अनुचित है।"

गणेशविहारी

जब विनोद-संबंधी कार्य आरंभ हुआ, तब अपनी स्थिर प्रकृति के अनुसार गुरुभ्राता ने भी उसमें पूरा योग दिया, यहाँ तक कि थोड़े ही दिनों में यह प्रकट हो गया कि लेखकों में उनका नाम न रखना अन्याय है। इसी कारण हम तीनों भ्राताओं के नाम विनोदकर्ताओं

में रक्खे गए हैं । आप आजकल काशी-नागरीप्रचारिणी सभा की ग्रंथ-माला द्वारा देव-ग्रंथावली को संपादित करके प्रकाशित कर रहे हैं, जिसमें प्रेम-चंद्रिका, राग-रत्नाकर तथा सुजानविनोद निकल चुके हैं ।

हमको अपने ग्रंथों के विषय में विस्तार-पूर्वक कथन करने की इच्छा न थी, परंतु संसार की कुछ ऐसी विचित्र रुचि है कि कभी-कभी वह परम तुच्छ पदार्थों की भी तलाश करने लगता है और जब वह ऐसे स्थानों पर नहीं मिलते, जहाँ उनका मिलना स्वाभाविक है, तब उसे उचित क्रोध भी आ सकता है । फिर विनोद के इतिहास-ग्रंथ होने के कारण जब औरों के हालात लिखने का इसमें प्रयत्न किया गया है, तब अपना ही न लिखना कदाचित् विज्ञ-समाज में और भी निंद्य समझा जाय । इस कारण हम इसमें शेष दो लेखकों की रचनाओं का भी वर्णन किए देते हैं ।

शेष दोनों लेखक

संवत् १९४६-४७ के लगभग से हमारी पृथक्-पृथक् छंदोरचना का प्रारंभ हुआ, परंतु दोनों मनुष्यों ने ५० छंदों से अधिक नहीं रचे । इस समय तक हमने मिलकर काव्य-निर्माण करने का विचार नहीं किया था । हमने अपने उपनाम शिरमौर एवं शशिभाल रक्खे । संवत् १९५४ पर्यंत केवल स्फुट छंद रचे गए, जिनमें से कई छंद गुप्त हो गए । उदाहरण—

आवहिँ रेल जबै तुरकी महँ दौरि इटौँजे के लोग सिधावहिँ ;
धावहिँ बालक के गन त्यों द्विज स्याम बिहारी तहाँ पर जावहिँ ।
जावहिँ मित्रन को सँग लै तिनको कल के बिरतंत सुनावहिँ ;
नावहिँ सीस उमापति को पुनि लौटि सबै निज मंदिर आवहिँ ।

(यह हमारा प्रथम छंद है)

गृह धरि छौरि हरि जाय जमुना के तीर ,
लीने ग्वाल भीर कूद्यो नीर मैं सहित सुख ;

न्हाय कालिँदी को जलदान ससिभाल भल
दैकै आयो यहि थल आली सुनु मेरे दुख ।
सिव को लगाय ध्यान चाह्यो पय कीबो पान
करि कछु अनुमान मेरी ओर कीनो रुख ;
दोष सब मोहिं दियो मेरी ना प्रतीत कियो
दूध मारजार पियो सूँघत है मेरो मुख ।

पूछति राधे अहौ तुम को हम हैं हरि तौ बसौ कानन जाय कै ।
हैं नहिं बानर जाहु पतालहि नाहिंन व्याल धसौ जल धाय कै ॥
मंडुक हैं नहिं प्रानप्रिया बरसाने में तौ बरसौ घहराय कै ;
नाहिन वारि भनै ससिभाल हनौ तौ गयंदन को हरषाय कै ।

भूमि अकास विचित्र पला दिसि डोरि बयारि को दंड बनायो ;
तौलन बैठ्यो तिया मुखचंद औ चंद पितामह आपु सोहायो ।
चंद पला उठि ऊँचो भयो बिधिनै तब एक कियो मनभायो ;
दीन्हे चढ़ाय नछत्र सबै सिरमौर तबौ न बराबरि आयो ।

लव-कुशचरित्र

संवत् १९५९ में अलीगढ़ में हमने एक मास परिश्रम करके लव-कुशचरित्र-नामक ८८ पृष्ठों का एक पद्य-ग्रंथ लिखा । यह प्राचीन प्रथा का ग्रंथ है, जिसका "जहाँ जनम जेहि दीन्ह बिधाता, तेहि कुल धरम ताहि सुखदाता" मूल-सूत्र (Motto) है । उस समय भी हमारा यह सिद्धांत न था, परंतु ग्रंथ की कथा के अनुसार यही उसका मूल-सूत्र रहा । इसकी कथा यह है कि रामचंद्र जब रावण को जीतकर अयोध्या में राज्य करने लगे और सीता कठोरगर्भा हुईं, तब उन्हें हनूमान् द्वारा यह पता लगा कि एक रजक उनके सीता-ग्रहण को अनुचित समझता है । इससे उन्हें जान पड़ा कि उनकी लोक में निंदा है । इस विचार से उन्होंने सीता को वाल्मीकि-आश्रम के पास लक्ष्मण द्वारा जंगल में छोड़वा दिया और वे ऋषि के आश्रम में रहने

लगीं। थोड़े ही दिनों में उनके कुश-लव-नामक दो यमज पुत्र उत्पन्न हुए। इन बालकों ने शास्त्रों में पूर्ण पांडित्य प्राप्त करके शस्त्रों में भी अद्वितीय योग्यता संपादित की। कुछ दिनों में रामचंद्र ने अश्व-मेध किया। अश्व-रक्षा करते हुए शत्रुघ्न आश्रम को भी गए। वहाँ लव ने घोड़ा बाँधकर उनसे युद्ध किया, परंतु पूरी बहादुरी से लड़ने पर भी वह शत्रुओं द्वारा बंदी कर लिए गए। पीछे सीताजी ने कुश को भी युद्धार्थ भेजा, जिन्होंने रिपुदल विमर्दित करके लव का मोचन किया। जब सीताजी ने जाना कि राम-दल से पुत्रों का युद्ध हुआ, तब उन्होंने भविष्य में युद्ध शांत होने के लिये उन्हें शिक्षा दी, परंतु सब बातों पर सोच-विचार करके अंत में लड़ने की आज्ञा भी प्रदान की। इन बालकों ने क्रमशः लक्ष्मण तथा भरत को ससैन पराजित किया। जब राम लड़ने गए, तब उन्हें ज्ञात हुआ कि युद्धकर्ता उन्हीं के पुत्र थे। इस पर वे मोहित होकर रथ में लेट गए और लव ने शेष दल को पराजित किया। यह सुन सीताजी युद्ध-स्थल को गईं और उनके पुण्य-प्रताप से सब सैनिक फिर से जी उठे। तदनंतर वाल्मीकि ने सीता के सतीत्व की शपथ खाई और मैथिली ने पाताल में प्रवेश किया। इस स्थान पर बालकों की सांत्वना के लिये भरत ने परमेश्वर के विराट् रूप का वर्णन किया। तब राम ने सपुत्र अयोध्या जाकर थोड़े दिनों में अपने पुत्रों एवं भतीजों में राज बाँटकर भ्राताओं समेत सरयू-प्रवेश किया। कुश-लव ने भी बहुत काल पर्यंत राज्य करके सुरपुर पयान किया। यह ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है। उदाहरण—

बन लखे उपजत त्रास प्रेत निवास मानहु है सही ;
बहु सिंह-व्याघ्र-वराह डोलत उग्रता न परै कही।
सन-सन बयारि बहै चहूँ दिसि दुसह आतप भानु को ;
जल-हीन ताल मलीन तरु लहि मनहु दाह कृशानु को।

कंज कुमोदिनि साथ खिले खलवृंद भए सिगरे छविहीने ;
सीरी बयारि बहै सुखदा तम से भए दारिद दुःख विलीने।
जन्म भयो सिय पुत्रन को कि उए वर सूरज चंद नवीने ;
सीय को सोक विनासन को जुग रूप किधौं रघुनाथहि लीने।

सकल भाँति सब ठौर प्रजागन किए सुखारी ;
भए बंधु जुग परम जसी दाता धनुधारी।
तीनि भुवन महँ रामचंद्र के पुत्र कहाए ;
भुज बल शत्रुन जीति सकल दिसि कीरति छाए।
पुनि राज अडोल मही करत चंद्र सूर-सम जस भरे ;
नर, नाग, देव, दानव, सबै सेवत हैं संकित खरे।

आरंभ के गद्य लेख

संवत् १९५६ में सरस्वती पत्रिका निकली। संवत् ५७ में इसी पत्रिका के लिये हमने हम्मीर-हठ तथा पंडित श्रीधर पाठक की रचनाओं पर समालोचनाएँ लिखीं और हिंदी-काव्य-आलोचना में साहित्य-प्रणाली के दोषों पर विचार किया। यही तीनों हमारे पहले गद्य-लेख थे। संवत् १९५८ में उपर्युक्त लेखों में दोषारोपण करनेवाले कुछ आलोचकोंवाले लेखों के उत्तर दिए गए तथा पद्य में विक्टोरिया-अष्टादशी, हिंदी-अपील एवं मदन-दहन लिखे गए। पंडित श्रीधर पाठक-संबंधी लेख में दोषों के विशेष वर्णन हुए और हिंदी-काव्य-आलोचना के विषय में पंडित किशोरीलाल गोस्वामी ने काव्य-लक्षण-विषयक एक विद्वत्ता-पूर्ण लेख लिखा। उसमें कुल विवादवाक्य शब्द के अर्थ पर आ पहुँचा। इसके उत्तर में हमने भाषा के आचार्यों का प्रमाण देकर अपने अर्थ को समर्थित किया। हिंदी-काव्य-आलोचना के विषय में अख़बारों में एक वर्ष तक वाद-विवाद चलते रहे, जिनमें राय देवी-प्रसाद पूर्ण ने भी कुछ लेख लिखे। विशेष झगड़ा इस बात पर था कि नायिकाओं की रोमावली का वर्णन नख-शिखों में उचित होता

है अथवा अनुचित। इन विवादों में हमने भी उत्तर दिया, और दरभंगा के प्रसिद्ध लेखक पंडित भुवनेश्वर मिश्र ने हमारे सिद्धांतों की पुष्टि में एक उत्कृष्ट लेख लिखा।

विक्टोरिया-अष्टादशी

विक्टोरिया-अष्टादशी में महारानी विक्टोरिया की मृत्यु पर १८ छंदों द्वारा शोक मनाया गया था।

उदाहरण—

आय दुसह दुकाल इत जब ईस कोप समान;
धारि भीषम रूप धायो भरो रिसि अति मान।
छाँड़ि साहस धीर जब सब लोग हाहा खाय;
छुधा-पीड़ित लगे डोलन चहूँ दिसि बिललाय।
एक अंजलि धान हित जब मातु-पितु अरु बाल;
रहे झगरत खान तिन कहँ भरे भूख कराल।
रहे जब नर चहत सुख सों जान कारागार;
मिलै जासों साँझ लौं भरि पेट तत्र अहार।
एक कर में धारि बालक दुतिय कर फैलाय;
अन्न कन जब हुतीं जाचत तरुनिगन बिललाय।
गई जब नभ कुसुम-सी घन आस झूठी होय;
वारि धारन ठौर रवि कर परत लखि भै भोय।
उड़त पावस माहिं जब नभ धूरि धार महान;
लाज बस सह साँसु ढाकत मनहु मुख तजि मान।
रैनि में जब कुटिल अच्छन खोलि-खोलि अकास;
नखतगन मिसि सरुख देखत रह्यो हिंद निरास।
दया भरि तेहि समै जेहि धन धान्य अमित पठाय;
लिए कोटिन छुधा-पीड़ित मरत लोग जियाय।

गईं सो जगजननि श्री विक्टोरिया कित हाय ;
देखि व्याकुल सुतन कत नहिं गहति कर इत धाय ।

हिंदी-अपील

हिंदी-अपील में २ पृष्ठों द्वारा हिंदी की वर्तमान दशा एवं उसकी उन्नति पर विचार किया गया है । यह जौनपुर-सभा के वार्षिकोत्सव में पढ़ी गई थी ।

उदाहरण—

तजि समस्या-पूर्ति कविजन रचैं उत्तम ग्रंथ ;
लाभ नहिं कछु गहे इक श्रृंगार ही को पंथ ।
जमक अनुप्रास अतिशै उक्ति इनमें एक ;
अंग है नहिं काव्य को हम कहैंगे गहि टेक ।
पद्य काव्यहि सों न केवल सधैगो अब काम ;
गद्य उन्नति उचित है यहि हेतु अति अभिराम ।
रचौ जीवन-चरित तिनके जे प्रशंसा जोग ;
कला, विद्या, शूरता, बल, बुद्धि के संयोग ।

मदन-दहन

मदन-दहन में कालिदास-कृत कुमारसंभव के तृतीय सर्ग का स्वच्छंद अनुवाद किया गया था । यह सरस्वती पत्रिका में छपा । इस-में ६२ छंद हैं ।

उदाहरण—

तीनिहु लोकन को हित कारज त्यों सुर जूथन जाचक पायो ;
हे जग जाहिर सूर सिरोमनि घातक काज न तोहि बतायो ।
हे ऋतुराज सहायक तो बिनु जाचेहु काज करै मनभायो ;
पावक पौन प्रचंड करै जिमि को तिहि को फरमान सुनायो ।
पुहुप असोकनि पदुम राग मनि प्रजा लजावति ;
कुसुम कनेरनि कनक कांति छवि हीन बनावति ।

सिंधुवार के सुमन मुकुतमाला सम धारे ;
मधु फूलन ही सकल मनोहर गात सँवारे।
बच्छोज भार भावक झुकी बाल सूर सम अरुन पट ;
धरि कुसुमित गुच्छन पात जुत भई नमित लतिका निपट।
स्मर धनु ज्या मनु दुतिय बकुल माला कटि धारै ;
छुद्र घंटिका सरिस चलत तेहि खसत सम्हारै।
अधर बिंब ढिँग स्वास सुगंधित हित ललचाई ;
तृष्णा पूरित बार-बार मधुकर मड़राई।
डरि तासों मृग छौना सरिस चंचल नैन नचावती ;
निज क्रीड़ा पंकज सों सकुचि छिन-छिन ताहि उड़ावती।

अन्य रचनाएँ

संवत् १९५८ अथवा १९५९ में "कान्यकुब्जों की दशा पर विचार"-नामक २८ पृष्ठों का लेख लिखा गया, जो अजमेर के कान्यकुब्ज-सुधारक-नामक पत्र में निकला। संवत् १९६० में "विज्ञापनों की धूम"-नामक १२ कालमों का हास्य-प्रधान शिक्षा-प्रद लेख निकला। संवत् १९६१ में 'पारस्परिक राजधर्म' एवं "जापानी शूरता का एक उदाहरण"-नामक प्रायः २५ कालमों के दो लेख लिखे गए। इसी संवत् में गोस्वामी तुलसीदासजी पर समालोचना के नोट बने। इनमें से कुछ नोट संवत् ५८ में बन चुके थे। द्वितीय संवत् में वह प्रायः पूर्ण हो गए, पर अधिक पठन-पाठन के विचार से समालोचना नहीं रची गई। इसी साल * मुक़्हिमा-नामक एक नाटक उठाया गया, जिसके दो अंक समाप्त हुए, परंतु फिर यह अब तक आगे नहीं बढ़ाया गया और ज्यों-का-त्यों रक्खा है।

---

* नेत्रोन्मीलन नाम से अब यह नाटक भी छप गया है।

उदाहरण—

लखौ यह अति अद्भुत संसार।
वेई ससि सूरज तारागन वहै व्योम विस्तार।
वेई ध्रुव सप्तर्षि बृहस्पति शुक्र चक्र सिसुमार ;
वेई मेघ माल सौदामिनि इंद्रधनुस संचार।
मनु बलि भरत कान्ह के आछत हे सब औन प्रकार ;
तैसे हि अपनेहू सनमुख लखि संभ्रम होत अपार।

संवत् १९६२ में सम्मिलित हिंदू-कुटुंब के गुण-दोष-कथन में प्रायः ५० पृष्ठों का एक लेख बना, जिसके पाँच खंडों में से दोष-प्रदर्शक खंड सरस्वती में प्रकाशित हुआ। पूर्निया-नरेश राजा कमला-नंदसिंह ने निश्चय किया था कि इस वर्ष की सरस्वतीवाले सर्वो-त्कृष्ट लेख के रचयिता को वह स्वर्णपदक देंगे। उन्होंने इसी लेख को उत्तम जानकर हमें एक अच्छा स्वर्ण-पदक सम्मानार्थ दिया। इसी साल या इससे कुछ पहले व्यय एवं भूषण कवि पर समालो-चना-गर्भित लेख जयपुर के समालोचक पत्र में निकले।

भूषण-ग्रंथावली

इसके पीछे भूषण-ग्रंथावली नामक ग्रंथ लिखकर हमने काशी-नागरीप्रचारिणी सभा ग्रंथ-माला में छपवाया। इसमें भूषण के ग्रंथ पर टीका लिखी गई थी। टिप्पणी-विभाग के साथ इसमें ऐतिहा-सिक विषयों पर विशेष ध्यान रहा। ग्रंथावली में शिवराज-भूषण, शिवा-बावनी, छत्रसाल-दशक तथा स्फुट कविता सम्मिलित हैं।

व्यय आदि

व्यय प्रायः ७५ पृष्ठों का लेख था। पीछे से यह पुस्तकाकार छपा। इसमें भारत के ख़रचे से संबंध रखनेवाले संपत्ति-शास्त्र के सिद्धांतों का उदाहरण-सहित कथन किया गया था। इस पर भी समा-चारपत्रों में कहा-सुनी रही। संवत् १९६३ में जीवन-बीमा के

गुण-दोष-कथन में एक १२ कालमों का लेख प्रकाशित हुआ। इसमें दोषों की मात्रा विशेष थी। क्रोध एवं खुशामद पर भी ६२ पृष्ठों के दो लेख इसी साल वनिताविनोद के लिये लिखे गए और व्यय पर भी एक छोटा-सा लेख उसी में छपाया गया।

रघु-संभव

संवत् १९६४ में हम रघुवंश का छंदोबद्ध स्वच्छंद अनुवाद लिखने लगे। उसके प्रायः ढाई सर्ग हो चुके थे कि हिंदी-साहित्य के इतिहास का काम होने लगा। रघुवंश के अनुवाद में हम तीसरे अध्याय के ३५वें श्लोक तक पहुँचे थे कि वह छूट गया।

उदाहरण—

ता बन पालक के फिरते बन में बिनहीं बरषा सुखदाई;
गो बुझि घोर दवानल त्यों फल-फूल भए अति ही अधिकाई।
जीव हुए बलहीन जिते तिनको बलवान सकै न सताई;
कानन हू मैं दिलीप महीपति राज समान सुनीति चलाई।
पौन भरै बर बाँसन मैं तिनसों मुरली-सम तान सोहाई;
पूरित होति दसौ दिसि मैं बन मैं अति ही श्रुति-आनँददाई।
मानहु कुंजन मैं बनदेव भरे मुद मंजुल बीन बजाई;
गावत कीरति भूपति की पय फेन लौं जौन दिगंतन छाई।
या बिधि के उपचारन सों क्रम सों जब दोहद-पीर सिरानी;
खोय गई पियराई सबै अँग अंगनि पीवरता दरसानी।
यों परिपूरन चंद छटा-सम आनँद सों बिलसी महरानी;
बेलिन मैं पतिझार भए जिमि कोपल की अवली हरियानी।
सुंदर बालक सों निज तेज सुभाविक पूरि दसौ दिसि माहीं;
मंद किए सब दीपक जे अधराति प्रसूति घरै दरसाहीं।
बाल लसै दिननायक सों दिन दीपक से निसि दीप लखाहीं;
चारु प्रदीप चितेरन सों मनु चित्रित चित्रपटीन सोहाहीं।

हा काशीप्रकाश

इसी संवत् में प्रिय पुत्र काशीप्रकाश के अकाल स्वर्गवास से हमने "हा काशीप्रकाश"-नामक प्रायः १२५ पद्यों की खड़ी बोली में शोक-कविता रची।

उदाहरण—

काशी विद्यापीठ विदित है तेरा हुआ प्रकाश वहीं ;
दीपमालिका की उजियाली अब तक भूली मुझे नहीं।
फिर भी बुद्धि प्रकाशमान क्यों पढ़ने में न होय तेरी ;
होनी आशि चाहिए थी विद्या सुबुद्धि को तव चेरी।

रूस एवं जापान का इतिहास तथा भारत-विनय

यह संवत् बहुत करके विनोद-संबंधी काम में बीता। संवत् १९६५ में भी यही काम हुआ और रूस का इतिहास लिखा गया। न्याय और दया पर एक लेख इसी साल छपा। संवत् १९६६ में कृष्ण-जन्म की कविता सरस्वती में छपी, जापान का इतिहास लिखा गया, जो दो साल पीछे प्रकाशित हुआ और भारत-विनय का आरंभ हुआ, जो दूसरे साल समाप्त हो गया। इसमें प्रायः १००० खड़ी बोली के छंदों में भारतीय वर्तमान दोषों एवं दोषोद्धार-संबंधी प्रयत्नों के कथन हैं। यह हमारा दूसरा खड़ी बोली-पद्य का ग्रंथ है, जिसमें केवल भूमिका व्रजभाषा में है।

उदाहरण—

पचीस पुश्त पर तेरा दादा था गुरु मूरख अज्ञानी ;
पर उसी काल मम पूर्व पुरुष था महामहिम पंडितमानी।
सो यद्यपि हूँ मैं मूर्ख लंठ शठ तू पंडित गुनवान ;
पर नहीं सुधी तू हो सकता है मेरे कभी समान।
इस भाँति मूर्ख जन सदा चाव से पंडितगन को फटकारें ;
अरु पंडित भी मुख नाय भेड़-सम इन कथनों को सतकारें।

है यह कुलीनता तेरा वैभव री पापिन बलधाम ;
गुणवानों को भी नीच बनाना है बस तेरा काम।
रावरी कृपा की कोर लहिकै कछूक गहि,
गरब गँभीर पाप-पुंजन कमायों मैं ;
देसन को चूर करि सत गुन दूरि करि,
क्रूर बनि केवल कुगुन अपनायों मैं।
सबको समान सतकार कै उदार ह्वैकै,
जग उपकार मैं कबौ न मन लायों मैं ;
आरत ह्वै भारत पुकारत है नाथ अब,
पाहि-पाहि रावरी सरन तकि आयों मैं।
होतो जो न पातकी सुगुन गन घातक तौ,
बार-बार काहे दीनताई दरसावतो ;
हाय-हाय करि काहे बालक-समान तजि,
ठसक बुढ़ापे की न लाज उर लावतो।
गुरु गुन गन बल देसन मैं धाक बाँधि,
रहिकै प्रतापी क्यों न आनँद बढ़ावतो ;
देव-सम राजतो बिराजतो प्रभा सों भरि,
तुम्हैं क्यों न ऐंठ सों अँगूठा दिखरावतो।
होकर परम उदास पुत्र मत चख जल ढारो ;
उस करुनानिधि-ओर भक्ति से समुद निहारो।
काल-चक्र यह महाप्रबल फिरता ही रहता ;
कोई देस न सदा गैल गरिमा की गहता।
काल-चक्र की किंतु एक-सी गति नहिं रहती :
दामन अवनति भी न सदा को हठ कर गहती।
उस दयालु ने तुम्हैं दिए सतगुन बहुतेरे ;
उनको बरधित करौ कुगुन लावो मत नेरे।

संवत् १९६७ में विनोद का काम किया गया एवं सरस्वती में कई आलोचनात्मक लेख प्रकाशित किए गए। इनके अतिरिक्त 'गीता का मर्म'-नामक ११ कालमों का एक वैज्ञानिक ढंग का लेख सरस्वती में छपवाया गया और विद्या-विवाद पर एक लेख निकला।

हिंदी-नवरत्न

संवत् १९६८ में हिंदी-नवरत्न-नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ और विनोद की रचना हुई। नवरत्न में प्रायः ४०० पृष्ठों में हिंदी के नव सब-से अच्छे कवियों पर समालोचनाएँ लिखी गईं।

बूँदी-वारीश

इसी साल बूँदी-वारीश-नामक व्रजभाषा-पद्य-ग्रंथ का प्रारंभ हुआ, जिसके अभी तक ढाई तरंग बने हैं।

उदाहरण —

पोषन भरन है करत सब ही को जब,
क्यों न तब ईस कबिता को प्रतिपालैगो ;
बल को बिचार जब करत न पोषन में,
सिथिल कबिन तब कैसे वह चालैगो।
सोचिकै बिसंभर को भाव यह आसप्रद,
कौन कबिता सों मति-मंद कबि हालैगो ;
अनुभव छीन, रीति पथ हू मैं दीन, तैसे,
सकति-बिहीन कबि ग्रंथ रचि डालैगो।

दुज कनौजिया बंस जगत जाहिर जस धारी ;
भयो साँवले कृष्ण प्रगट तेहि मैं सुबिचारी।
रह्यो सदा भगवंतनगर मैं जो सुखरासी ;
निरधनता मैं दान दया को सुजस प्रकासी।
तेहि पाय बालगोबिंद सुत पुन्य महीतल थापियो ;
जेहि उदाहरन आचरन को निज पावन जीवन कियो।

सागर सों ज्यों चंद कमल सों भो चतुरानन ;
भयो शिवा शिव पुन्य रूप ज्यों सुवन षड़ानन ।
तिमि पायो तेहि बालदत्त सुत गुरु गुनवाना ;
परम धीर गंभीर सुकबि सुजसी मतिमाना ।
तेहि नर बर के लघु सुत भए सिरमौरहु ससिभाल कबि ;
जे दीप-दान सों मनु चहत करन परम परसन्न रबि ।
धन्य बसुधातल पै ग्राम है इटौंजा चारु ,
सब गुनधाम जामैं सज्जन बसत हैं ;
राज करै भूप इंद्र बिक्रम पँवार जहाँ ,
रेल-तार-डाकघर सुंदर लसत हैं ।
डाकटर-बैद त्यों बिराजैं पाठघर जहाँ ,
पंडित-समूह बेद पथ सों रसत हैं ;
गुन को गुनी जन को धरम को मान होत ,
पातक-समूह जाहि देखत खसत हैं ।
बिरची कपिल मुनि कंपिला बिसाल अति ,
जामैं कबिराज सुखदेव अवतार भो ;
गंगा-तट-बासी तौन कंपिला के पाँड़े न को ,
बिसद इटौंजा माहिं बास सुखसार भो ।
तिनमैं अजोध्या द्विज भयो हो प्रसिद्ध अति,
जौन धन मान जुत सुजसी अपार भो ;
ताकी दुहिता के पति मिश्र सुखलाल जू को,
तासु कछु संपति पै बेस अधिकार भो ।
हुतो अजोध्या सुवन बिनु ताके अनु ततकाल ;
यत्र-तत्र श्री ह्वै गई कछु पाई सुखलाल ।
कमला क्यों थिर ह्वै सकै जासु चंचला नाम ;
चंचलता बस ह्वै गई अगुणज्ञा यह बाम ।

हो मुखलाल महागुनआल बिसाल सदा जेहि पुन्य बगारो ;
छोटेन को मन रंजन कै गुरु लोगन को नहिं सासन टारो।
बालगोबिंद सहोदर पै सुविशेष अपूरब प्रेम पसारो ;
पै तबहूँ बिधि की गति सों न लह्यो सुत बंस चलावनहारो।

गुनि गुरुभ्राता भाव बालगोबिंद बिचारी ;
एक-मात्र निज सुवन बालदत्तहि पन धारी।
पतिनी द्वारा दियो सौंपि भ्राता-जाया को ;
दृढ़ता सों सब छोरि प्रेम-बंधन माया को।

तब लगे इटौंजा में रहन कका संग पितु सुजस धर ;
जिन तहाँ सुकृत फल चारि सुत लहे चित्त आनंदकर।

हम कछु दिन बिद्या पढ़ी बिसद इटौंजा ग्राम ;
फेरि लखनऊ में पढ्यो गुरुभ्राता के धाम।
करत वकालत हैं तहाँ* गुरुभ्राता मतिमान ;
चख-पीड़ा बस तहँ कियो औषध पितु सविधान।
महि-प्रबंध कछु दिन गए सौंपि सेवकन चारु ;
लगे लखनऊ में रहन पिता सहित परिवारु।
डेपुटी कलेक्टर को पद† सिरमौर पाय,
ह्वै गयो पुलीस-कपतान शुभ काल मैं ;
महाराज बिश्वनाथसिंह की कृपा सों फेरि,
भयो है दिवान छत्रपुर गुनआल मैं।

---

* खेद है कि ९ वर्ष हुए जब गुरुभ्राता पं० शिवबिहारीलालजी का देहांत हो गया।

† इस समय शिरमौरजी संयुक्तप्रदेश में सहयोग-समितियों के प्रतिष्ठित रजिस्ट्रार-पद पर आसीन हैं।

*ससिभाल करि कै वकालत बिसाल पुनि ,
पायो है सुपद मुंसफी को कछु साल मैं ;
आपुस में प्रेम परिपूरन बढ़ाय हम ,
सदा ही लगायो मन कविता रसाल मैं ।
जार्ज सुपंचम राज-काल सुखप्रद जब आयो ;
संबत बसु रस खंड चंद सावन मनभायो ।
सनिबासर सित पच्छ चारु एकादसि पाई ;
बर बूँदी-बारीस ग्रंथ बिरचन मन लाई ।
पितु-पद उर धरि सारद सुमिरि गनपति संभु प्रसन्न करि ;
ईसहिँ मनाय बिरचन लगे बिसद ग्रंथ आनंद भरि ॥ २२ ॥

स्फुट लेख

संवत् १९६९ में अभी तक विनोद में ही परिश्रम हुआ है । इन ग्रंथों एवं लेखों के अतिरिक्त सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में और भी कई लेख भेजे गए । थोड़े दिन हुए बाबू श्यामसुंदरदास ने हिंदी-कोविद-रत्नमाला-नामक एक ग्रंथ रचा, जिसमें आधुनिक काल के ४० उत्कृष्ट लेखकों के जीवन-चरित्र लिखे गए । उसमें उन्होंने हमारा भी उल्लेख करना उचित समझा । हमारे कईएक लेख सरस्वती, मर्यादा, भारतमित्र, वेंकटेश्वर-समाचार, कान्यकुब्ज-सुधारक, कान्य-कुब्ज-हितकारी, स्त्री-दर्पण, काशी-नागरीप्रचारिणी-पत्रिका, समालोचक, अभ्युदय, इत्यादि पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे ।

मुख्य कविगण

इस भूमिका को समाप्त करने के प्रथम हम उत्कृष्ट अथवा रचनाओं

---

* ससिभालजी इस समय जजी की ग्रेड में हैं और महाराज छत्रपुर के दीवान हैं ।

द्वारा प्रसिद्ध अधिकांश मृत कवियों एवं लेखकों की एक नामावली लिख देनी भी उचित समझते हैं। ऐसे महानुभावों में से प्रायः १०० लोगों के नाम प्रथम प्रकरण के सातवें अध्याय में आ गए हैं। उनके अतिरिक्त इस नामावली में नीचे-लिखे महाशयों के नाम लिखे जा सकते हैं—

नरहरि, बीरबल, आलम, तानसेन, दादूदयाल, बलभद्र मिश्र, सुंदरदास, घासीराम, हरिकेश, नेवाज, शेख़, चंद, उदयनाथ, श्रीपति, भूधरदास, कृष्ण, जोधराज, दलपतिराय, बंसीधर, सोमनाथ, रसलीन, गुमान मिश्र, कुमारमणि भट्ट, हंसराज बख़शी, शंभुनाथ मिश्र, महाराजा भगवंतराय खीची, किशोर, मनीराम, मंचित, चंदन, देवकीनंदन, मनियार, बेनी, सम्मन, दत्त, मून, दीनदयाल गिरि, देवकाष्ठजिह्वा, नवीन, पजनेस, महाराजा रघुराजसिंह, गुलाबसिंह, लेखराज, शंकर, गदाधर भट्ट, औध, लछिराम, ललित, शिवसिंह सेंगर और द्विजराज लालविहारी।

समाप्ति

विनोद की इस भूमिका को हम अब यहीं समाप्त करते हैं। आकार में यह कुछ बढ़ गई है, परंतु इसमें लिखी हुई सब बातों का लिखना हमें उचित जान पड़ा, यही क्यों, अपनी समझ में तो हमने इसे ख़ूब घटाकर ही लिखा है। इसी प्रकार से थोड़े में लिखने का यह ढंग ग्रंथ-भर में स्थिर रहा है। कवियों के उदाहरण देने में भी संक्षिप्त रीति का अवलंबन किया गया है। अधिक उदाहरण देने से ग्रंथ में रोचकता कुछ बढ़ जाती, किंतु उसका आकार विन कोई विशेष ज्ञान वृद्धि कराए भी बृहत् हो जाता। इन कारणों से हमने इस ग्रंथ का आकार हर स्थान पर घटा हुआ रक्खा है। जब प्रायः ५० या ६० कवि लेकर दूसरा ग्रंथ बनाने का हमें सौभाग्य प्राप्त होगा, तब समालोचना भी भारी और यथासाध्य पूर्ण लिखेंगे

और उदाहरणों की भी बहुतायत रक्खी जायगी । कुछ रसिकजनों ने यह उचित मत प्रकट किया था कि एक-ही-एक विषय पर भिन्न-भिन्न समयों के कवियों की रचनाएँ लिखी जायँ, तो विशेष आनंद मिले । हमें खेद है, इस ग्रंथ में उनकी इस इच्छा को पूरी करने का सौभाग्य न मिला । यह इतिहास-संबंधी ग्रंथ है, सो इसमें ऐसा उदाहरण-बाहुल्य नहीं हो सकता, जो इतिहास से विशेष संबंध न रखता हो । यदि अवकाश मिला, तो हम एक ऐसा पृथक् ग्रंथ बनाने का प्रयत्न करेंगे ।

अब यह "मिश्रबंधु-विनोद" हम सहृदय पाठकों के चरणों में सादर प्रेषित करके आशा करते हैं कि वे इसे अपनावेंगे और सदैव इसी भाँति अपनी अमूल्य सम्मतियों से हम लोगों को कृतार्थ करते रहेंगे ।

स्थान—लखनऊ,
संवत् १९६९

विनीत—
मिश्रबंधु

मिश्रबंधु-विनोद

संक्षिप्त इतिहास-प्रकरण

हिंदी का संक्षिप्त इतिहास

पहला अध्याय

प्रारंभिक एवं पूर्वमाध्यमिक हिंदी

(७००–१५६०)

अधिकांश विद्वानों के मतानुसार हिंदी की उत्पत्ति प्राकृत से हुई, अर्थात् हिंदी प्राकृत का वर्तमान रूप है, यद्यपि इसकी संस्कृत एवं अनेक भाषाओं से भी अंग-पुष्टि अवश्य हुई है। इसका विशेष वर्णन आगे होगा। हिंदी-साहित्य कैसा गौरवान्वित है, इसका कुछ दिग्दर्शन भूमिका में कराया गया है। हिंदी की उत्पत्ति संवत् ७०० के आसपास मानी गई है, क्योंकि पुंड अथवा पुष्य-नामक हिंदी का पहला कवि ७७० संवत् में हुआ। इसका न तो कोई ठीक हाल ही विदित है और न इसकी कविता ही अब हस्तगत होती है। शिवसिंह सेंगर ने इस कवि का हाल जाँच करके लिखा है। इसके द्वारा संस्कृत-अलंकारों का हिंदी-दोहों में लिखा जाना सिद्ध है।

अँगरेज़ी

दैवात् यही काल अँगरेज़ी साहित्य के भी प्रारंभ का है, अतः ये दोनों भाषाएँ प्रायः समकालीन हैं। पूछा जा सकता है कि अँग-रेज़ी की अधिक उन्नति क्यों हो गई और हिंदी में वैसे उपकारी ग्रंथ क्यों नहीं बन सके। इसके अनेक कारण हैं जिनमें मुख्य ये हैं कि एक तो हमारे यहाँ सांसारिक पदार्थों को तुच्छ मानकर लोग अधिकांश धार्मिक विषयों ही की ओर विशेष प्रवृत्त होते रहे हैं, दूसरे इस देश में प्रेस के अभाव से लोगों के विचार दूर-दूर तक प्रकाशित नहीं हो सकते थे और तीसरे हम लोगों का बाह्य संसार से बहुत कम संपर्क रहा, अतः सांसारिक जातीय होड़ के प्रभाव हम पर कम पड़े। इसी भाँति दया-बाहुल्य के कारण जीवन-निर्वाह-संबंधी होड़ का भी सिक्का यहाँ बहुत दिनों तक न जमा, सो हम लोगों का तादृश क्या प्रायः बहुत कम झुकाव सांसारिक उन्नतियों की ओर हो सका। इसका कुछ कथन भूमिका में है।

इतिहास का समय-विभाग

हिंदी-भाषा-लेखन काल के इस ग्रंथ में आठ विभाग किए गए हैं, जिनका कथन यहाँ एक चक्र द्वारा किया जाता । इसी चक्र से उन समयों की रचना-शैली एवं भाषा का भी कुछ ज्ञान होगा। इसमें लिखे हुए चिह्नों का प्रयोजन यह है—

० = प्रायः अभाव
× = शैथिल्य
× × = महाशैथिल्य
√ = कुछ बल
√√ = बल
√√√ = प्रबल
√√√√ = बहुत प्रबल

नाम-काल	संवत् तक	वीर	शृंगार	शांति	कथा	रीति	स्फुट	गद्य	नाटक	मुख्य भाषा
पूर्व प्रारंभिक	१३४३	√√	√	××	√	×	×	०	०	प्राकृत मिश्रित ।
उत्तर प्रारंभिक	१४४४	√	√	√	√	०	×	××	०	ब्रज, अवधी, राजपूतानी, खड़ी, पूर्वी ।
पूर्व माध्यमिक	१५६०	××	×	√	√	०	×	०	√	ब्रज, अवधी, पूर्वी, पंजाबी ।
प्रौढ़ माध्यमिक	१६८०	×	√√	√√√	√√	×	√	√	०	ब्रज, अवधी ।
पूर्वालंकृत	१७८६	√√	√√√	√	×	√√	√	×	××	ब्रज, अवधी कुछ ।
उत्तरालंकृत	१८९०	×	√√√√	√	√√	√√√	√	√	०	ब्रज, अवधी व खड़ी कुछ ।
परिवर्तन	१९२५	०	√√√	√	√	√	√	√√	×	ब्रज, खड़ी ।
वर्तमान	अब तक	×	√	√√	√√√	×	√√	√√√√	√√	खड़ी, ब्रज कुछ ।

प्राचीन कवि

संवत् ८९० के लगभग किसी ब्रह्मभट्ट कवि ने खुमान-रासा-नामक ग्रंथ महाराजा खुमान की प्रशंसा में रचा। भाग्य-वश सं० १९७६ के खोज में भुवाल कवि-कृत भगवद्गीता-नामक संवत् १००० का रचा हुआ एक ग्रंथ मिला है जिसमें समय साफ़ दिया है। इस ग्रंथ-रत्न से हिंदी-भाषा के इतिहास की प्राचीनता निश्चय-पूर्वक सिद्ध हुई है। संवत् ११३७वाले कालिंजर के राजा नंद भी कवि माने गए हैं। सुप्रसिद्ध लेखक नाथूरामजी प्रेमी ने 'हिंदी-जैन-साहित्य का इतिहास'-नामक एक गवेषणा-पूर्ण लेख लिखा है जिसमें उन्होंने विक्रम-द्वादश शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक के कुछ हिंदी-जैन-कवियों का परिचय कराया है। उनके अनुसार संवत् ११६७ में जैनश्वेतांबराचार्य जिनवल्लभ सूरि हुए जिनका उसी वर्ष देहांत भी हुआ। इनका 'वृद्ध नवकार'-नामक ग्रंथ हिंदी-जैन-साहित्य में सबसे प्राचीन था। संवत् ११७५ के लगभग महाराष्ट्र में कल्याणी-नगर में चालुक्य-वंशी सोमेश्वर-नामक एक राजा हुआ। यह 'सर्वज्ञ-भूप' कहलाता था। इसने हिंदी में भी कविता की। मसऊद एवं कुतुबअली ११८० के लगभग दो मुसलमान कवि हुए और ११९१ में साँई दान चारण ने समंतसार ग्रंथ रचा। अकरम फ़ैज़ ने १२०५ से १२५८ पर्यंत वर्तमाल-नामक ग्रंथ रचा तथा वृत्तरत्नाकर का भाषानुवाद किया। यह कवि जयपुर-नरेश के यहाँ था। प्रसिद्ध कवि चंद बरदाई का कविता-काल १२२५ से १२४९ पर्यंत है। इस वर्णन से प्रकट है कि चंद से प्रथम दश कवियों के जो नाम अब मिलते हैं, उनमें तीन मुसलमान थे। दूसरों की भाषा पर इतना ध्यान देना उस समयवाले मुसलमानों के विद्याप्रेम एवं उन्नति को प्रकट करता है। आजकल बहुत-से मुसलमान लोग ऐसे संकीर्ण-हृदय हैं कि भारतीय राष्ट्रभाषा केवल उर्दू को कहते हैं, परंतु जब उर्दू

का जन्म भी नहीं हुआ था, तब भी उस समय के मुसलमान लोग उच्चाशय प्रकट करते हुए हिंदी में कविता करते थे। इन बातों से उन्नत और अवनत दशाओं का अच्छा आनुषंगिक ज्ञान होता है।

चंद

चंद बरदाई लाहौर में उत्पन्न हुआ, जहाँ उस समय मुसलमानों का राज्य था, परंतु बाल्यावस्था से ही वह अजमेर में जाकर रहने लगा। यहाँ वह पृथ्वीराज का सखा एवं मंत्री हो गया। जब पृथ्वीराज को उसके नाना अनंगपाल ने दिल्ली का राज्य दे दिया, तब चंद दिल्ली में सम्मान-पूर्वक रहने लगा, जहाँ यह पृथ्वीराज का राजकवि एवं उनके तीन मंत्रियों में से एक हो गया। इसने रासो-नामक प्रायः २५०० पृष्ठों का ग्रंथ पृथ्वीराज की प्रशंसा का रचा, परंतु अनुमान किया गया है कि इसका थोड़ा-सा अंतिम भाग इस कवि के पुत्र जल्हन ने बनाया। रासो में प्रायः सभी रसों के उत्तम वर्णन हैं, जिनसे चंद की विशाल साहित्य-पटुता भली भाँति प्रकट है। इसकी रचना में सुप्रबंध-गुण ख़ूब पाया जाता है। चंद के प्रथम का कोई भी ग्रंथ अथवा छंद हमने नहीं देखा। चंद हमारे यहाँ का चासर है। चासर की उत्पत्ति चंद से २१४ वर्ष पीछे हुई, परंतु ये दोनों अपनी-अपनी भाषाओं के वास्तविक प्रथम कवि हैं। इन दोनों ने प्राचीन भाषाओं में उत्तम ग्रंथ रचे। इन दोनों की रचनाएँ परम मनोहर थीं और वर्तमान समय के मनुष्य बिना विशेष-प्रयत्न के इनकी भाषाएँ समझ नहीं सकते। चंद ने आकार में चासर को प्रायः दूनी रचना की है और उत्तमता में इन दोनों की रचनाएँ प्रायः समान हैं। चासर को जैसे अँगरेज़ लोग अँगरेज़ी कविता का पिता समझते हैं, वैसे ही चंद भी हिंदी का जन्मदाता कहा जा सकता है।

अन्य कवि

महोबे का जगनिक चंद का समकालीन था। कहते हैं कि उसने सबसे पहले "आल्हा" की रचना की, जो अब तक ठौर-ठौर ग्रामों में गाया जाता है। पर इस समय के आल्हा में जगनिक का शायद एक शब्द भी नहीं मिलता, केवल ढंग उसका है।

केदार कवि भी प्रायः इसी समय में हुआ और महाराज जयचंद के पुत्र शिवजी की सभा में बारदरबेणा-नामक एक अच्छा कवि हो गया है।

अतः चंद के प्रथम और उसके समकालिक कवियों में जल्हन को मिलाकर पंद्रह कवि विदित हैं। रासो के देखने से जान पड़ता है कि इस समय हिंदी-काव्य का अच्छा प्रचार था। प्रायः सभी राजदरबारों में भाषा-कवियों का मान होता था, यहाँ तक कि उदय-पुर के महाराणा समरसी ने पृथ्वीराज की बहन पृथा कुँवरि से अपना विवाह होने में पृथ्वीराज से जल्हन को हठ-पूर्वक माँग लिया था और उसे वे अपने दरबार में ले गए थे। अवश्य ही उस समय में हिंदी के बहुतेरे कवि हुए होंगे, पर उनके नाम तक अब ऐसे काल-कवलित हो गए हैं कि उनका कहीं पता नहीं लगता।

चंद के पीछे जल्हन कवि ने रासो के अंतिम भाग को बनाया और ग्रंथ सुरक्षित रक्खा। जल्हन के पीछेवाले कवियों में भी बहुतों का अब भली भाँति पता नहीं लगता। जल्हन की भाषा चंदीय भाषा के समान है, परंतु उत्तमता में उसकी कविता चंद से समानता नहीं कर सकती। संवत् १२४७ में मोहनलाल द्विज ने पत्तलि-नामक ग्रंथ रचा। इसमें भगवान् के विवाह में नंद के ज्योनार का वर्णन उत्कृष्ट छंदों में है। यह ग्रंथ संवत् १९७६ की खोज में मिला है। कुमारपाल-चरित्र की रचना १३०० के लगभग हुई थी। कुमारपाल अनहलवाड़े के राजा थे। संवत् १३२९ के लग-भग दक्षिण में दामोदर पंडित ने मराठी-हिंदी-मिश्रित 'वत्सहरण'

ग्रंथ बनाया, तथा १३५० के लगभग वहीं श्रीज्ञानेश्वर और मुक्ताबाई ने भी हिंदी-कविता को अपनाया। इसी समय नामदेव ने भी कविता की। संवत् १३५४ में नरपति नाल्ह ने बीसलदेव-रासा बनाया और १३५५ के लगभग नल्लसिंह ने विजयपाल-रासा रचा। संवत् १३५७ में शारंगधर कवि ने हम्मीर-काव्य, हम्मीर-रासा और शारंगधर-पद्धति बनाई। इन चारों कवियों की हिंदी में अंतर है। क्रम से हिंदी-भाषा विकसित होते-होते नए रूप में आने लगी थी और चंद की भाषा से वह पृथक् देख पड़ती है। अतः इन कवियों के साथ प्राचीन हिंदी का द्वितीय समय आरंभ होता है। इसी समय अमीर ख़ुसरो से वर्तमान उर्दू-कविता की जड़ पड़ती है। इन्होंने तात्कालिक प्रचलित हिंदी में कविता की है और खड़ी बोली में भी। खड़ी बोली के प्रथम कवि ख़ुसरो ही कहे जा सकते हैं। मुल्ला दाऊद ने १३८५ में 'नूरक चंदा' की एक प्रेम-कहानी लिखी।

गोरखनाथ

महात्मा गोरखनाथ का रचना-काल १४०७ से आरंभ होता है। महात्माओं में यही महाराज पहले थे, जिन्होंने संस्कृत के साथ हिंदी-रचना भी की। ब्राह्मणों में निश्चयात्मक रीति से यही प्रथम कवि थे। इनके प्रथम शारंगधर अनुमान से ब्राह्मण थे, परंतु इसका निश्चय कुछ नहीं है। जो हो, अब हिंदी की महिमा कुछ बढ़ी और संस्कृत के भारी पंडितों ने भी इसे अपनाया। गोरखनाथजी एक पंथप्रवर्तक थे। इस कारण से भी अन्य पंथ चलानेवालों की भाँति इन्होंने भी देश-भाषा ही में शिक्षा का देना उचित समझा। गौतम बुध, नानक, दयानंद आदि महात्माओं ने भी ऐसा ही किया। अपने उपदेशों को लोकप्रिय बनाने के लिये महात्मा लोग ऐसा करते हैं, जिससे सर्वसाधारण उनके उपदेशों को समझ सकें। इन कारणों से गोरखनाथजी द्वारा हिंदी का बड़ा उपकार हुआ, क्योंकि इस

समय से उसने पंडित-समाज में भी कुछ-कुछ मान पाया। इस महात्मा ने छंदों में प्रायः ४० छोटे-बड़े ग्रंथ रचे और व्रजभाषा गद्य में भी एक अच्छा ग्रंथ बनाया। सो ये महात्मा गद्य के प्रथम लेखक हैं। इनकी गद्य-रचना उत्कृष्ट है। अब तक के अधिकांश क्या, प्रायः सभी कवि पाश्चात्य प्रांतों के वासी थे, परंतु इन महात्माजी के साथ पूर्वीय कवियों का भी प्रादुर्भाव होता है।

विद्यापति आदि

इस समय तक बिहार के किसी कवि का नाम नहीं मिला, परंतु १४४९ से महाकवि विद्यापति ठाकुर का रचना-काल प्रारंभ होता है। आप जाति के ब्राह्मण थे। आपने दो नाटक एवं कई ग्रंथ बिहारी-हिंदी में रचे। इनकी रचना परम प्रशंसनीय है। आपने साधारण बोलचाल को आदर देकर अत्युत्तम रचना की है, जो पूर्वीय प्रांतों के गले की हार हो रही है। चैतन्य महाप्रभु इनकी रचना को बहुत पसंद करते थे। इनकी भाषा कुछ अधिक उन्नति कर आई थी। जयदेव, मैथिल और उमापति ने भी विद्यापति ठाकुर की ही रीति पर रचना की है। उधर राजपूताने में मीराबाई और महाराणा कुंभकर्ण स्वयं कवि एवं कवियों के आश्रयदाता हो गए हैं। इसी समय गुजरात में नरसी मेहता हो गए हैं। इन्होंने भी हिंदी में कविता की है। संवत् १४९३ में नारायणदेव ने हरिश्चंद्र-पुराण-कथा की रचना की। इसी से भारत के धार्मिक पुनरुत्थान का समय प्रारंभ होता है। स्वामी रामानंद का संवत् १४२९ के लगभग प्रादुर्भाव हुआ और १५५० के आसपास इनकी शिक्षाओं का बल फैलने लगा। दक्षिण में इस समय भानुदास भक्त हुए थे। वे मराठी और हिंदी दोनों में कविता करते थे। सेन नाई, भावानंद और कबीरदास इनके मुख्य शिष्यों में से थे जो हिंदी की कविता करते थे। इस समय तक भाषा और भी परिपक्व हो गई थी। महात्मा कबीरदास

ने उसका बहुत बड़ा उपकार किया। इन्होंने कोई पचास ग्रंथ बनाए जिनमें से ४६ का पता लग चुका है। इनकी कहावत बड़ी ही चोखी और दृष्टि अत्यंत पैनी थी, एवं साफ़-साफ़ बातें सुनाने में ये कुछ भी नहीं हिचकते थे। अपने रंग के ये ऐसे पक्के थे कि काशी में सदा रहते हुए भी मरते समय मगहर चले गए, क्योंकि काशी में मरने से पापी भी मोक्ष पाता और मगहर में मृत्यु होने से धार्मिक मनुष्य भी नरकगामी होता है, ऐसा बहुतों का विश्वास है; अतः कबीरजी ने कहा कि "जो कबिरा काशी मरै तौ रामै कौन निहोर ?" अस्तु। कबीरदासजी की भाषा माध्यमिक हिंदी की पूर्व रूपवाली है। इनका समय १४७७ के आसपास सिद्ध हुआ है। इनके शिष्य सगोदास, धर्मदास और श्रुतगोपाल भी कवि थे तथा इनके पुत्र कमाल ने भी कविता की है।

अन्य कवि

संवत् १४८० में महात्मा नामदेव छीपी और १५०३ में रैदास चमार भी नामी भक्त और लेखक हुए। हमारा ख़याल था कि हिंदी-काव्य में प्रेम-कथाओं का चलन मुसलमान-कवियों द्वारा चला है, पर सबसे पहले संवत् १५१६ में राजपूताना-निवासी दामो-नामक कवि ने लक्ष्मणसेन पद्मावती प्रेम-काव्य की रचना की। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में अर्थात् संवत् १५३१ में उपाध्याय ज्ञानसागर जैन ने उज्जैन के श्रीपाल नृपति का चरित्र-नामक ग्रंथ रचा। १५३७ में चरणदास ने ज्ञानस्वरोदय ग्रंथ बनाया और १५४० में हितसंप्रदाय के अलि भगवान् ने कविता की। आनंद का विषय है कि पंजाब के सुप्रसिद्ध धर्मसुधारक बाबा नानक ने भी हिंदी में काव्य किया। इनके अनुयायियों में आगे चलकर गुरुगोविंदसिंहजी ने भी हिंदी को अपनाया। आज भी सिख लोगों में इसका कुछ-कुछ प्रचार है और अब विशेषतया बढ़ता हुआ देख पड़ता है। संवत्

१५६० में कुतबन शेख़ ने मृगावती-नामक प्रेम-कहानी दोहा-चौपाइयों में लिखी, तथा सेन कवि इस समय का अच्छा कवि हो गया है, जिसकी भाषा माध्यमिक प्रौढ़ हिंदी से प्रायः बिलकुल मिल गई है। अतः माध्यमिक हिंदी का प्रारंभिक काल इसी समय से समाप्त होता है।

हिंदी के रूप

इन ८०० वर्षों में हिंदी ने तीन रूप बदले, अर्थात् प्राथमिक हिंदी के दो और माध्यमिक का एक। अब तक के तीनों समयों का ब्योरा मोटे प्रकार से निम्नानुसार है—

पूर्व प्रारंभिक हिंदी संवत् १३४३ तक।

उत्तर प्रारंभिक हिंदी संवत् १४४४ तक।

पूर्व माध्यमिक हिंदी संवत् १५६० तक।

द्वितीय समय नरपति नाल्ह से आरंभ होता है और तृतीय विद्यापति ठाकुर से। यह तृतीय काल सूरदास के प्रथम समाप्त हुआ।

दूसरा अध्याय

प्रौढ़ माध्यमिक हिंदी (१५६१)

धार्मिक उन्नति

अब हिंदी-गौरव का सूर्योदय-काल निकट आ रहा था और उसकी इस समय तक भली चंगी उन्नति होकर प्रौढ़ावस्था आ पहुँची थी। उधर अँगरेज़ी में संवत् १५३४ से विद्या का पुनरुत्थान एवं धर्मसंशोधन (Renaissance and Reformation) प्रारंभ हुआ था। हमारे यहाँ स्वामी रामानंद के ही समय (संवत् १४५६) से उसकी जड़ पड़ चुकी थी, परंतु अब उसका पूर्ण विकास होना था। महाप्रभु वल्लभाचार्य का जन्म संवत् १५३५ में

हुआ था और १५६० के पीछे उनकी अमृतमयी शिक्षाओं का प्रभाव हिंदी पर पड़ने लगा जैसा कि आगे विशेष रूप से लिखा जायगा। तल्लीनता एक भारी बल है। यह जिस ओर लग जाती है, कुछ कर दिखाती है। हिंदी के भाग्य से वल्लभाचार्य ही का नहीं, वरन् वैष्णवों की प्रायः सभी संप्रदायों का रुझान हरिभजन करने में उसकी ओर हो गया! फिर क्या था! इन सभी महात्माओं ने स्वयं हिंदी में हरियश गाया और इनके शिष्यगण एकदम पदों ही द्वारा भजनानंद में निमग्न हो गए, मानो भक्ति और कविता का स्रोत ही हिंदी में फूट निकला और उसके द्वारा उमड़े हुए प्रेम-पयोधि की तरंगों में सारा देश प्रवाहित होने लगा।

सूरदास

संवत् १५६० से ही महात्मा सूरदासजी का कविता-काल प्रारंभ होता है। इनकी भाषा को यद्यपि हम लोगों ने माध्यमिक माना है, तथापि कई अंशों में वह वर्तमान हिंदी से प्रायः पूर्ण रीति से मिलती-जुलती हुई है। सभी भाषाओं का विकास धीरे-धीरे ही होता है और इसमें संदेह नहीं कि सौर-काल की हिंदी के सामने भूषण और देव कालवाली एवं वर्तमान भाषा अधिक परिपक्व है, पर इससे यह न समझना चाहिए कि स्वयं सूरदास, तुलसीदास अथवा देव की भाषा से इस समय के लेखकगण श्रेष्ठतर भाषा लिखते हैं। ऐसा कदापि नहीं है। ये महात्मा हिंदी के प्राण और नायक हैं। जिस प्रकार का माधुर्य इनकी कहावतों में है, वह अन्य लोगों को कहाँ नसीब हो सकता है, पर समयानुसार भाषा की उन्नति होनी स्वाभाविक ही है। सूरदासजी ने थोड़े ही ग्रंथ बनाए हैं, परंतु केवल सूरसागर इतना भारी है कि अन्य कवियों के पचास-पचास सौ-सौ ग्रंथ उसकी बराबरी नहीं कर सकते, यहाँ तक कि सूरजी की वाणी सवा लक्ष प्रसिद्ध है, यद्यपि इस समय उनके केवल चार-

पाँच हज़ार पद देखने में आते हैं । महात्मा सूरदासजी हिंदी के बड़े ही नामी कवि हैं और हमने अपने हिंदी-नवरत्न में इन्हें बृहत्त्रयी में रक्खा है । इस महाकवि के अनेक वर्णन ऐसे सुप्रबंधयुक्त और उत्तम हैं कि उनकी बराबरी हिंदी में किसी की भी कविता नहीं कर सकती । अन्य कवियों के प्रबंधों और वर्णनों का सम्मिलित प्रभाव प्रायः बहुत चमत्कारी नहीं हुआ करता, अतः अँगरेज़ लोग अपने यहाँ के नामी कवियों के सामने हमारे कवियों की महत्ता पूर्ण स्वाकार करने में आनाकानी किया करते हैं, पर सूरदासजी के प्रबंधों को ध्यान-पूर्वक मनन करने से उन्हें मानना पड़ेगा कि हिंदी-कविता में भी बड़-बड़े रत्न वर्तमान हैं ।

अष्ट-छाप

सूरदासजी महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे । इनके अतिरिक्त कृष्णदास, परमानंददास और कुंभनदास भी महाप्रभुजी के शिष्यों में नामी कवि हुए हैं । चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, नंददास और गोविंदस्वामी महाप्रभुजी के पुत्र गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी के शिष्यों में मुख्य थे । इन्हीं आठों को मिलाकर गोस्वामीजी ने "अष्ट-छाप" स्थापित की, जिस पर सूरदासजी परम प्रसन्न होकर कहने लगे कि "थपि गोसाईं करी मेरी आठ मद्धे छाप ।" इससे सूरदासजी की महानिरभिमानता सिद्ध है, क्योंकि उनके सामने अष्ट-छाप के अन्य सात कवि कुछ भी न थे । इनमें से नंददासजी सूरदास के पीछे अष्ट-छाप में सर्वोत्कृष्ट कवि थे । इस काल (१५६०-१६३०) में वैष्णव-संप्रदायों के अन्य सैकड़ों कवियों ने भी मनोहर कविता की है, जिसका हाल आगे लिखा जायगा ।

अन्य कविगण

इसी समय से सुप्रसिद्ध महात्मा और कवि श्रीगोस्वामी हरिवंशहित का कविता-काल प्रारंभ होता है । इनके केवल ८४ पद

सोर कविता का पूरा सामना करते हैं। यदि इनकी अधिक वाणी मिल जाय, तो संभव है कि कविता में इनकी गणना सूरदासजी के बराबर हो। सुना जाता है कि इनके भजन बहुत-से छिपे पड़े हैं। इनके अनुयायी लोग अपने नाम के साथ "हित" जोड़ दिया करते हैं। इनमें बहुतेरे उत्कृष्ट कवि हो गए हैं। संवत् १५६३ में किसी चंद कवि ने हितोपदेश ग्रंथ बनाया और छीहल ने १५७५ में पंचसहेली-नामक एक प्रेम-कहानी कही। यह कवि मारवाड़ का जान पड़ता है। संवत् १५८७ में लालचदास हलवाई ने दशम स्कंध की कथा दोहा-चौपाइयों में लिखी।

प्रसिद्ध कवि महापात्र नरहरि बंदीजन का जन्म १५६२ में हुआ था। १५९० से इनका कविता-काल प्रारंभ होकर १६६७ तक चला। इनकी अवस्था १०५ वर्ष की हुई, जिसमें से ७७ वर्ष इनका कविता-काल है! इनका अकबर बादशाह के दरबार में मान था। बिलग्राम के शाहमहम्मद और उनकी स्त्री चंपा ने भी इसी समय में कविता की थी। आलम का भी यही समय माना गया है।

स्वामी निपटनिरंजन का कविता-काल संवत् १५९५ से है १५९८ में कृपाराम ने दोहों में हिततरंगिणी-नामक एक उत्कृष्ट रीति-ग्रंथ बनाया और मलिक मुहम्मद जायसी ने १५७५ से १६०० तक पद्मावत-जैसा नामी ग्रंथ रचा। इसकी कविता विशद और वर्णन सोहावने हैं। यद्यपि इसकी भाषा अन्य भारी कवियों के सामने कुछ ग्रामीण अवश्य है, तथापि इसके वर्णन सांगोपांग होते हैं। मीराबाई का कविता-काल १५९० से १६०३ पर्यंत है। इनकी जीवन-यात्रा केवल ३० वर्ष में समाप्त हो गई, नहीं तो शायद इनकी कविता बहुत ऊँचे दर्जे की होती; तो भी इतने ही में इनका पद भाषा के भक्त कवियों में उच्च है। कुछ लोगों ने इन्हें महाराना कुंभकर्ण की स्त्री लिखा है, पर यह नितांत अशुद्ध है। नरोत्तमदासजी

का कविता-काल १६०२ है। इनका सुदामा-चरित्र प्रबल और स्वाभाविक काव्य का अच्छा उदाहरण है। श्रीस्वामी हरिदासजी ने १६०७ से काव्य-रचना प्रारंभ की। ये महाशय पूरे ऋषि और टट्टियों की संप्रदाय के प्रवर्तक थे। गाने में ये स्वयं तानसेन के विद्या-गुरु थे।

अकबरी दरबार

महाराजा बीरबल अकबरी दरबार में मुसाहब और सरदार थे। इन्होंने भी ब्रह्म के उपनाम से कविता की, जिसमें अनुप्रास तथा उपमाओं की अच्छी बहार है। इनके अतिरिक्त स्वयं अकबर कविता करते थे तथा टोडरमल, तानसेन, मानसिंह, फ़ैज़ी, अबुलफ़ज़ल, नरहरि, अजबेस और महाकवि गंग एवं रहीम आदि कवि उसके दरबार में उपस्थित थे। इनमें गंग और रहीम की गणना टकसाली कवियों में है। गंग के बहुत छंद नहीं मिलते, पर सुप्रसिद्ध कवि भिखारीदास ने इनकी तुलना श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी से की है। बस, इसी से इनके महत्त्व का परिचय मिल सकता है। रहीम अथवा रहमन (अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना) के नीति, शृंगार एवं स्फुट विषय-संबंधी यथार्थ तथा चटकीले भावों से पूर्ण दोहे बरवै तथा अन्य छंद हिंदी-संसार में प्रसिद्ध हैं और बिहारीलाल आदि दो-चार लोगों को छोड़ और किसी के दोहे इनकी समता नहीं कर सकते। इसी समय में गोलकुंडा-नरेश भी हिंदी-कविता करता था। यह हिंदी के गौरव का विषय है कि इस समय के दो बादशाह इसमें स्वयं कविता करते एवं कवियों का मान करते थे। अकबर बादशाह के यहाँ १६२० के लगभग गंगा भाट खड़ी बोली का प्रथम गद्य-लेखक हुआ, जिसने "चंद छंद बरनन की महिमा"-नाम्नी पुस्तक रची।

अन्य कवि

सौर-काल के अन्य कवियों में महात्मा दादूदयाल, श्रीभट्ट, बिहारिनिदास, नागरीदास, भगवानहित और रसिक प्रधान थे।

दादूजी ने रामभक्ति पर विशेष ध्यान दिया और दो प्रकृष्ट भक्ति-पूर्ण ग्रंथ निर्माण किए। यह प्रसिद्ध दादू-पंथ के प्रवर्तक हैं। समय-समय पर इनके अनुयायियों ने (जिनमें सुंदरदास सर्वोत्तम हैं) अच्छी कविता की है। अन्य पंथियों की भाँति इनके अनुयायी लोग भी अपने यहाँ की रचनाओं को प्रायः छिपाए रखना ही श्रेष्ठ समझते हैं, पर हाल में इनके ग्रंथों की अच्छी छान-बीन हुई है। शेष पाँच कवियों के विषय में यहाँ कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं; आगे चलकर प्रत्येक का विस्तृत ब्योरा लिखा जायगा।

तुलसीदास

संवत् १६३१ से १६८० पर्यंत कविकुल-कमल-दिवाकर श्री-गोस्वामी तुलसीदासजी का कविता-काल है। हिंदी का जितना उपकार इस एक महात्मा से हुआ उतना किसी से भी नहीं बन पड़ा, वरन् यदि दो-तीन अन्य महानुभावों को छोड़ दें, तो दृढ़ता से कहा जा सकता है कि अन्य किन्हीं भी पूरे एक दर्जन कवियों को मिलाकर भी एक तुलसीदास की समता नहीं हो सकती। धन्य वह समय था जब इस महात्मा का जन्म हुआ! धन्य वह दिन था कि जब इसने हिंदी-भाषा में काव्य करना प्रारंभ किया! इस नर-रत्न के ऋण से हिंदी-भाषा और हिंदू-जाति कभी मुक्त नहीं हो सकती। संसार के किसी भी कवि के विषय में यह निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता कि उसने तुलसी-दासजी से श्रेष्ठतर कविता की है। अँगरेज़ी कविता के चूड़ामणि महाकवि शेक्सपियर (१६२१ से १६७३) की उपमा प्रायः इनसे दी जाती है और कतिपय अँगरेज़ लेखकों ने ममता-वश उसे इनसे भी कुछ बड़ा माना है। इसमें संदेह नहीं कि उसके हैमलेट, मैक-बेथ, विंटर्सटेल, आथेलो, किंगलियर, जूलियस सीज़र, वेनिस का सौदागर इत्यादि नाटक नामी और प्रशंसनीय हैं, परंतु कुल बातों

पर ध्यान देने से गोस्वामीजी में उससे अधिक चमत्कार पाया जाता है। विंटर्सटेल में प्रेम और उसकी जाँच का अच्छा चित्र खींचा गया है, पर सीताजी के प्रेम-वर्णन के सामने वह फीका पड़ जाता है। आथेलो में उसका संदेह एवं आयगो की धूर्ततावाला भाग मुख्यांश है, जो भानुप्रताप-कथांतर्गत कपटी मुनि के वर्णन से पीछे छूट जायगा। किंगलियर में कार्नीलिया का पितृप्रेम एवं गानरिल और रीगन की चालाकी तथा लियर पर उनका प्रभाव अच्छा वर्णित हुआ है, पर कैकेयी की कुटिलता पर दशरथ की दशा एवं श्रीराम के पितृप्रेमवाले वर्णनों के सामने बरबस कहना पड़ेगा कि किंगलियर किसी लड़के की रचना है। जूलियस सीज़र का परम पुरुषार्थ ब्रूटस की मूर्खता एवं ऐंटनी की वक्तृता है, पर इनकी प्रभा अयोध्याकांड के अनेकानेक व्याख्यानों के सामने एकदम मंद पड़ जाती है। मर्चेंट ऑफ़् वेनिस में संदूक़ खोलने में प्रणयी लोगों के विचार एवं न्यायालय का दृश्य अच्छा है। इनके सामने स्वयंवर में राम द्वारा धनुष टूटने के समय सीता व उनकी माता के विचार एवं अन्य अनेक वर्णन कहीं बढ़े-चढ़े हैं। हैमलेट और मैकबेथ परम प्रशंसनीय ग्रंथ हैं; पर रामायण में अयोध्याकांड के वर्णन उनसे कम कदापि नहीं हो सकते। शेक्सपियर ने कुल मिलाकर आकार में गोस्वामीजी से प्रायः ड्योढ़ी कविता की है, जिसमें प्रायः आधा गद्य है। इन ग्रंथों में मानुषीय प्रकृति और नैसर्गिक पदार्थों के ऐसे-ऐसे उत्तम और मनोहर चित्र खींचे गए हैं कि उन्हें पढ़कर अवाक् रह जाना और उक्त कविकुल-मुकुट के सम्मुख सिर नीचा करना पड़ता है। उसने प्रायः सभी प्रकार के मनुष्यों की प्रकृतियों, विविध दशाओं, शृंगार एवं हास्य-रसों और अन्य कई तरह के चमत्कारी विषयों के चित्ताकर्षक वर्णन किए हैं, तथा कथानक-संगठन में अच्छी सफलता पाई है। शांत, वीर

और भयानक-रसों को छोड़ शेष अन्य रसों के भी बड़े ही उत्तम उदाहरण उसमें पाए जाते हैं। सबसे बढ़कर बात यह है कि मानुषीय प्रकृति का वर्णन शेक्सपियर ने अद्वितीय किया है। इस विषय में गोस्वामीजी तक को उसने नीचा दिखा दिया है। पर गोस्वामीजी ने मानुषीय प्रकृति का अत्यंत सच्चा और मनोहर वर्णन करके ईश्वरी प्रकृति, शांत-रस, काव्यांग और भक्ति-भाव की जो अटूट तरंगें प्रवाहित की हैं, उनमें निमग्न होकर वे इस स्वार्थी संसार के बहुत परे उठ गए हैं, उनका स्वाद साधारण संसारी जातियों के विद्वानों तक को पूर्ण रीति से अनुभूत नहीं हो सकता। गोस्वामीजी के वर्णनों को पढ़कर मनुष्य नीची और ऊँची सभी प्रकार की प्रकृतियों को भली भाँति जानकर उत्तम मार्ग की ओर ही प्रवृत्त होगा। भक्ति-रस का जो गंभीर और हृदयद्रावक भाव इनकी रचनाओं में हर स्थान पर वर्तमान रहता है, उसके सामने शेक्सपियर कुछ भी उपस्थित नहीं कर सकता। वंदना, विनय, अयोध्या-कांड के सभी वर्णन, अनेक विनतियाँ, लंका-दहन (कवितावली का), बाल-लीला और ज्ञान-भक्ति आदिक जैसे अच्छे गोस्वामीजी ने कहे हैं, उनके जोड़ शेक्सपियर आदि में नहीं मिलते। भाषा और कविता-शैली में तुलसीदासजी ने पृथक्-पृथक् चार प्रकार के कवियों की भाँति रचनाएँ की हैं, जिनके उदाहरण-स्वरूप रामचरित-मानस, कवितावली, कृष्ण-गीतावली और विनय-पत्रिका कही जा सकती हैं। दोहावली और सतसई आदि में इनकी एक पाँचवीं ही छटा देख पड़ती है। इनके शेष ग्रंथ इन्हीं पाँच विभागों में आवेंगे।

अकबरी दरबार के कवि सौर-काल से ही दृष्टिगोचर होने लगे थे; परंतु भाषा-काव्य पर इनका विशेष प्रभाव तुलसी-काल में पड़ा। इस प्रभाव के कारण विविध विषयों की परिपाटी पड़ी एवं फ़ारसी के चमत्कारी भावों का आवेश हिंदी-साहित्य में हुआ।

तुलसी-काल

तुलसी-काल तीन प्रधान उपविभागों में बँट सकता है, प्रथम १६४९ पर्यंत, द्वितीय १६७० तक और तृतीय शेषकालिक। प्रथम उपविभाग में अग्रदास, करनेस, गदाधर भट्ट, बलभद्र मिश्र, होलराय, रहीम, लालचंद, रसखान, अनंतदास आदि भारी कवि थे। अग्रदास ने रामभक्ति को प्रधान रक्खा, करनेस ने पहलेपहल भँड़ौवा बनाने की चाल चलाई और बलभद्र मिश्र ने बड़ी गंभीर भाषा में नखशिख का पहला स्वतंत्र भाव-पूर्ण ग्रंथ निर्माण किया। गदाधर भट्ट एक प्राचीन प्रकार का भक्त था। इसने कृष्ण-यश उत्कृष्ट छंदों में गाया। रहीम के चटकीले दोहों में नीति की प्रधानता है। लालचंद (१६४३) ने हिंदी में पहला इतिहास-ग्रंथ बनाया। रसखानजी मुसलमान होने पर भी पूरे वैष्णव थे। उन्होंने प्रेम का अच्छा चित्र खींचा। इनके छंदों से भक्ति टपकी पड़ती है। कविता भी इनकी बड़ी प्रशंसनीय है। भक्ति-भावों के अतिरिक्त कतिपय कवियों ने विविध विषयों की ओर भी ध्यान दिया। महाराज टोडरमल के समय तक मुसलमानी दफ़्तरों में हिंदी का ही प्रचार था। इससे यह हानि थी कि हिंदू लोग फ़ारसी बहुत नहीं पढ़ते थे, सो उनको सरकार में बड़े-बड़े ओहदे कम मिलते थे। यही सोचकर इन महाराज ने दफ़्तरों से हिंदी उठा दी। इससे हिंदी-प्रचार में कुछ क्षति हुई, पर हिंदुओं को लाभ हुआ, तथा उनमें फ़ारसी-प्रचार की वृद्धि से हिंदी में नए-नए भाव आने लगे और विविध विषयों के वर्णन की परिपाटी ने बल पाया।

केशवदास आदि

द्वितीय उपविभाग में केशवदासजी प्रधान कवि हैं। इन्होंने १६४८ से ६८ तक कविता की है। जैसे तुलसीदास ने दोहा-चौपाइयों में कथा लिखने की परिपाटी दृढ़ की, वैसे ही इन्होंने सवैया,

घनाक्षरी आदि विविध छंदों में ग्रंथ-रचना की चाल रामचंद्रिका लिखकर चलाई। कविप्रिया द्वारा इन्हें हिंदी-साहित्य के प्रथम आचार्य की उपाधि मिली। रसिकप्रिया एवं कविप्रिया से भी हम इन्हें बड़े कवियों में प्रथम अभक्त शृंगारी कवि समझते हैं। कुल मिलाकर यह हिंदी के परमोत्कृष्ट कवियों में गिने जाते हैं और हमारे हिंदी-नवरत्न में इन्होंने भी ऊँचा स्थान पाया है। यह अँगरेज़ी के मिल्टन कवि के समान हैं। दोनों पूर्ण विद्वान् थे और जैसे केशवदासजी संस्कृत छोड़ हिंदी-काव्य करने में कुछ लज्जा-सी बोध करते थे, वैसे ही मिल्टन भी लैटिन त्यागकर अँगरेज़ी में ग्रंथ-रचना करने में न्यूनता अवश्य समझते थे। इन दोनों की अवस्था भी प्रायः बराबर थी और इनके मरणकाल में एक विलक्षणता यह है कि मिल्टन का देहांत सन् १६७४ ईसवी में हुआ और केशवदास का संवत् १६७४ विक्रमीय में माना गया है। इस उपविभाग में केशवदास को छोड़कर प्रवीणराय-वेश्या, लालनदास, नाभादास, क़ादिरबख़्श, अमरेश, मुक्तामणिदास, मुबारक, बनारसीदास, उसमान आदि प्रधान कवि थे। नाभादासजी ने भक्तमाल में उस समय तक के भक्तों का वर्णन करके हम लोगों का बड़ा उपकार किया है। अमरेश की कविता बड़ी टकसाली होती थी और मुक्तामणिदास की रचनाओं को स्वयं तुलसीदासजी बहुत पसंद करते थे। मुबारक की कविता रसमयो होती थी। बनारसीदास जैन कवियों में प्रधान हैं। इन्होंने कुछ गद्य भी लिखा है। उसमान ने जायसी की भाँति चित्रावली-नामक एक प्रेम-कहानी कही। तृतीय उपविभाग में (१६७१-८०) लीलाधर, सुंदरदास, ताहिर, घासीराम, जटमल इत्यादि सुकवि हैं। सुंदरदासजी स्वामी दादूदयाल की संप्रदाय के सर्वोत्तम कवि हुए हैं। इनका कविता-काल संवत् १६७७ से प्रारंभ होता है। इसी कारण इनका यहाँ वर्णन किया गया है, नहीं तो

इनकी रचनाएँ संवत् १७४६ तक पहुँची हैं। इन्होंने भक्ति और संसार की असारता के अच्छे कथन किए हैं। घासीराम की कहावत बड़ी चोखी तथा सुहावनी है और इनकी अन्योक्तियाँ भी अच्छी होती हैं। इन्होंने पक्षी-विलास-नामक एक उत्कृष्ट ग्रंथ बनाया। जटमल खड़ी बोली गद्य का द्वितीय लेखक है। इसने गोरा-बादल की कथा-नामक ग्रथ में उसी का प्राधान्य रक्खा है।

भाषा

सारांश यह कि सौर तुलसी-काल हमारी भाषा का बड़ा ही उज्ज्वल समय हुआ है। जैसे अँगरेज़ी में एलीज़बेथ का समय (१६१५ से १६६०) उक्त भाषा के लिये बड़ी उन्नति का है, वैसे ही अकबर का राजत्व-काल (१६१३—१६६२) हिंदी की वृद्धि और गौरव का ज़माना हुआ है। दोनों ही देशों में इस समृद्धिशाली समय में बड़ी ही संतोषजनक उन्नति हुई और अच्छे-अच्छे कवि व लेखक हो गए। उर्दू-भाषा की जड़ भी मुख्यतया इसी समय में पड़ी। इस बृहत् काल में पहले तो व्रजभाषा तथा पदों का विशेष बल रहा और कृष्ण कविता पर अधिक ध्यान दिया गया, पर तुलसी-काल से रामभक्ति की भी धारा बही। सौर-काल में रामभक्तों ने कृष्ण की भाँति उनका भी शृंगार-पूर्ण वर्णन किया। तुलसी के साथ व्रजभाषा का सिक्का कुछ शिथिल हुआ और अवधी भाषा ने भी हिंदी में स्थान पाया, यहाँ तक कि दोहा-चौपाइयों के ग्रंथों में उसी का प्राधान्य हो गया। गद्य का भी कुछ-कुछ प्रचार बढ़ा। विट्ठलनाथ, गोकुलनाथ, गंगाभाट, बनारसीदास और जटमल इस समय के गद्य-लेखक हैं। इस काल में भाषा में अनुप्रास, यमकादि का विशेष आदर नहीं हुआ।

तीसरा अध्याय

पूर्वालंकृत हिंदी (१६८१ से १७९० तक)

उन्नति

अब तक बड़े-बड़े कवियों के हाथ में भाषा क्रमशः विशेष उन्नति करती आई थी, और इस समय के आरंभ से ही उसकी परिपक्कता में कोई कसर नहीं रही थी, सो इस काल के कवियों का रुझान भाषा के अलंकृत करने की ओर विशेष रहा और इस श्रम में वे पूर्णतया कृतकार्य हुए। इस उत्तम समय में हिंदी की और भी अधिक उन्नति हुई और उसमें विविध विषयों के वर्णन की प्रथा दृढ़तर हुई। अंतिम समय में जैसे अकबरी दरबार से हिंदी को लाभ पहुँचा था, वैसे ही जहाँगीर और शाहजहाँ के दरबारों से इस काल के आदिम भागों में पहुँचता रहा। औरंगज़ेब के समय से उसके अत्याचारों एवं अन्य कारणों से भारत में जातीयता जागृत हुई और हिंदुओं में शूरवीर उत्पन्न होकर हिंदू-साम्राज्य के लिये प्रयत्न करने लगे। ये लोग स्वभावतः कवियों का मान करते और वीर-कविता को पसंद करते थे। अतः विविध विषयों की परिपाटी ने और भी बल पाया और वीर-कविता भी हिंदी में बहुतायत से बनने लगी। इस उत्तम काल में भाषा एवं भाव-संबंधी उन्नतियाँ बहुत अच्छी हुईं और जातीयता जागृति की पूरी झलक कविता में आई। सौर-काल के भक्त कविगण प्रायः वात्सल्य और सखीभावों से कविता बनाते थे, सो पूरे भक्त होते हुए भी वे श्रीकृष्ण का शृंगारात्मक वर्णन करते थे। वे स्वयं निर्विकार मनुष्य थे और उनके चित्तों में इससे कुछ बुरे भाव नहीं आते थे, परंतु साधारण सांसारिक मनुष्यों से यह आशा नहीं की जा सकती थी कि उनके भी चित्त उस कविता से वैसे ही विकारहीन रहते। सो जैसा कि हम देख चुके हैं, तुलसी-काल से अभक्त कवियों का समय

शृंगार एवं विविध विषयों में कुछ-कुछ आ गया। इस प्रणाली ने भूषण और देव-काल में बहुत बड़ी उन्नति पाई। शृंगार-कविता भक्ति-पक्ष को बिलकुल छोड़कर नितांत शृंगार की ही रह गई और विविध विषयों में युद्धों के साथ वीर, रौद्र और भयानक-रसों का भी अच्छा वर्णन होने लगा। वीर मनुष्यों के कुछ छंदोबद्ध जीवन-चरित्र भी कहे गए और हिंदी-कविता ने अनेक विषयों में अच्छा चमत्कार दिखाया। परंतु फिर भी उन विषयों की सीमा बहुत संकुचित रही और सांसारिक उन्नति की ओर हमारे लेखकों ने बहुत कम ध्यान दिया। अतः जैसी उन्नति इस समय तक अँगरेज़ी-विद्या ने नाना भाँति के उपकारी विषयों द्वारा कर ली थी, उसका हमारे यहाँ कहीं पता तक न था। कला-कौशल, विज्ञान, रसायन, अर्थ-शास्त्र, इतिहास, जीवन-चरित्र, समालोचना, पुरातत्त्व इत्यादि शाखाओं में अब तक हमारा साहित्य प्रायः एकदम शून्य था। अवश्य ही अब इनकी ओर कुछ-कुछ प्रवृत्ति होने लगी है, पर अभी इन अंगों की कुछ भी पुष्टि नहीं हुई है। बीसवीं शताब्दी में होते हुए भी इन बातों में योरप के देखते हम लोग प्रायः सोलहवीं सदी में ही पड़े हैं। अस्तु।

यह समय १६८१ से १७९० पर्यंत चलता है। इसे हमने भूषण-देव-काल कहा है। इसके पाँच उपविभाग हो सकते हैं, अर्थात् सेनापति-काल (१७०६ तक) बिहारी-काल (१७२० तक), भूषण-काल (१७५० तक), आदिम देव-काल (१७७० तक) और माध्यमिक देव-काल (१७९० तक)।

सेनापति-काल

सेनापति-काल में (१६८१—१७०६) ध्रुवदास, चतुर्भुजदास, व्यासजी, सदानंद, तोष, चिंतामणि, मलूकदास, कवींद्राचार्य, माधुरीदास, सुंदर ब्राह्मण, पोहकर, जोयसी, बेनी, बनवारी, नीलकंठ, महाराजा जसवंतसिंह, ताज, शिरोमणि आदि भारी कवि थे।

सेनापति एक बड़े ही अनूठी रचना करनेवाले सत्कवि थे। आपने प्रायः घनाक्षरियाँ लिखी हैं, क्योंकि छंद चोरी जाने के भय से आप प्रत्येक छंद में अपना नाम अवश्य रखते थे और सवैया में इनका नाम नहीं आ सकता है। आपने षट्‌ऋतु सबसे प्रथम पुस्तकाकार परमोत्तम कहा। हम इन्हें हिंदी का घटखर्पर समझते हैं। ऐसा उत्तम और अनूठा षट्‌ऋतु संस्कृत से इतर किसी अन्य भाषा के कवि ने नहीं कहा होगा। इन्होंने श्लेष-काव्य का एक पूरा अध्याय लिखा है और इनकी भाषा यमक एवं अनुप्रासयुक्त, तथा परम ओजस्विनी होती थी। कवींद्राचार्य का नाम कुछ और था। बादशाह शाहजहाँ ने इन्हें यह उपाधि दी थी। इनकी भाषा में भी अनुप्रास का बाहुल्य है और यही हाल सुंदर ब्राह्मण का है। पोहकर एक नामी कवि हो गया है। इसे क़ैद का दंड मिला था। सो इसने रसरतन-नामक एक प्रेम-कहानी कारागार में ही बनाई, जिससे जहाँगीर के हुक्म से यह मुक्त कर दिया गया। तोष ने १७९१ में सुधानिधि-नामक एक अच्छा नायिका-भेद का ग्रंथ बनाया। इनके उदाहरण साफ़ एवं आचार्यता माननीय है। चिंतामणि त्रिपाठी हिंदी के बड़े प्रसिद्ध कवि हो गए हैं। ये महाराज सबसे पहले आचार्य हैं, जिन्होंने सांगोपांग साहित्य-रीति वर्णन की है। इनके छोटे भाई भूषण और मतिराम भी भारी कवि थे, उन दोनों की गणना भी हिंदी-नवरत्नों में है। इनका वर्णन आगे होगा। नीलकंठ उपनाम जटाशंकरजी भी एक सुकवि थे। इनका ग्रंथ अमरेश-विलास खोज में मिला है। जोयसी का केवल एक छंद विदित है, पर उसी के कारण इसकी गणना सुकवियों में है। अवश्य ही इसके और छंद अथवा ग्रंथ कहीं छिपे पड़े होंगे। बेनी कवि कईएक हुए हैं। इस समय के बेनी असनी के बंदीजन थे। इनकी कविता विशद और सानुप्रास है। बनवारी ने जोधपुर के अमरसिंह राठौर की प्रशंसा

में काव्य किया है। इसकी रचनाएँ परम गंभीर तथा मनोहर होती थीं। महाराजा जसवंतसिंह जोधपुराधिपति हिंदी के महान् कवीश्वरों और आचार्यों में गिने जाते हैं। इनका "भाषाभूषण" अलंकार ग्रंथ बड़ा ही उत्कृष्ट है। इस काल से अनुप्रासादि का विशेष समावेश भाषा में होने लगा।

बिहारी-काल

बिहारी-काल (१७०७–१७२०) के प्रसिद्ध कवि राजा शंभुनाथ सोलंकी, नरहरिदास, प्राणनाथ, भरमी, मतिराम, भीष्म, दामोदर-दास, मंडन, सबलसिंह, सरसदास और अनन्य शीलमणि हैं।

बिहारीलाल की कविता जैसी अनूठी और हृदयग्राहिणी हुई है, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। इन्होंने वास्तव में कूज़े में समुद्र भर दिया है। इनका एक-एक दोहा अपूर्व आनंद देता है। उच्च ख़याल तथा तलाज़मों में इन्होंने फ़ारसी एवं उर्दू के नामी कवियों को मात किया है। इनकी कविता हर प्रकार के कवियों को रुचिकर हुई है। इस कवि की दृष्टि हिंदी-भाषा के प्रायः सभी कवियों से पैनी थी और अनुभव भी ख़ूब बढ़ा-चढ़ा था। इसका शायद ही कोई दोहा निकले, जिसमें किसी प्रकार का विशेष चमत्कार न हो। काइयाँपने में यह कवि शायद सबसे बढ़ा हुआ है। इसकी भाषा वैसी बढ़िया चाहे न हो, पर भाव अपूर्व हैं। केवल ७०० दोहों के सहारे इसका पद हिंदी-संसार में इतना ऊँचा है कि कोई-कोई कविताप्रेमी लोग इसे सर्वोत्तम कवि समझते हैं, और हमने भी अपने नवरत्न में इसे चौथा स्थान दिया है। इसकी देखादेखी बहुत कवियों ने सतसैयाएँ बनाईं, पर उन बूँदों भेंट कहाँ ? बिहारी की कविता वास्तव में हिंदी का शृंगार है। राजा शंभुनाथ ने नख-शिख बड़ा ही टकसाली बनाया। ऐसा उत्तम नख-शिख भाषा में किसी कवि का नहीं है। इनकी अन्य कविता भी सानुप्रास एवं भाव-पूर्ण है।

नरहरिदास ने अच्छे विषयों पर रोचक रचना की और प्राणनाथ ने बुँदेलखंड में धामियों का पंथ चलाया, जिसमें हिंदू-मुसलमान-मतों का मिश्रण है। अब धामियों की जाति ही पृथक्-सी हो गई है। प्राणनाथजी की कविता भी साधारणतया अच्छी है। मतिराम ने कई ग्रंथ रचे। इनकी भाषा बड़ी ही प्रसाद-पूर्ण और श्रुति-मधुर है। देव को छोड़कर सब कवियों से वह श्रेष्ठतर है और उसका प्रभाव कवियों पर बहुत पड़ा है। इनके भाव भी बड़े ऊँचे एवं गंभीर हैं। मतिराम ने शृंगार और वीर दोनों रसों में मनोमोहिनी कविता की है। माधुर्य तो मानो इस कवि के बाँटे ही पड़ा है और इसके कई कवित्त ऐसे बढ़िया बन पड़े हैं कि देव को छोड़ और किसी भी कवि की रचना में से समस्त हिंदी-साहित्य खोज डालने पर भी वैसे छंद नहीं मिल सकते। यह महाकवि उन महानुभावों में से है कि जिनकी रचनाओं के कारण हिंदी-साहित्य का सिर संसार में ऊँचा है और सदा रहेगा। हिंदी में चाहे और कुछ भी न हो, पर जब तक मतिराम-जैसे सत्कवियों की कविता इसमें स्थिर है, तब तक उसका कोई भी तिरस्कार नहीं कर सकता। इनकी गणना नामी आचार्यों में है और हमने हिंदी-नवरत्न में इनको आदर के साथ स्थान दिया है। भीष्म कवि ने भागवत-दशम स्कंध के पूर्वार्द्ध का बढ़िया छंदों में सारांश कहा और दामोदर दास ने मार्कंडेयपुराण का राजपूतानी गद्य में उल्था किया। मंडन मिश्र की कविता भी प्रशंसनीय है। सबलसिंह चौहान ने १७१८ से १७८१ पर्यंत महाभारत की कथा सविस्तर दोहा-चौपाइयों में लिखी। सरसदास और अनन्य शील-मणि इस समय के भक्त कवि थे। इस काल में यमक और अनुप्रास का बल और भी बढ़ा और भाषा की अच्छी अंग-पुष्टि हुई।

भूषण-काल

भूषण-काल (१७८१–१७९०) में कुलपति मिश्र, सुखदेव

मिश्र (कविराज), कालिदास, रामजी, हरिकेश, घनश्याम, नेवाज और वृंद परमोत्तम कवि हुए हैं। ऐसे-ऐसे भारी कवि इतनी अधिकता से और किसी उपविभाग में अब तक नहीं हुए थे। भूषण का कविता-काल १७०० के आसपास प्रारंभ होकर १७७२ तक चला है, पर १७२० के पहले उनकी कविता प्रौढ़ न थी तथा १७५० के पीछे उनके कुछ ही स्फुट छंद मिलते हैं। इनके काल-नायक होने के कारण इनका वर्णन यहाँ होता है। इनका काव्य ऐसा उद्दंड और प्रबल है कि उसका जोड़ ढूँढ़ना अत्यंत कठिन है। वीर-रस को तो मानो इस महाकवि ने बिलकुल अपना ही लिया है और उसका प्रायः पहला ही कवि होने पर भी यह उसमें अद्वितीय है। अवश्य ही कई अन्य कवियों ने भी उक्त रस में ज़ोर-दार कविता की है, पर इन महाराज का सामना कोई भी नहीं कर सकता। इनके वीर-वर्णनों को पढ़कर रोमांच हो आता है और कादरों तक के जी में उत्साह उमड़ पड़ता है। भूषणजी ने जैसी उत्तम कविता की, वैसे ही शिवाजी और छत्रसाल जैसे पुरुषसिंह इनको नायक भी मिल गए थे, जिनके प्रताप और आतंक-वर्णन करने में अतिशयोक्ति भी पीछे ही रह जाती है। जातीयता एवं हिंदू-प्रेम इस कविरत्न में कूट-कूटकर भरा था। इनकी गणना हिंदी के परमोच्च कवियों में है और हमारे नवरत्न में इनको पाँचवाँ स्थान मिला है। कविता ही के बल से इनका विभव राजों के समान हो गया था। जहाँगीर के राजत्व-काल में जन्म लेकर इन्होंने जातीयता का जन्म एवं पूर्ण विकास तथा मुग़लों का पतन एवं पेशवाओं का साम्राज्य स्थापित होने के पीछे अपनी सभी अभिलाषाएँ पूरी हो जाने के उपरांत १०२ वर्ष की आयु में शरीर त्यागा। इन महाराज का नाम हिंदी-साहित्य में सदा अचल रहेगा।

अकबरी दरबार के समान महाराज छत्रसाल के दरबार का भी प्रभाव इस समय कविता पर बहुत अच्छा पड़ा। वीर-कविता का प्रचार हिंदी में विशेषतया छत्रसाल और शिवाजी के कारण हुआ। छत्रसाल की प्रशंसा हिंदी के बहुत बड़े-बड़े कवियों ने मुक्त कंठ से की।

भूषण-काल के कुलपति और सुखदेव मिश्र भारी आचार्य थे। कुलपति ने बड़ी उत्तमता से गंभीरता-पूर्वक साहित्य-रीति का वर्णन रस-रहस्य में किया। इनकी रचना भी बड़ी मनोहर, किंतु कुछ कठिन है। ये बिहारीलाल के भांजे थे। सुखदेव मिश्र पिंगलाचार्य समझे जाते हैं। ये प्रथम कवि थे, जिन्होंने पूर्ण बल से पिंगल के ही विषय का वर्णन किया। इनके अन्य वर्णन भी अच्छे थे। इन दोनों कवियों की रचना बड़ी ही टकसाली होती थी। कालिदास त्रिवेदी भी इस समय के एक परम प्रसिद्ध कवि थे। अन्य विशद प्रबंधों के साथ २१२ कवियों की रचनाओं का हज़ारा-नामक इन्होंने एक संग्रह भी बनाया, जिससे उन प्राचीन कवियों के नाम एवं यश स्थिर रहने में बड़ा सहारा मिला। इस प्रकार भविष्य इतिहास-रचयिताओं को कालिदास ने बड़ी सहायता दी। ये प्रसिद्ध कवि कवींद्र के पिता और दूलह के बाबा थे। इनके छंद भी मनोहर होते थे। रामजी भी एक चमत्कारी कवि थे। हरिकेश (१७३२) भूषण की भाँति इस समय का एक बड़ा ही उद्दंड कवि हो गया है। इसके बहुत छंद नहीं मिलते, पर जितनी कविता इसकी मिली है वह बड़ी ही चमत्कारिक है। इनका एक ग्रंथ खोज में लिखा है। इसने वीर-प्रधान कविता की है। घनश्याम के केवल स्फुट कवित्त मिले हैं, पर उनमें अद्भुत ज़ोर देख पड़ता है। इस समय के कवियों में यह कुछ विशेषता-सी है कि उनकी रचनाओं में प्राबल्य की मात्रा बहुत अधिक पाई जाती है। घनश्याम ने

वीर एवं शृंगार दोनों ही रसों की सानुप्रास, भाव-पूर्ण एवं उत्कृष्ट कविता की है। नेवाज (संवत् १७३७) ने शकुंतला-नाटक भाषा में कहा है और संयोग-शृंगार में जैसी चटकीली रचना इसने की है, वैसी हिंदी-साहित्य-भर में कठिनता से मिल सकेगी। यह बड़ा ही रसिया कवि था। वृंद (१७४२) ने नीति के दोहे अच्छे कहे और बाल अली ने सखी-भाव से भक्ति-पक्ष की कविता की।

देव

महाकवि देवदत्त उपनाम देव का जन्म १७३० में हुआ था और केवल षोड़श वर्ष की बाल्यावस्था में इन्होंने अष्टयाम और भाव-विलास-जैसे उत्तम ग्रंथ रच डाले थे, पर इनका वास्तविक कविता-काल १७५१ से माना गया है और वह १८२५ तक चला। इस भारी काल के तीन उपविभाग हैं, जिनमें से केवल दो की गणना पूर्वालंकृत हिंदी के अंतर्गत होती है, अर्थात् आदिम देव-काल (१७५१–७०) और माध्यमिक देव-काल (१७७१–९०)।

आदिम देव-काल (१७५–१७०) के नामी कवियों में छत्र, बैताल, लाल, प्रियादास, गुरु गोविंदसिंह, चंद, कवींद्र, श्रीधर, सूरति मिश्र और महाराजा अजीतसिंह हैं।

जैसे संस्कृत में कालिदास कविता में प्रायः सबसे बड़े माने जाते हैं, वैसे ही हिंदी-साहित्य में महाकवि देव का जोड़ खोजना कठिन काम है। महात्मा तुलसीदास और सूरदास को उपमा सूर्य और चंद्र से दी गई है, पर अनेक हिंदी-मर्मज्ञों का यह मत है कि ऐसी दशा में देवजी को नभमंडल मानना पड़ेगा कि जिसमें सूर्य, चंद्र और तारागण उदय और अस्त होते एवं इधर-उधर परिभ्रमण किया करते हैं, पर जिसका कहीं ओर-छोर ही नहीं मिलता। उन लोगों का विचार है कि तुलसीदास और सूरदास महात्मा अवश्य बड़े थे, पर कविता-मार्ग में वे देवजी के पीछे ही रह जाते हैं।

हम लोग यद्यपि इस मत के माननेवालों में नहीं हैं, तथापि हम यह भी नहीं कह सकते कि देवजी की कविता इन महात्माओं की रचनाओं से न्यून है। वास्तव में इन तीनों महा-पुरुषों की कविता में अलग-अलग कुछ ऐसे विशेष गुण हैं कि इनमें से किसी को घटा-बढ़ाकर कहना कभी मतभेद से ख़ाली नहीं हो सकता। यह त्रिमूर्ति सचमुच ही धन्य है और इसी के बाहु-बल से हिंदी-साहित्य का पाया इतना ऊँचा है। हम दृढ़ता-पूर्वक कह सकते हैं कि ममता-भाव को यथाशक्ति पूर्ण रीति पर हटाकर एवं पक्ष-पात-रहित होकर हमने भली भाँति विचार करने पर भी ऐसे तीन कवि किसी भी भाषा में नहीं देखे या सुने। यह सच है कि "क्या पिद्दी और क्या पिद्दी का शोरवा", अर्थात् हम लोगों की जानकारी ही कितनी कि जिसके बिरते पर हम ऐसी आतंक-पूर्ण बातें करें, पर "निज पौरुष परमान ज्यों मशक उड़ाहिं अकाश"-वाली कहावत के अनुसार यदि हम भी धृष्टता करके कुछ कहने का साहस करें, तो विद्वान्‌गण शायद हमारी अवहेलना न करेंगे। किसी-किसी भाषा में दो-एक परमोत्कृष्ट कवि पाए जाते हैं, पर ऐसे-ऐसे तीन-तीन कवि कहीं भी स्वप्न तक में नहीं हैं। देवजी ने ७२ या कम-से-कम ५२ ग्रंथ बनाए हैं, जिनमें से २६-२७ का पता लग चुका है और नित्य नए-नए ग्रंथ मिलते जाते हैं। इनकी कविता माधुर्य और प्रसाद-गुणों से परिपूर्ण है। उसमें काव्यांगों का भरपूर उत्कर्ष है और अनुभव कूट-कूटकर भरा है। सभी के दो ही आँखें होती हैं, पर कवि कितना अधिक देख सकता है, इसे अनुभूत करने के लिये देव महाराज की कविता देखनी चाहिए। क्या मानुषीय प्रकृति, क्या अनेक प्रकार के भाव, क्या प्राकृतिक वर्णन और क्या भाषा की गंभीरता, मधुरता एवं परिपक्वता, सभी बातों में देव की प्रभा देखते ही बनती है; उसका वर्णन कर सकना दुस्तर है।

भाषा को किसी कवि ने इतना भूषित नहीं किया है। इन्होंने दशांग-काव्य पूर्णतया कहा है और उसके अतिरिक्त काव्य के अनेक नए अंग स्थापित कर दिए हैं। निदान उपर्युक्त दो महाकवियों को छोड़ इनका पद हिंदी-साहित्य में सभी से ऊँचा है।

पूर्व देव-काल

इस काल में छत्र कवि ने महाभारत के विषय को सूक्ष्मतया विविध छंदों में कहा और बैताल बंदीजन ने बड़ी ही सबल कविता की। ऐसी उद्दंड कविता हिंदी में कोई भी नहीं कर सका है। गोरेलाल उपनाम लाल कवि इस समय का परमोत्तम कथा-प्रासंगिक कवि है। इसने छत्रप्रकाश-नामक ललित ग्रंथ में महाराज छत्रसाल का जीवन-चरित्र संवत् १७६४ पर्यंत लिखा है। जान पड़ता है कि यह कवि इस समय के पीछे जीवित नहीं रहा। इस ग्रंथ में दोहा-चौपाई छोड़कर कोई भी छंद नहीं है, परंतु इन्हीं से यह अनमोल और मनोहर बना है। लाल के बराबर उत्तम कविता में उद्दंडता लाने में कोई भी कवि समर्थ नहीं हुआ है। भूषण, हरिकेश, शेखर और लाल, ये चारों बड़े उद्दंड लेखक हैं, परंतु लाल का प्राबल्य इन सबमें निकलता हुआ है, यद्यपि कुल मिलाकर ये भूषण के समान सत्कवि नहीं हैं। बैताल भी एक बड़ा ही उद्दंड कवि है, परंतु उसके कथन कुछ ग्रामीणता लिए हुए हैं और लाल साधु भाषा में अद्वितीय उद्दंडता लाए हैं। इस अमूल्य ग्रंथ में कविता-संबंधी प्रायः सभी सद्गुण वर्तमान हैं। युद्धों का ऐसा उत्तम वर्णन बहुत स्थानों पर न मिलेगा। इस कवि ने उत्तमता में अपनी रचना गोस्वामीजी से मिला-सी दी है, यद्यपि इन दोनों कवियों के ढंगों में बड़ा अंतर है। लाल एक बड़ा ही अनमोल कवि है। गुरु गोविंदसिंह सिक्खों के दसवें बादशाह थे। इन्होंने सिक्खों में जातीयता का बीज बोया। इनकी कविता भी साधारणतया अच्छी थी।

कवींद्र (१७६२) ने नायिका-भेद का वर्णन किया और कुछ उद्दंड वीर छंद भी अच्छे रचे। इनकी भी कविता परम ललित है। सूरति मिश्र उत्तम कवि, उत्तम टीकाकार और उत्तम गद्य-लेखक हैं। आपने कई गंभीर ग्रंथ रचे हैं। महाराजा अजीतसिंह महाराजा जसवंतसिंह के पुत्र और एक सुकवि हैं। प्रियादास ने १७६६ में नाभादास-कृत भक्तमाल की एक उपयोगी छंदोबद्ध टीका रची। इसने महात्माओं की जीवनी जानने में समाज का अच्छा उपकार किया। आदिम देव-काल में विशेषतया देव, लाल और कवींद्र उत्कृष्ट कवि थे, तथा भूषण, मतिराम, हरिकेश आदि भी वर्तमान थे।

माध्यमिक देव-काल

माध्यमिक देव-काल (१७७१ से १७६० तक) में घनानंद, श्रीपति, सीतल, नागरीदास (महाराजा), भूधरदास, कृष्ण, जोधराज, गंजन, महबूब, प्रीतम और हरिचरणदास प्रसिद्ध कवि थे। घनानंद(१७७०–६८) ने भक्ति और प्रेम-रसार्णव की अटूट लहरें लहराई हैं। ये बड़े ही प्रेमी पुरुष थे और इनकी रचना बड़े-बड़े कवियों को मोहित करती है। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र घनानंद की रचनाओं के बड़े प्रेमी थे। सुजान-नामक एक सुंदरी पर घनानंद आसक्त थे। उसकी प्रशंसा में इन्होंने कितने ही उत्कृष्ट छंद रचे। श्रीपति दशांग-कविता के एक भारी आचार्य थे। इन्होंने भी कुलपति की भाँति बड़ी गंभीरता से रीति-वर्णन किया। इनकी चोरी बड़े-बड़े कवियों ने की है। भाषा के परमोत्कृष्ट आचार्यों में इनकी भी गणना है। सीतल ने अपनी पूरी रचना खड़ी बोली में की। वह बड़ी चटकीली तथा उत्तम है। इनसे पहले और किसी कवि ने ऐसी उत्तम भाषा में खड़ी बोली की रचना नहीं की, और न अब तक भी कोई इनके समान रचना करने में समर्थ हो सका है। इनका रचा हुआ चार भाग गुलज़ार-चमन सुना जाता है, जिसमें केवल एक हमारे पास है, भाग्य-वश त्रि०ऐ०खो० में इस ग्रंथ की

संपूर्ण प्रति भी मिल गई है। इन्होंने लालविहारी को ईश्वर मानकर उसी की प्रशंसा में अपनी सब रचना की है, जो सर्वथा प्रशंसनीय तथा दर्शनीय है। महाराज नागरीदास (सावंतसिंह) कृष्णगढ़ के महाराज थे, परंतु वृंदावन और कविता के ये ऐसे प्रेमी थे कि राज्य छोड़कर भजनानंद और साहित्य-रचना में प्रवृत्त हुए। इन्होंने सौर-काल के ऋषि-कवियों की भाँति बड़ी ही भक्ति-पूर्ण रचना में कृष्ण भगवान् का शृंगारात्मक वर्णन किया। इनकी कविता तल्लीनता का पूरा परिचय देती है और वह प्रशंसनीय है। भूधरदास एक प्रसिद्ध जैन कवि थे। इन्होंने साधारण ग्रंथों के अतिरिक्त पुष्पपुराण-नामक एक जैन-पुराण की भी रचना की, जो इस मत में बड़ी पूज्य दृष्टि से देखा जाता है। कुछ लोगों का कहना है कि कृष्ण कवि बिहारीलाल के पुत्र थे और इन्होंने अपने पिता की सतसई पर प्रति दोहे का भाव लेकर अच्छे सवैया-छंद बनाए। इनकी रचना प्रशंसनीय है। जोधराज ने प्राचीन भाषा में हम्मीररासा-नामक एक भारी और सराहनीय ग्रंथ रचा, जिसमें वर्णनों की पूर्णता का कुछ स्वाद मिलता है। गंजन कवि ने क़मरुद्दीनख़ाँ की प्रशंसा एवं शृंगार-रस में बहुत अच्छे-अच्छे छंद कहे हैं। इनका ग्रंथ बहुत ललित है। उसमें अनुप्रास एवं सबल भावों की बहार है। महबूब ने भी ज़ोरदार कविता की और प्रीतम ने २२ छंदों में केवल खटमलों का हास्य-पूर्ण वर्णन किया। हरिचरणदास एक सुकवि और भारी टीकाकार थे।

भाषा

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उससे विदित होगा कि यह पूर्वालंकृत काल (१६८१–१७९०) हिंदी-भाषा के लिये कल्पतरु हो गया है। जितने सुकवि जिस अधिकता के साथ इस चामत्कारिक समय में हुए उतने और किसी भी काल में नहीं देख पड़ते। इसमें संदेह नहीं कि प्रौढ़ माध्यमिक हिंदीवाला अर्थात् सौर—तुलसी काल भी,

बड़ा ही विशद हुआ है, पर कहना ही पड़ता है कि यह हिंदी-काल कुल मिलाकर उससे भी बढ़ा-चढ़ा हुआ है। उसमें चार कवि परमोत्तम हुए अर्थात् तुलसी, सूर, केशव और हितहरिवंश; पर इस काल ने छः वैसे ही कवि उत्पन्न करके दिखला दिए, जिनमें देव, बिहारी, भूषण, मतिराम, सेनापति और लाल गिने गए हैं। उनमें तीन कवि नवरत्नोंवाले और एक प्रथम कक्षा के हैं, और इधर चार नवरत्नों के और दो प्रथम श्रेणी के वर्तमान हैं। इन निकलते हुए कवियों को छोड़कर दोनों कालों के शेष कवियों की ओर ध्यान देने से इनमें जो भेद है वह तत्काल ही प्रकट हो जायगा। दूसरे काल के हरिकेश, नेवाज, चिंतामणि, कुलपति, कविराज, शंभुनाथ, घनश्याम, नागरीदास, बैताल, घनानंद, श्रीपति, गंजन इत्यादि के सामने पहले (सौर—तुलसी) काल के तीन-चार कवियों से अधिक कदापि नहीं गिनाए जा सकते। कुल मिलाकर यह दूसरा काल हिंदी-साहित्य के लिये एकदम अद्वितीय है। ऐसी दशा में आश्चर्य के साथ कहना पड़ता है कि कतिपय विद्वानों ने इसी समुज्ज्वल काल के एक बृहत् विभाग को दूसरी श्रेणी के कवियों और टीकाकारों का समय (the age of 2nd rate poets and commentators) बतलाया है ! जिस काल में देव की प्रायः समस्त रचनाएँ आ जायँ, और जिसमें भूषण, मतिराम, लाल, तथा ऊपर लिखे हुए अनेक अन्य कवि काव्य कर रहे हों, एवं पीछे से जिसको ठाकुर, बोधा, दूलह, सूदन इत्यादि अनेक कवियों ने अलंकृत किया हो, उसका यों अपमान करना किसी ज्ञाता पुरुष को शोभा नहीं देता। अस्तु। इस समय में भाषा की उन्नति प्रायः चरम सीमा पर पहुँच गई। दूषणों को न आने देकर, एवं भाव न बिगाड़कर कवियों ने भाषा को यथासंभव पूर्णतया अलंकृत कर दिया और उसमें सभी प्रकार से परिपक्वता आ गई। गद्य के कुछ लेखक अवश्य हुए, पर

इस काल तक उसकी साहित्य में गणना नहीं हो सकी। इस काल में वीर-काव्य और विविध विषयों की चाल हिंदी में भली भाँति पड़ गई और अनेक शूरवीरों के प्रभाव के सम्मुख संभव था कि शृंगार-काव्य की प्रथा मंद पड़ जाती, पर शृंगार-तरु की जड़ें हमारी भाषा-भूमि में बहुत गहरी पहुँच चुकी थीं, सो वे न हिल सकीं और शृंगार की कविता का भी प्रभाव बना रहा, वरन् आगे चलकर वह और भी प्रबल पड़ गया। यों तो भाषा के प्रथम आचार्य केशवदासजी हैं, पर नायिका-भेद और रीति-ग्रंथों के लिखने की परिपाटी ठीक-ठीक इसी काल में पड़ी। इसी काल में कालिदास त्रिवेदी ने हज़ारा-नामक प्रसिद्ध संग्रह-ग्रंथ लिखा और टीकाएँ रचने की चाल पड़ी। सारांश यह कि इस समय को हिंदी का आगस्टन काल (Auguston age) कह सकते हैं।

चौथा अध्याय

उत्तरालंकृत हिंदी (१७९१–१८८९)

अभी महाकवि देव का ही समय चला जाता था, पर थोड़े दिनों पीछे (१८२५ में) उनका शरीर पंचत्व को प्राप्त हुआ और हिंदी-साहित्य की कुछ-कुछ अवनति हो चली। कतिपय अन्य कवियों ने अवश्य ही उत्कृष्ट कविता की, पर उनके पीछे वह बात न रही, तो भी बेनी प्रबीन, शेखर, वृंदावन और परताप के होते हुए भाषा की न्यूनता नहीं होने पाई।

इस बृहत् काल को भी हम पाँच उपविभागों में विभक्त करते हैं, पहला अंतिम देव-काल, जिसको हम दास-काल कहेंगे (क्योंकि इसमें दास-काल की ही बातों की विशेषता पाई जाती है) (१७९१–१८१०); दूसरा सूदन-काल (१८११–३०); तीसरा

ामचंद्र का समय (१८३१–५५); चौथा बेनी प्रबीन का समय १८५६–७५) और पाँचवाँ पद्माकर-काल (१८७६–१८८६)।

दास-काल

दास काल (१७६१–१८१०) में राजा गुरुदत्तसिंह, दलपतिराय, ांसीधर, शिवनारायण, सोमनाथ, रसलीन, रघुनाथ, ललितकिशोरी । ललितमोहनी, चाचा हित वृंदावन, गिरिधर कविराय, नूर-ुहम्मद, ठाकुर, दूलह, शिव, गुमान, कुमारमणि भट्ट, सरजूराम, ुनाथ मिश्र, भगवंतराय खीची और शिवसहाय सुकवि हैं।

भिखारीदास (उपनाम दास) का कविता-काल १७८५ से ८०७ तक माना गया है। यह बड़ा भारी कवि था और इसकी ाषा खूब मधुर है। चाहे किसी दूसरे का भी भाव हो, पर इनके र्णन कर देने के पीछे वह भाव प्रायः इन्हीं का-सा हो जाता था। न्होंने कई ग्रंथ रचे हैं, जिनमें शृंगार-निर्णय और काव्य-निर्णय धान हैं। यह भाषा-काव्य का भारी आचार्य है। राजा गुरुदत्तसिंह सतसई बहुत सोहावनी कही है। इनके अनेक दोहे बिहारी से िलकुल मिल जाते हैं, एवं स्वतंत्र रीति पर भी वे परम प्रशंसनीय । इनके दोहों में भाषा और भाव दोनों का सौंदर्य परम प्रशस्त वं संक्षिप्त गुण दर्शनीय है। दत्त (१७६१) ने लालित्य-लता-ामक उत्कृष्ट अलंकार-ग्रंथ रचा। कहते हैं कि ग्वाल और पद्माकर इनकी नोक-झोंक रहती थी, परंतु ये दोनों कवि इनसे पीछे के । इनकी रचनाएँ समकक्ष हैं तथा इनमें शब्द-लालित्य की प्रधा-ता है। दलपति राय और बंसीधर मिलकर काव्य करते थे। होंने भाषाभूषण की टीका बड़ी ही विशद बनाई और कविता च्छी की। शिवनारायण ने ग़ाज़ीपुर में एक पंथ चलाया और १ ग्रंथ निर्माण किए। सोमनाथ (१७६४) इस समय का भारी वि और आचार्य है। इसने निर्दोष कविता की और काव्यांगों का

बहुत साफ़ वर्णन किया। रसलीन (१७८४–६६) ने दोहों में रस-विषय को सांगोपांग वर्णित किया। इसके दोहे बड़े ही मनोहर होते थे। रघुनाथ (१७६६) भाषा-काव्य में अलंकारों के नामी आचार्यों में से हैं। यद्यपि इनकी भाषा वैसी नहीं थी, तथापि कविता इन्होंने अच्छी एवं सारगर्भित की और खड़ी बोली में भी छंद रचे। ललितकिशोरी और ललितमोहनी ने व्रजभाषा-गद्य में एक ग्रंथ बनाया है, जिसमें कुछ-कुछ खड़ी बोली का भी ढंग आ जाता है।

चाचा वृंदावन हित (१८००) इस समय में एक परम प्रशंसनीय और भारी कवि हो गए हैं। यह महात्माजी श्रीगोस्वामी हरिवंशहित के संप्रदाय में थे। सुना जाता है कि इनकी सवा लक्ष वाणी वर्तमान है। कोई साढ़े १८ हज़ार पद इनके हमने भी देखे हैं। स्मरण रहे कि महात्मा सूरदास के चार-पाँच हज़ार पदों से अधिक नहीं मिलते। चाचाजी की भाषा परम ललित और मधुर है। यह कृष्णानंद में डूबे हुए थे। कुल मिलाकर इनका पद हिंदी-काव्य में बहुत ऊँचा है। गिरिधर कविराय ने कुंडलिया-छंदों में दैनिक व्यवहारों और साधारण नीति अत्यंत यथेष्टता के साथ कही है। नूरमुहम्मद ने जायसी की भाषा में उसी ढंग की इंद्रावती-नामक प्रेम-कहानी लिखी। ठाकुर कवि ने सवैयाओं में बड़ी ही टकसाली कविता की। इसकी कविता हृदय पर चोट पहुँचानेवाली तथा सच्चे प्रेम से परिपूरित है। यह कवि अव्वल नंबर का रसिया था और इसकी कहावत ऐसी मधुर और सरस है कि उसके पढ़ने में उत्तरोत्तर आनंद बढ़ता ही जाता है। इसके सवैया देव के छंदों से पूरी टक्कर लेते हैं और भाव प्रायः सदा ही नवीन एवं परम चमत्कारी होते हैं। यदि इसकी अधिक कविता मिल जाय तो शायद यह महाकवि नवरत्नवालों तक का सामना कर सके। अब भी इसका स्थान प्रथम कक्षा के कवियों में ऊँचा है। गुमान मिश्र (१८०१) ने नैषध काव्य का विविध छंदों में उल्था किया।

दूलह त्रिवेदी (१८०२) की गणना हिंदी के नामी आचार्यों और कवियों में है। अलंकार के ये महाशय मुख्य सूत्रकार हैं। जैसे पिंगल में मनीराम हुए हैं, वैसे ही इस विषय (अलंकारों) को अत्यंत सूक्ष्म रीति से लक्षणों और उदाहरणों सहित दूलह ने ख़ूब ही साफ़ कर दिया है। सरजूराम ने दोहा-चौपाइयों में जैमिनि-पुराण की साधारणतया अच्छी रीति से रचना की। शंभुनाथ मिश्र ने नायिका-भेद-विषयक कविता की। भगवंतराय खीची कवियों के कल्पवृक्ष एवं स्वय सुकवि थे। शिवसहाय दास ने पखाने लिखे हैं। पखाने-शब्द उपाख्यान का अपभ्रंश है। ऐसी कविता में लोकोक्तियाँ कही जाती हैं। इनके साथ दास का समय समाप्त होता है। अवश्य ही इसमें नवरत्नोंवाला कोई कवि नहीं हुआ (यद्यपि यह स्मरण रखना चाहिए कि इसमें स्वयं देवजी बहुत काल तक कविता करते रहे थे), पर प्रथम श्रेणी के दो भारी कवि, तथा अन्य कईएक उत्कृष्ट लेखक थे । कुल मिलाकर यह समय समुज्ज्वल था। इस काल में आचार्य बहुत हुए और नायिका-भेद की प्रथा दृढ़तर हो गई, एवं शृंगार-कविता की ओर कवियों की प्रवृत्ति विशेषतया बढ़ी।

सूदन-काल

सूदन-काल (१८११–१८३०) में मुख्य कविगण के नाम ये हैं—बोधा, सहजोबाई, गणेश, मनबोध झा, अक्षर अनन्य, हंसराज, बैरीसाल, किशोर, पुखी, रतन, दत्त, नाथ, व्रजवासीदास, शिवनाथ द्विवेदी, मनीराम मिश्र, मनभावन और तीर्थराज। बोधा एक बड़ा ही प्रेमी कवि है और इसकी कविता बड़ी ही सरस एवं प्रेमपूर्ण है। ऐसी सूक्ष्म दृष्टि बहुत कम कवियों में पाई जाती है। बोधा ने भाव और भाषा दोनों का अच्छा चमत्कार दिखाया है और सब वर्णनों में प्रेम ही प्रधान रक्खा है। इनका कविता काल १८३० से प्रारंभ होता है। सूदन एक बहुत बढ़िया कथा-प्रासंगिक कवि है।

इन्होंने भरतपूर के महाराजकुमार सूरजमल का यश उत्कृष्ट कविता में गाया। इन्होंने व्रजभाषा में कविता की, परंतु अन्य कई भाषाओं का भी यत्र-तत्र व्यवहार किया। इनकी रचना परम गंभीर और ओजस्विनी है। इन्होंने १८१० के पीछे कविता की। देवीदत्त ने बैतालपच्चीसी बनाई। सहजोबाई (१८१९) ने भगवद्भक्ति अच्छी कही है। सुंदरि कुँवरि की भी कविता रसवती है। मनबोध झा (१८२०) विहार के एक अच्छे नाटककार थे। अक्षर अनन्य (१८२०) भारी धर्मप्रचारक हो गए हैं। बख़्शी हंसराज (१८२०) पन्नावाले ने 'सनेहसागर' में बड़ी सरस और लुभावनी कविता में कृष्णकथा कही। दैरीसाल (१८२५) अलंकारों के एक भारी आचार्य समझे जाते हैं। इन्होंने प्रायः दोहों में ही रचना की है, पर वह सर्वथा प्रशंसनीय है। किशोर (१८२५) ने नायिका-भेद और षट्-ऋतु की प्रशंसनीय कविता की। इनकी भाषा में मिलित वर्ण कम हैं और अनुप्रास का इन्होंने विशेष ध्यान रक्खा। रतन कवि (१८२६) अलंकारों के आचार्य हैं। इनका रचना-चमत्कार बहुत ऊँचे दरजे का है। व्रजवासीदास ने व्रजविलास-नामक परम प्रसिद्ध ग्रंथ बनाया। रामायण के बाद यही बहुत पढ़ा जाता है, यद्यपि इसकी कविता साधारण है। शिवनाथ ने नायिका-भेद वर्णन किया, जिसमें सानुप्रास कविता है। संवत् १८२८ से गोकुलनाथ, गोपीनाथ और मणिदेव महाभारत का प्रसिद्ध छंदोबद्ध उलथा करने लगे, जो संवत् १८८९ के लगभग समाप्त हुआ। यह बड़ा भारी ग्रंथ है और इससे भाषा-भंडार के कथा विभाग की बहुत अच्छी पूर्ति हुई है। यह ग्रंथ बड़ा ही रोचक है। इन तीनों कवियों ने अपनी रचना-शैली इसमें बिलकुल मिला दी है। ये कवि इस ग्रंथ के कारण बड़े धन्यवाद के योग्य हैं। गोकुलनाथ ने अन्य विषयों के भी कई सुंदर ग्रंथ बनाए हैं। मनीराम मिश्र (१८२९) पिंगल के बहुत बड़े आचार्य हैं।

इन्होंने सूत्रों की भाँति बहुत थोड़े छंदों में पिंगल का सारा विषय कह दिया। इनकी कविता सर्वतोभावेन प्रशंसनीय है। मनभावन और तीर्थराज भी साधारणतया अच्छे शृंगारी कवि थे। सूदन-काल के कवियों में नायिका-भेद पर कविता करने का विशेषतया चाव रहा। इस समय में बहुत ऊँचे दरजे के कवि अधिक नहीं हुए और दास-काल की यह समानता नहीं कर सकता, परंतु फिर भी अच्छे कवियों का इसमें अभाव न था।

रामचंद्र-काल

रामचंद्र-काल (१८३१-१८४५) में मुख्य कवियों के नाम ये हैं— चंदन, कलानिधि, विश्वनाथ, जनगोपाल, मंचित, मधुसूदनदास, नीलसखी, देवकीनंदन, मनियार, हृदयनिवास, महाराजा रामसिंह, भान, हठी, थान, बेनी और भौन। रामचंद्र पंडित (१८४०) का चरणचंद्रिका-नामक केवल एक ग्रंथ देखने में आया है, परंतु उसी में इन्होंने चकाचौंध कर देनेवाला पूरा चमत्कार दिखा दिया है। इसमें केवल ६२ छंदों द्वारा श्रीदेवीजी के चरणों का वर्णन बड़ी ही ओजस्विनी भाषा में किया गया है और उपमा-रूपकादि द्वारा कवि ने इसमें सैकड़ों विषयों का ज्ञान पूरी तरह प्रदर्शित कर दिया है। चरणों के छोटे-से विषय पर ऐसी रचना देखकर इस कवि की कवित्व-शक्ति की मुक्त कंठ से प्रशंसा करनी पड़ती है। चंदन (१८३०) ने बहुत-से उत्कृष्ट और रुचिकर ग्रंथ लिखे हैं। इनकी कविता सरस और मनोहर है। ये फ़ारसी के भी अच्छे कवि थे, जिसमें अपना नाम संदल रखते थे। एक बार शाह अवध ने इन्हें बुलाया, पर ये वहाँ जाने पर सहमत न होकर श्रीकाशीजी चले गए। जनगोपाल (१८३३) की भाषा और भावों में जो गंभीरता पाई जाती है, वह सिवा परमोत्तम कवियों के और कहीं नहीं देख पड़ती। मंचित बुँदेलखंडी (१८३६) ने कृष्णायन तथा सुरभी-दानलीला-नामक

दो परमोत्कृष्ट ग्रंथ रचे। कृष्णायन कृष्णखंड के आधार पर बढ़िया भाषा में रचा गया है और उसकी रचना कथा-प्रासंगिक ग्रंथों में तुलसी-कृत रामायण के ढंग पर की गई है। उत्तमता में भी वह दो-चार को छोड़ प्रायः सभी कथा-प्रासंगिक ग्रंथों से श्रेष्ठतर है। 'सुरभी-दानलीला' भी मनोहर भाषा में सरस ग्रंथ है। यह महाकवि लाल तथा सेनापति का समकक्ष है। मधुसूदनदास (१८३९) ने रामाश्वमेध-नामक एक भारी ग्रंथ दोहा-चौपाइयों में बनाया, जो भक्ति-भाव से पूर्ण तथा सुपाठ्य है। नीलसखी की वाणी (१८४०) बड़ी ही सरस और भाव-पूर्ण है। देवकीनंदन (१८४१) ने नायिका-भेद तथा अलंकारों का गंभीर एवं कठिन वर्णन किया। इनकी रचना प्रशंसनीय है। इन्होंने कुछ-कुछ कूट-कविता भी की। मनियारसिंह और कृपानिवास ने भी चामत्कारिक रचना की है। हठी (१८४७) ने बड़ी ही सरस और मधुर कविता रची। थान (१८४८) इस समय का बड़ा ही उत्कृष्ट कवि हो गया। यह चंदन कवि का भांजा था। इसकी रचना में भाषा तथा भावों का बहुत अच्छा चमत्कार देख पड़ता है। इन्होंने अपनी कविता में काव्यांगों के लाने का पूर्ण प्रयत्न किया। इनके ग्रंथ में जो काव्यांग जहाँ पर आ गया है उसका लक्षण भी उसी जगह लिख दिया गया है। इनकी रचना में अच्छे छंद बहुतायत से पाए जाते हैं। बेनी बंदीजन (१८४९) ने कई ग्रंथ बनाए। इनके भँड़ौआ बड़े ही उद्दंड तथा भाव-पूर्ण होते थे। वह संख्या में भी अधिक हैं। कविता भी यह अच्छी करते थे। मौन ब्रह्मभट्ट (१८५१) की भी कविता रस-पूर्ण होती थी। कृष्णदास ने (१८५३) माधुर्यलहरी-नामक एक प्रशंसनीय ग्रंथ बनाया, जिसमें उत्कृष्ट कविता में कृष्ण-कथा कही गई है। इस समय में चंदन, मंचित, सीतल, रामचंद्र और थान भारी कवि थे तथा और भी उत्कृष्ट कवि

वर्तमान थे। यह छोटा-सा समय भाषा-साहित्य के लिये बड़े ही गौरव का था।

बेनी प्रवीन-काल

बेनी-प्रवीन-काल (१८५६ से १८७५) के प्रधान कवियों में राजा जसवंतसिंह तेरवा, गणेश, क्षेमकरण, भंजन, करण, सून, लल्लूलाल, सदल मिश्र, गुरदीन पाँड़े, सुवंश शुक्ल, महाराजा मानसिंह, महाराजा सुंदरसिंह, ललकदास, सागर, खुमान, धनीराम और महाराजा जैसिंह का नाम लिया जा सकता है।

बेनी प्रवीन (१८७४) लखनऊ-निवासी रामभद्र के वाजपेयी थे। इनकी रचना बड़ी सरस और सुहावनी है और भाषा में मिलित वर्ण बहुत कम आने पाए हैं। प्राकृतिक वर्णन भी इन्होंने अच्छे किए। इनकी रचना विशेषतया शृंगार-पूर्ण है। राजा जसवंत-सिंह तेरवा-नरेश (१८५५) ने नायिका-भेद का अच्छा ग्रंथ बनाया। गणेश (१८५७) ने वाल्मीकीय रामायण के कुछ अंशों का अनुवाद किया। करण की कविता में काव्य-सामग्री प्रचुरता से मिलती है। लल्लूलाल (१८६०) ने खड़ी बोली और ब्रजभाषा मिश्रित गद्य में कई ग्रंथ रचे और सदल मिश्र ने (१८६०) शुद्धतर खड़ी बोली में नासिकेतोपाख्यान की रचना की। वर्तमान गद्य-प्रणाली को इन्हीं दोनों ने परिमार्जित तथा वर्द्धित किया था। सुवंश शुक्ल (१८६२) के कई बढ़िया ग्रंथ हैं। ललकदास ने (१८७०) सत्योपाख्यान-नामक दोहा-चौपाइयों में रामकथा-विषयक एक सोहावना ग्रंथ रचा, जिसमें बालकांड की कथा बड़े विस्तार के साथ वर्णित है। सागर वाजपेयी (१८७०) ने रसमयी रचना की है। इनका कोई ग्रंथ नहीं मिला, परंतु संग्रहों में इनके बहुत-से मनोरंजक छंद देखे जाते हैं। धनीराम (१८७०) प्रसिद्ध कवि सेवक के पिता थे। इनकी रचना मनोहर है। जैसिंह महाराजा रीवाँ

(१८७३) ने कई अच्छे ग्रंथ बनाए। इस समय से गद्य-काव्य को कुछ विशेषता होने लगी। जिस प्रकार देव-काल से दास-काल की कविता उत्तमता में कुछ घटती-सी रही, उसी तरह उसके पीछे भी क्रमशः कवित्व-शक्ति का कुछ-कुछ ह्रास-सा होता चला आया है। यद्यपि गणना में कविजन विशेषता से विद्यमान रहे और उनमें यत्र-तत्र अच्छे कवि भी देख पड़ते हैं, तथापि अब कविता का वह पूर्ववाला मनोहर रूप नहीं दर्शित होता। रामचंद्र-काल इस कथन के बाहर है।

पद्माकर-काल

पद्माकर-काल (१८७६ से १८८९ तक) में वृंदावन, महराज, रामसहायदास, ग्वाल, चंद्रशेखर वाजपेयी, प्रेमसखी, प्रताप, श्रीधर, दीनदयालगिरि, महाराज बलवानसिंह, द्विज कवि, देवकीनंदन, गुरुदत्त शुक्ल और महंत युगुलानन्यशरण प्रधान कवि हुए हैं।

पद्माकर का कविता-काल बहुत समय से चला आता है, परंतु कालक्रमानुसार हमने पद्माकर को उनके अंतिम काल का नायक माना है। इस समय कई बड़े-बड़े कवि वर्तमान थे, परंतु पद्माकर की ख्याति सबसे अधिक थी। इन्होंने कई प्रकृष्ट ग्रंथ बनाए, जिनमें केवल "जगद्विनोद" शृंगार-रस का है, परंतु इनकी रचना में यही सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसमें रसभेद तथा भावभेद का विस्तृत वर्णन साफ़ उदाहरणों द्वारा किया गया है। इनकी गंगालहरी तथा प्रबोधपचासा भी अच्छे हैं। पद्माकर ने अपनी रचना में शब्द चमत्कार लाने का सबसे अधिक ध्यान रक्खा, परंतु भाव की ओर तादृश निगाह नहीं की। अँगरेज़ी के कवि सर वाल्टर स्काट से इनकी समानता की जा सकती है। इन दोनों कवियों ने बड़ी उड़ती हुई भाषाओं में रचनाएँ की हैं। संयोग-वश दोनों की मौत भी एक ही संवत् में हुई। पद्माकर ने शृंगार, वीर तथा भक्ति, इन तीनों विषयों पर मनोहर ग्रंथ रचे हैं। सर्वसाधारण भाषा-काव्य-प्रेमी इन्हें बड़े-बड़े कवियों का सम-

कक्ष समझते हैं। कविता के कारण पद्माकरजी का सदैव अच्छा सम्मान रहा और कविता ने इनको कामधेनु का फल दिया। ये उत्कृष्ट कवि थे।

वृंदावनजी (१८७५) जैन-कवियों में अच्छे माने गए हैं। रामसहाय ने (१८७७) दोहों में रामसतसई-नामक परमोत्तम शृंगार-ग्रंथ रचा। इस सरस कवि ने बिहारी के पैरों पर पैर रक्खे हैं और दो-तीन सौ दोहे तो ऐसे बढ़िया रचे हैं कि यदि वे बिहारी के दोहों में मिला दिए जायँ, तो बिहारी के दोहे याद न रखनेवाला उन्हें शायद पृथक् न कर सके। इनकी रचना बड़ी ही मधुर है। इन्होंने अन्य ग्रंथ भी बनाए हैं। ग्वाल (१८७९) ने बहुत-से बढ़िया ग्रंथों की रचना की, जो सरस, मधुर और प्रशंसनीय हैं। भाषा-चमत्कार पर इनका भी ध्यान विशेषतया रहता था। चंद्रशेखर वाजपेयी ने १८७७ से १९३२ पर्यंत काव्य-रचना की। इन्होंने शृंगार-रस के उत्तम छंद बनाए तथा हम्मीरहठ-नामक वीर-रस-प्रधान एक बहुत ही अनूठा एवं सबल ग्रंथ रचा। इनकी वीर-कविता में बल एवं उद्दंडता की मात्रा बहुत अधिक है। इन्होंने बड़ी सजीव तथा प्रथम श्रेणी की रचना की है। प्रतापसाहि (१८८२) की भाषा मतिराम की भाषा से बहुत मिल जाती है और उत्तम छंदों की संख्या भी इनकी सव्यंग्य-रचना में बहुत विशेष है। उसमें उद्दंडता भी पाई जाती है। ये काव्यांगों के एक अच्छे ज्ञाता थे। कुल मिलाकर प्रताप एक बड़ा ही प्रशंसनीय कवि है। बाबा दीन-दयालगिरि (१८८८) भी काशी के सुकवि थे। इन्होंने अन्योक्तियाँ अच्छी कही हैं। काशिराज महाराजा बलवानसिंह (१८८९) ने चित्र-काव्य बहुत ही प्रशंसनीय लिखा है। इनकी पुस्तक में सात-सात अर्थ तक के छंद हैं, परंतु भाषा उनकी तनिक भी बिगड़ने नहीं पाई है। द्विज कवि मन्नालाल ने अच्छा संग्रह तैयार किया और गुरुदत्त शुक्ल ने पक्षियों-संबंधी अन्योक्ति-रचना प्रशंसनीय

की । महंत युगुलानन्यशरण ने बहुत-से बड़े-बड़े तथा प्रशंसनीय ग्रंथ रचे । इनका श्रम सराहनीय तथा अनुकरणीय है ।

विचार

पद्माकर से कुछ पहले कवियों की लेखनी कुछ मंद-सी पड़ गई थी, परंतु इस छोटे १९ साल के समय में बहुत-से श्रेष्ठ कवियों ने कविता देवी को अपनी चमत्कृत रचना से अलंकृत किया जिसे देखकर आत्मा हर्षित तथा प्रफुल्लित हो जाती है ।

यह उत्तरालंकृत काल ऐसे समय आरंभ हुआ, जब हिंदी की पूर्ण उन्नति हो चुकी थी और वह अच्छे प्रकार से अलंकृत भी थी । इन कारणों से उसके अधिकतर उन्नत होने का विशेषतया मौक़ा नहीं था । फिर भी पद्माकर आदि कवियों ने उसके अधिकाधिक सुसज्जित करने का प्रयत्न नहीं छोड़ा, जिसका फल यह हुआ कि कवियों का ध्यान भाषा की ओर विशेषतया होने लगा और भाव की ओर कम । यह बात पूर्व-काल में नहीं हुई थी । इस उत्तर-काल में प्रथम श्रेणी के ठाकुर आदि दो ही तीन कवि हुए, परंतु अन्य ऊँची श्रेणियों में बहुत-से कवि थे । इसमें नायिका-भेद, नख-शिख, इत्यादि पर ग्रंथ लिखने की परिपाटी दृढ़ हो गई और आचार्यों की संख्या बहुत बढ़ी । उत्कृष्ट कवियों के होते हुए भी इस समय नवरत्न का एक भी कवि नहीं हुआ, सो अंतिम दोनों कालों की अपेक्षा यह समय कुछ फीका-सा जँचता है, यद्यपि नवरत्न और प्रथम श्रेणी को छोड़कर शेष श्रेणियों के कवि इसमें बहुत अधिकता से हुए । इस काल के आरंभ होने से थोड़े ही दिन पीछे भारत में कादरता का सिक्का जमा, अतः वीर-काव्य इस समय पूर्वालंकृत काल से कम हुआ और विविध विषयों के वर्णनों की परिपाटी ने भी समुचित उन्नति नहीं पाई । सारांश यह कि जो अलौकिक उन्नति पूर्वालंकृत काल में प्रारंभ हुई थी, वह उत्तर-काल में विशेषतया

घटी तो नहीं, परंतु आगे भी न बढ़ सकी। उत्तर-काल में भाषा-संबंधी एक यह उन्नति अवश्य हुई कि खड़ी बोली के पद्य और गद्य दोनों का मान बढ़ा। रघुनाथ ने खड़ी बोली पद्य का औरों की अपेक्षा कुछ विशेष व्यवहार किया। इसी प्रकार लल्लूजीलाल तथा सदल मिश्र से गद्य की प्रथा ने बल पाया। हमने लिखा है कि देव-काल (संवत् १८००) के पीछे हिंदी-साहित्य में कुछ अवनति-सी होने लगी। यह उत्तरालंकृत हिंदी के समय (संवत् १८८९) तक, बरन् अद्यावधि बढ़ती ही गई, क्योंकि इस बृहत् समय में नवरत्नों में केवल एक महानुभाव की गणना हो सकी और प्रथम कक्षा के भी बहुत कवि नहीं हुए। पर इससे कोई यह न समझ बैठे कि तुलनाजन्य भाव से न देखने पर भी हिंदी-काव्य में कोई वास्तविक हीनता आ गई। बात यह है कि जहाँ हमारे साहित्य-भंडार में मतलबवाली कलाओं का प्रायः अभाव-सा है, वहाँ निस्संदेह कोरी कविता में (जिसे प्रसिद्ध अँगरेज़ी-लेखक जॉन लाक ने ठीक ही pleasant air but barren soil, अर्थात् सुहावनी वायु परंतु ऊसरमय पृथ्वीवाली वस्तु कही है) हिंदी का सिर बहुत ऊँचा है। जैसे भारी और उत्तम महाकवि इसमें हो गए हैं, वैसे दूसरी भाषाओं में कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते। अतः हिंदी-साहित्य में जो दूसरी कक्षा के भी कवि (2nd rate poets) हैं, उनकी समतावाले साहित्य-सेवी अन्य भाषाओं में बहुत नहीं मिल सकते। इस निगाह से देखने पर यद्यपि संवत् १८०२ (अर्थात् सन् १७४५ न कि पूरी १८वीं ईसवी शताब्दी) से हिंदी-साहित्य तुलसी, सूर, देव और बिहारी-जैसे धुरंधर कवियों को नहीं उत्पन्न कर सका और इस विचार से कहा जा सकता है कि उस काल में दूसरी कक्षा के ही कवि (2nd rate poets) हुए हैं, तथापि निरानुषंगिक भाव से यह कदापि नहीं कह सकते कि वास्तव में अन्य भाषाओं

के सामने हिंदी का पद साहित्य-विभाग में इस समय दब गया। हम यह सब ममता-भाव से नहीं कहते, बरन् भली भाँति विचारने के पश्चात् हमारी यही सम्मति दृढ़ता-पूर्वक स्थिर होती है।

पाँचवाँ अध्याय

परिवर्तनकालिक हिंदी (१८८९ सं० से १९२५ तक)

अँगरेज़ी-राज्य का प्रभाव 'बेनी प्रवीन' के समय से हिंदी पर कुछ-कुछ पड़ने लगा था और प्रेस भी इसी समय से भारत में स्थापित होने लगे थे, जिनसे भाषा को बहुत लाभ पहुँचा और पहुँच रहा है। उक्त राज्य की सहगामिनी शांति भी उसी के साथ आने लगी। प्रेसों एवं शांति के प्रभाव उत्तरोत्तर उन्नति करते हुए इस परिवर्तन-काल में हिंदी के पूर्ण सहायक हुए। १९१४-१५वाला सिपाही-विद्रोह पठित समाज से कुछ भी वास्ता नहीं रखता था और न उसका लेश-मात्र प्रभाव हिंदी-साहित्य पर पड़ा।

परिवर्तन-काल को हम दो उपविभागों में विभक्त करेंगे, अर्थात् द्विजदेव-काल १८८९ से १९१५ तक, और दयानंद-काल १९१६ से १९२५ तक।

महाराजा मानसिंह द्विजदेव-काल

इस काल (१८८९ से १९२५ तक) में स्वयं द्विजदेव के अतिरिक्त ललितकिशोरीजी, उमादास, जीवनलाल नागर, निहाल, देवकाष्ठजिह्वा, नवीन, कृष्णानंद व्यास, गणेशप्रसाद फ़र्रुख़ाबादी, माधव, क़ासिमशाह, गिरिधरदास, पजनेस, सेवक, महाराजा रघुराजसिंह, शंभुनाथ मिश्र, सरदार, बलदेवसिंह, पंडित प्रवीन, अनीस, राजा शिवप्रसाद, गुलाबसिंह, बाबा रघुनाथदासरामसनेही और लेखराज प्रधान कवि और लेखक थे।

ललितकिशोरीजी का रचना-काल संवत् १९१३ से आरंभ होता है। इन्होंने प्राचीन प्रथा की कविता सौर-काल के समान भक्ति-पूर्ण पदों में की, जो सर्वथा प्रशंसनीय है। इसका विषय भी प्राचीन काल की भाँति कृष्ण-भक्ति-सहित शृंगारात्मक है। ये महाशय लखनऊवाले प्रसिद्ध साहजी के घराने के थे और इनका नाम साह कुंदनलाल था। भक्ति-भाव के कारण ये श्रीवृंदावन में रहने लगे थे, जहाँ इन्होंने एक बड़ा ही बढ़िया पच्चीकारी का मंदिर बनाया। इनके भाई ललितमाधुरीजी कविता तथा मंदिर-निर्माण में इनके साझी थे।

उमादास और जीवनलाल नागर ने बहुत-से ग्रंथ रचे। देवकाष्ठजिह्वा (१८९७) की कविता भक्ति-भाव से पूर्ण होती थी। नवीन (१८९९) की रचना अनुप्रासों एवं अन्य ढंगों में पद्माकर से मिलती है और उत्तमता में भी उसी के समान है। कृष्णानंद व्यास (१९००) ने रागसागरोद्भव रागकल्पद्रुम-नामक पदों का भारी संग्रह बनाकर मुद्रित कराया। इसमें व्रजमंडल तथा अन्य स्थानों के २०९ भक्तों की कविता संगृहीत है। गणेश-प्रसाद फ़र्रुख़ाबादी ने १९०० से १९३० पर्यंत कविता की। इसने खड़ी बोली में अनेकानेक विषय बहुत ही रोचकता तथा उत्तमता-पूर्वक वर्णित किए। इसकी भाषा बहुत ही अच्छी और कविता भाव-पूर्ण है। सर्वसाधारण ने इस कविरत्न की रचना को बहुत पसंद किया और वह वास्तव में प्रशंसा योग्य है। गान-मंडलियों में इसकी कविता ख़ूब प्रचलित है। माधव (१९००) ने पद्मपुराण के आधार पर आदि-रामायण-नामक एक बहुत बड़ा ग्रंथ सुपाठ्य भाषा में रचा। क़ासिमशाह ने हंसजवाहिर-नामक एक भारी प्रेम-कहानी जायसी की भाँति उन्हीं की भाषा में कही। यह जायसी की रचना से न्यून है। गिरिधरदास (१९००) भारतेंदुजी के पिता थे। इन्होंने ४० ग्रंथ

छोटे-बड़े बनाए, जिनमें एक नहुष नाटक भी है। इनका जरासंध-वध प्रशंसनीय है। पजनेस (१९००) पन्ना-निवासी ने बहुत अच्छी और लोकप्रिय कविता की। इनकी भाषा बड़ी सबल, तथा भाव बहुत ऊँचे होते हैं। थोड़े ही छंदों में इन्होंने भाषा-रसिकों पर मोहिनी-सी डाल रक्खी है। सेवक (१९००) वंदीजन एक प्रसिद्ध कवि थे। भाषा-प्रेमियों ने इनकी कविता पसंद की है। रीवाँ-नरेश महाराजा रघुराजसिंहजू ने अनेक उपकारी ग्रंथ बनाए, जिनमें विविध कथा-प्रासंगिक विषयों के सुहावने वर्णन हैं। शंभुनाथ मिश्र (१९०१) ने शिवपुराण चतुर्थ खंड का भाषानुवाद किया। ये कथा-प्रासंगिक कवियों में बहुत अच्छे हैं। सरदार (१९०२) ने कई परमोत्तम टीकाएँ गद्य में लिखीं और कितने ही परम प्रशंसनीय पद्य-ग्रंथ भी रचे। इनकी रचना में एक अनूठा स्वाद है। महाराजा मानसिंह द्विजदेव (१९०६) वर्तमान समय के सत्कवियों में हैं। आपने बहुत-से टकसाली छंद कहे हैं, जो बड़े-बड़े कवियों की रचनाओं से मिलते हैं। कविता में आपका स्थान ऊँचा है। आप अयोध्या-नरेश थे। राजा शिवप्रसाद सितारे-हिंद ने शिक्षा-विभाग के लिये बहुत-से ग्रंथ खड़ी बोली गद्य में रचे और हिंदी का बहुत बड़ा पक्ष सरकार में लिया। आप उर्दू-फ़ारसी-मिश्रित खिचड़ी भाषा के पक्षपाती थे। कविराव गुलाबसिंह बूँदी के एक भारी कवि थे। इनका देहांत अभी हाल ही में हुआ। बाबा रघुनाथदास ने साधारण भाषा में विश्राम-सागर-नामक कथा-प्रसंग का ग्रंथ निर्माण किया। लेखराज गँधौली ज़िला सीतापूर के एक अच्छे कवि थे। आपने गंगाभरण आदि कई ग्रंथ सानुप्रास भाषा में बड़े ही भाव-पूर्ण बनाए।

इस समय में लेखराज एवं ललितकिशोरीजी को छोड़कर प्रथम और द्वितीय श्रेणी का कोई भी कवि न था, परंतु तृतीय श्रेणी के आठ-नव अच्छे कवि थे। पद्माकर-काल की अपेक्षा यह समय उत्तमता

की दृष्टि से न्यून था, तो भी अच्छे कवि इस समय में भी बहुत थे। राजा शिवप्रसाद के साथ गद्य-विभाग ने कुछ उन्नति प्रारंभ की। अनुप्रास का सिक्का अब भाषा-काव्य पर पूर्ण रूप से जम गया था और कविगण भाव पर उतना ध्यान नहीं देते थे जितना कि भाषा पर।

दयानंद-काल

स्वामी दयानंद के समय (१६१६—१६२९) में राजा लक्ष्मण-सिंह, शंकर दरियाबादी, गदाधर भट्ट, फेरन, मुरारिदान, औध, लछिराम, बलदेव व लखनेस अच्छे कवि थे। स्वामीजी ने आर्य-समाज स्थापित करके हिंदू-धर्म में अपने विचारों के अनुसार संशोधन किया। इन्होंने गंभीर गवेषणा-पूर्ण कई उत्तम धार्मिक ग्रंथ खड़ी बोली गद्य में लिखे और अपने समाज का यह एक मुख्य नियम कर दिया कि प्रत्येक सदस्य हिंदी की सहायता करे। स्वामीजी द्वारा हिंदी का भारी उपकार हुआ है। राजा लक्ष्मणसिंह ने ब्रजभाषा पद्य और खड़ी बोली गद्य के अनुवाद-ग्रंथ रचे। इन्होंने खिचड़ी हिंदी को हटाकर विशुद्ध खड़ी बोली का मान बढ़ाया। शंकर ने प्राचीन प्रथा की अच्छी कविता की। गदाधर भट्ट पद्माकर के पौत्र और बढ़िया कवि थे। इनके भाव मनोहर एवं भाषा मधुर है। औधजी इस समय के उत्कृष्ट कवि हुए हैं तथा लछिराम एवं द्विज बलदेव भी प्रशंसित और विख्यात कवि हैं। लखनेस ने कृष्णचरित्र अच्छा कहा। डॉ० रुडाल्फ़ हार्नली ने गौड़ भाषाओं का व्याकरण अँगरेज़ी में लिखकर हिंदी का भी उपकार किया है।

विचार

इस परिवर्तन-काल में प्राचीन प्रथा के बहुत-से कवि हुए, परंतु नवीन प्रणाली की भी जड़ पड़ने लगी और गद्य-विभाग का बल बढ़ने लगा। गद्य में अब ब्रजभाषा का चलन बिलकुल उठ गया और खड़ी बोली का प्रचार बढ़ा। लल्लूजीलाल ने शिक्षा-विभाग के

लिये ग्रंथ लिखे थे, सो यद्यपि इन्होंने खड़ी बोली का प्रयोग किया, तथापि सनातन प्रथा का प्रभाव इनकी भाषा में व्रजभाषा के मेल से देख पड़ता है। यह प्रभाव परिवर्तनकालिक गद्य से पूर्णतया उठ गया। कुछ दिन खिचड़ी भाषा के व्यवहार का प्रश्न हिंदी में रहा, जिसका तात्पर्य यह है कि उन्नत श्रेणी की हिंदी एकदम लोप होकर केवल उर्दू-मिश्रित साधारण बोलचाल की भाषा रह जाय। विद्वानों और अपढ़ों की बोली में सदा ही सभी देशों में अंतर रहता है, सो हम लोगों को यह कैसे पसंद हो सकता है कि हमारे पढ़े-लिखे लोग भी तुलसी, देव और बिहारी की रचनाओं को समझें ही नहीं? भाषा सुगम अवश्य होनी चाहिए और बोलचाल में प्रचलित विदेशी एवं अन्य भाषाओं के शब्द उसमें ज़रूर रखने चाहिए, पर यह कदापि नहीं हो सकता कि हिंदी में साधु भाषा को एकदम तिलांजलि दे दी जाय। क्या यह संभव है कि विशुद्ध साधु अँगरेज़ी भाषा को छोड़कर अँगरेज़ लोग अपने देश में असाधु भाषा (Colloquialism) की ही प्रचार रक्खें और उसी में नामी ग्रंथ, सामयिक पत्रादि लिखे जायँ? इन्हीं कारणों से खिचड़ी हिंदी न चल सकी, एवं हाल में ही संयुक्त-प्रांत के शिक्षा-विभाग का भी ऐसा ही प्रयत्न सफल न हो सका।

अब तक हमारी भाषा में रोचक, किंतु अनुपयोगी विषयों की विशेषता रही थी, परंतु अब अँगरेज़ी राज्य के साथ संसारी लाभ-दायक बातों की ओर लोगों की प्रवृत्ति होने लगी। वास्तव में हम लोगों को इसी की अत्यंत आवश्यकता भी थी, सो अँगरेज़ी राज्य ने इस भाँति हमारा बड़ा उपकार किया है, जिसे हम लोगों को कभी न भूलना चाहिए। हिंदी-भाषा पर भी इस परिवर्तन-काल का अच्छा प्रभाव पड़ा और उपयोगी विषयों पर रचनाएँ होने लगीं। इसी के साथ कहना ही पड़ता है कि संसारीपने की वृद्धि के साथ

कविता और कवित्व-शक्ति का ह्रास होने लगा और गद्य-काल आता हुआ देख पड़ा।

छठा अध्याय

वर्तमान हिंदी (१९२६ से)

अब प्रेस का प्रभाव और भी बढ़ा और उत्तमोत्तम हिंदी-ग्रंथ प्रकाशित होकर भाषा का उपकार करने लगे। इधर जीवन-होड़-वृद्धि, जाति-प्रेम और शिल्पोन्नति के कारण विविध विषयों पर पुस्तकें लिखने की प्रथा ने भी ख़ूब ही ज़ोर बाँधा और उपयोगी विषयों की ओर लोगों की प्रवृत्ति हुई। इस काल को हम दो उपविभागों में बाँटेंगे, अर्थात् भारतेंदु-काल (१९२६—४९) और गद्य-काल (१९४६ से अब तक)। इससे यह न समझना चाहिए कि अब पद्य लिखने की प्रथा ही उठ गई, वरन् यह कि इस काल में गद्य की प्रधानता हुई है।

भारतेंदु-काल

भारतेंदु-काल (१९२६—४९) में बालकृष्ण भट्ट, बालदत्त मिश्र पूर्ण, नवीनचंद्र राय, तोताराम, देवीप्रसाद मुंशी, जगमोहन-सिंह, गदाधरसिंह बाबू, श्रीनिवासदास, रामपालसिंह राजा, गोविंद-गिल्ला भाई, रसिकेश, महारानी वृषभानुकुँवरि, ललित, सहजराम, जीवन, शिवकवि, हनुमान, नंदराम, गौरीदत्त, मोहनलाल-विष्णु-लाल पंड्या, राधाचरण गोस्वामी, जगदीशलाल गोस्वामी, कार्त्तिक-प्रसाद, केशवराम, गोविंदकवि, अयोध्याप्रसाद खत्री, शिवसिंह सेंगर, भीमसेन, बलदेवदास, गोविंदनारायण मिश्र, फ्रेडरिक पिंकाट, अंबिकादत्त व्यास, बदरीनारायण चौधरी, भुवनेश, ग्रियर्सन, नाथूराम शंकर, चंडीदान, दुर्गाप्रसाद मिश्र, नकछेदी तेवारी, राम-

कृष्ण, लालबिहारी मिश्र, सुधाकर द्विवेदी, महेश, प्रतापनारायण मिश्र, भानु, शिवनंदनसहाय, उमादत्त, रामनाथ, सीताराम लाला, दीनदयालु शर्मा, महावीरप्रसाद द्विवेदी, ज्वालाप्रसाद मिश्र, मदनमोहन मालवीय, श्रीधर पाठक, युगुलकिशोर मिश्र, विशाल और गौरीशंकर-हीराचंद ओझा इत्यादि अनेक उत्कृष्ट गद्य और पद्य-लेखक हुए और उनमें से बहुत-से वर्तमान हैं। ऐसे महाशयों की गणना इस उपविभाग में इसी कारण से हुई है कि इनकी रचनाओं का समय संवत् १९४६ के पहले से प्रारंभ हो जाता है। इसी नियमानुसार हमने इस इतिहास में सभी ठौर कवियों के स्थान नियत किए हैं। इस बीस वर्ष के बीच से ही गद्य का ज़ोर बढ़ने लगा था, तो भी पद्य-लेखकों की कमी न थी और कवि भी कई अच्छे-अच्छे हुए।

हरिश्चंद्र

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने संवत् १९४१ पर्यंत प्रायः १८ वर्ष तक हिंदी में जैसा चमत्कार दिखलाया, वैसा हम लोगों को प्रायः सवा सौ वर्षों से देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। देवजी की मृत्यु के प्रायः १०० वर्ष पीछे विद्यापीठ काशीपुरी में इनका जन्म १९०७ में हुआ था। इनका कविता-काल १९२३ से प्रारंभ हो जाता है। इस सवा सौ वर्ष के बीच में भाषा में अनेक परमोत्कृष्ट कवि हुए, पर नवरत्नों में परिगणित हो सकने का सौभाग्य किसी को भी प्राप्त न हो सका। हमारे भारतेंदुजी ने केवल ३४ वर्ष की अवस्था पाकर भी ऐसा अलौकिक चमत्कार दिखलाया कि इनके गुणों से सभी लोग मुग्ध हो गए और सबोंने मिलकर इन्हें भारतेंदु की उपाधि से विभूषित किया। पद्य में भी इन्होंने बहुत ही विशद कविता की, पर गद्य के ये सबसे बड़े पोषक और उन्नायक हो गए हैं। वर्तमान गद्य का इन्हें जन्मदाता कहना

चाहिए। इनकी गद्य एवं पद्यवाली सभी रचनाओं में माधुर्य कूट-कूटकर भरा है और इनमें प्रेम एवं जातीयता की मात्रा वास्तव में प्रगाढ़ थी। यों तो पहले भी विद्यापति ठाकुर के ही समय से नाटक लिखने की रीति पड़ चुकी थी और कई मैथिल एवं अन्य लेखकों ने उसका अनुसरण भी समय-समय पर किया था पर हिंदी-नाटक के वास्तविक प्रथम लेखक इन्हीं को मानना चाहिए, क्योंकि इन्होंने प्रायः १६ नाटक-ग्रंथ लिखे, जो अत्यंत सुंदर और प्रशंसनीय हैं। इन्हीं के प्रभाव से वर्तमान हिंदी की इतनी उन्नति हुई है। इन्होंने प्राचीन और नवीन दोनों ही प्रथाओं की कविता उत्तमता के साथ की और कुल मिलाकर १७५ छोटे-बड़े ग्रंथ बनाए।

अन्य लेखक

बालकृष्ण भट्ट ने २४-२५ वर्ष तक प्रसिद्ध सामयिक पत्र हिंदी-प्रदीप का संपादन किया। हिंदी के ये बड़े ही प्राचीन और मान्य लेखक थे। नवीन बाबू ने सामाजिक सुधार पर ज़ोर दिया। तोताराम ने एक नाटक रचा और वाल्मीकीय रामायण के कई कांडों का साधारण पद्यमय अनुवाद किया। मुंशी देवीप्रसाद द्वारा इतिहास-संबंधी सामग्री हिंदी में एकत्रित हुई और जगमोहनसिंह ने अनेक लोकोपकारी ग्रंथ निर्माण किए। श्रीनिवासदास नाटककार थे। राजा रामपालसिंह ने मरते दम तक हानि सहकर हिंदुस्थान दैनिक पत्र चलाया। गोविंदगिल्ला भाई प्राचीन प्रथा के अच्छे कवि हैं। रसिकेशजी रियासत पन्ना के दीवान थे और पीछे से बैरागी होकर अयोध्याजी में महंत हो गए। इन्होंने २६ प्रशस्त ग्रंथ निर्माण किए। महारानी वृषभानुकुँवरि (ओड़छा) ने पदों में प्राचीन प्रथा की भक्तिमयी कविता की। ललित ने चटकीले छंद-ग्रंथ रचे और सहजराम ने तुलसीदासजी के ढंग पर प्रह्लाद-चरित्र और रामायण बनाई, जिसके तीन कांड हमारे पास हैं।

हनुमान कवि मणिदेव के पुत्र थे। ये कविता अच्छी बनाते थे। गौरीदत्तजी का हिंदी-प्रेम एवं उत्साह प्रशंसनीय था। इन्होंने भी एक कोष बनाया। पंड्याजी ने रासो आदि प्राचीन विषयों पर अच्छा श्रम किया। अयोध्याप्रसाद खत्री का खड़ी बोली पद्य की ओर सराहनीय श्रम था।

शिवसिंह सेंगर

शिवसिंह सेंगर ने हिंदी-कविता का पहला इतिहास-संबंधी ग्रंथ लिखकर जो उपकार किया, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। इनके पहले हिंदी-इतिहास का कहीं पता तक न था पर इस महापुरुष ने बड़े श्रम और खोज से प्रायः एक हज़ार कवियों का विधिवत् पता लगाकर उनके जीवन-चरित्र, कविता-काल और उदाहरण दिए हैं। अवश्य ही इनके दिए हुए सन्-संवतों में कुछ गड़बड़ हो गया है और उनमें कई स्थानों पर अशुद्धता आ गई है एवं और भी भ्रम के उदाहरण यत्र-तत्र पाए जाते हैं, पर किस ओर प्रथम श्रम करने में ऐसा होना स्वाभाविक ही है। कुल मिलाकर शिवसिंहजी का ग्रंथ अत्यंत सराहनीय हुआ है। डॉक्टर ग्रियर्सन ने अपने Modern Vernacular Literature of Hindustan में प्रायः इन्हीं का अनुवाद-सा कर दिया, अथवा इनके आधार पर ही अधिकांश में लिखा है। अपनी ओर से डॉक्टर साहब ने अधिक नहीं लिखा है, पर उनका भाग्य कुछ ऐसा है कि ठाकुर साहब के यश को कई अंशों में उन्होंने अपना लिया है। हमारी समझ में शिवसिंहजी का हवाला न देकर ग्रियर्सन का नाम ले-लेकर चिल्लाना एक प्रकार की भूल है। मूल-ग्रंथ लिखनेवाले को पीछे छोड़कर उसके अनुयायी-मात्र की ओर दौड़ना अनुचित है। तात्पर्य यह कि शिवसिंहसरोज हिंदी में एक अभूतपूर्व ग्रंथ-रत्न है। ठाकुर साहब ने कुछ कविता भी की है।

अन्य लेखक

फ्रेडरिक पिंकाट एक ऐसे अँगरेज़ हो गए हैं कि जिन्होंने हिंदी-प्रेम के साथ हिंदी-भाषा में ग्रंथ तक लिखे हैं। अन्य अँगरेज़ हिंदी-प्रेमीगण प्रायः अँगरेज़ी में ही उसके विषय में लिखा-पढ़ी करते हैं। व्यासजी ने कईएक गद्य और पद्यमय ग्रंथ विद्वत्ता-पूर्ण लिखे और बदरीनारायण चौधरी ने कई ग्रंथ बनाए एवं सामयिक पत्र संपादित किए। यह भी पुराने नामी लेखकों में से थे। ग्रियर्सन महोदय हिंदी के परम प्रसिद्ध प्राचीन प्रेमी हैं। आपने अँगरेज़ी में हिंदी-साहित्य का अच्छा इतिहास-ग्रंथ बनाया है और भारतीय लिंग्विस्टिक सर्वे में अपने पांडित्य और हिंदी-प्रेम का परिचय दिया है। आपका श्रम सराहनीय है। नाथूराम शंकर ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली के सुकवि हैं। दुर्गाप्रसाद मिश्र एक अच्छे लेखक और पत्र-संपादक थे। नकछेदी तेवारी ने भी बहुत करके सरोज के आधार पर कवियों की एक सूची रची। लालबिहारी मिश्र ने कई अच्छे पद्यात्मक सानुप्रास ग्रंथ रचे। सुधाकरजी ने संस्कृत के विद्वान् होकर भी हिंदी पर श्रम किया। प्रतापनारायण मिश्र एक बड़े चटकीले गद्य और पद्य-लेखक थे। आपका ब्राह्मण-पत्र बड़ा मनोरंजक था। जगन्नाथप्रसाद भानु एक लेखक और विद्वान् हैं। शिवनंदनसहाय ने कई उपकारी गद्य और पद्य-ग्रंथ नाटक तथा जीवनियाँ लिखी हैं। सीताराम ने अनेक अनुवाद तथा अन्य ग्रंथ रचे हैं। दीनदयाल शर्मा महामंडल के सर्वोत्कृष्ट व्याख्यानदाता हैं। आपकी जिह्वा में बड़ा बल है। महावीरप्रसाद द्विवेदी एक भारी लेखक हैं। आपने कई उपयोगी ग्रंथों के गद्य में अनुवाद रचे हैं और हिंदी-हित में आप सदैव बद्ध-परिकर रहे हैं। कई साल तक सरस्वती का आपने सफलता-पूर्वक संपादन किया है। ज्वालाप्रसाद मिश्र ने कई गवेषणा-पूर्ण ग्रंथ रचे। आप

महामंडल के अच्छे व्याख्यानदाता और बड़े विद्वान् थे। मदनमोहन मालवीय ने हिंदुस्थान का संपादन कुछ वर्ष किया। आप भारत के एक अनमोल रत्न हैं और बड़े-बड़े कार्यों में लगे रहने पर भी हिंदी-हित पर सदैव ध्यान रखते हैं। युगुलकिशोर मिश्र अपने समय में हिंदी-साहित्य-विषय के प्रायः सर्वोत्कृष्ट ज्ञाता और सुकवि थे। गोपालराम उपन्यासकार हैं और गौरीशंकर ओझा प्रसिद्ध पुरातत्त्व-वेत्ता और इतिहासज्ञ हैं। श्रीधर पाठक ने खड़ी बोली की कविता पर विशेष ध्यान दिया। आप व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में प्रशंसनीय पद्य-रचना करते हैं। आपने पद्यात्मक अनुवाद सराहनीय किए और गद्य भी अच्छा लिखा है। विशाल ने हास्य-रस के मनोहर छंद रचे। रामराव चिंचोलकर और माधवराव सप्रे ने कुछ दिन छत्तीसगढ़-मित्र का संपादन किया।

विचार

इस भारतेंदुवाले समय में गद्य और पद्यलेखक गणना और उत्तमता में प्रायः समान थे, परंतु भारतेंदुजी को छोड़कर कोई भारी कवि नहीं हुआ। इस समय गद्य का बल दिनोदिन बढ़ता गया और अंत में उसका पूरा गौरव हो गया। पद्य-कविता की कला भारतेंदु के अतिरिक्त दिनोदिन मंद पड़ती गई और गद्य शनैः-शनैः ख़ूब परिपक्व हो गया तथा सैकड़ों उपयोगी विषयों पर उत्तम-उत्तम गद्य-ग्रंथ बने। समाचार एवं सामयिक पत्र-पत्रिकाओं की इस समय बहुत संतोषदायिनी उन्नति हुई और सभी प्रकार से उपकारी विषय हिंदी में लाने का लेखकों ने प्रयत्न किया। अन्य भाषाओं से अनुवाद इस समय हिंदी में बहुतायत से हुए, जिससे विविध विषयों का हिंदी-भंडार इस छोटे-से काल में बहुत भरा।

गद्य-काल

गद्य-काल (१८४६ से अब तक) में प्रधान लेखक और कवि

भगवानदीन मिश्र, शरच्चंद्र सोम, देवीप्रसाद पूर्ण, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, राधाकृष्णदास, बलदेवप्रसाद मिश्र, देवकीनंदन खत्री, बालमुकुंद गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, किशोरीलाल गोस्वामी, साधुशरण-प्रसाद, गदाधरसिंह ठाकुर, मुरारिदान, चंद्रकला बाई, सुजान, मथुरा-प्रसाद मिश्र, द्विज गंग, व्रजनंदनसहाय, वचनेश, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, गंगानाथ झा, रामजीलाल शर्मा, हरिपालसिंह क्षत्रिय, भगवानदीन, अक्षयवट मिश्र, गदाधर, श्यामसुंदरदास, वियोगी हरि, लोचनप्रसाद पांडेय, मन्नन द्विवेदी, जानकीप्रसाद द्विवेदी, माधवराव सप्रे, रघुनाथ-प्रसाद, पद्मसिंह शर्मा, देवीप्रसाद शुक्ल, बाबूराव पराड़कर, अंबिका-प्रसाद वाजपेयी, श्रीप्रकाश, शिवप्रसाद गुप्त, रूपनारायण पांडेय, भुवनेश्वर मिश्र, मैथिलीशरण गुप्त, गणेशशंकर विद्यार्थी, माणिक्यचंद्र जैन, मयाशंकर, जीवनशंकर, कृष्णकांत, भवानीशंकर, पदुमलाल-पुन्नालाल बख़्शी, देवीदत्त शुक्ल, सुदर्शनाचार्य, उमा नेहरू, रामेश्वरी, गोपालदेवी, लक्ष्मणनारायण गर्दे, प्रेमचंद, जगद्बिहारी सेठ, दयाशंकर दुबे, जैन वैद्य, महेशचरणसिंह, सत्यदेव, रामचंद्र शुक्ल, बदरीनाथ भट्ट, चंद्रमनोहर मिश्र, रामचंद्र वर्मा, कृष्णबिहारी मिश्र, सनेही, दुलारेलाल भार्गव, शिवपूजनसहाय, ईश्वरीप्रसाद मिश्र, कृष्णदत्त पालीवाल, व्रजरत्नदास, जयशंकर प्रसाद, रामशंकर त्रिपाठी, चंद्रमौलि शुक्ल, गुलाब, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, उग्र, निराला आदि हैं, जिनमें कुछ का स्वर्गवास हो गया है और कुछ वर्तमान हैं।

शरच्चंद्र सोम ने महाभारत का गद्यानुवाद लिखकर बड़ा उपकार किया है और पूर्णजी वर्तमान समय के वास्तव में सत् कवि थे। राधाकृष्णदास गद्य और पद्य के अच्छे लेखक एवं हिंदी के उन्नायक थे। बलदेवप्रसाद मिश्र ने अनेकानेक उपयोगी ग्रंथों का अनुवाद हिंदी में किया और देवकीनंदन खत्री ने हमारे उपन्यास-विभाग को ख़ूब ही उन्नति दी। इनके लेखों में यदि

असंभव कथन न होते, तो बहुत अच्छा था। बालमुकुंद गुप्त ने ज़ोरदार एवं हास्य-रसपूर्ण लेखों द्वारा हिंदी को सुशोभित किया। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने कई प्रकार की भाषा लिखने में अच्छी सफलता पाई है। ठाकुर गदाधरसिंह का स्वतंत्रतायुक्त अनूठापन, मुरारिदान की आचार्यता और मथुराप्रसाद के कथा-प्रासंगिक वर्णन भी दर्शनीय हैं। व्रजनंदनप्रसाद ने विविध विषयों के अनेकानेक प्रशस्त ग्रंथ लिखकर गद्य-काव्य का भंडार ख़ूब भरा है, एवं नाटक की ओर भी ध्यान दिया है। गंगाप्रसाद अग्निहोत्री ने अन्य भाषाओं के कई उत्तम ग्रंथों के अनुवाद विशुद्ध हिंदी में किए हैं। श्यामसुंदरदास हिंदी के उपकारी और एक बड़े ही श्रमशील लेखक हैं। इनके परि-श्रम से भाषा का अच्छा उपकार हुआ है और यह उसका एक बृहत् कोष संपादित कर रहे हैं। मन्नन द्विवेदी सुलेखक थे। मैथिलीशरण गुप्त खड़ी बोली के एक प्रसिद्ध कवि हैं। लोचनप्रसाद देशोपकारी लेख अच्छे लिखते हैं। जैन वैद्य, और माणिक्यचंद्र जैन का हिंदी-उत्साह अत्यंत सराहनीय था। प्यारेलाल मिश्र, काशीप्रसाद जैसवाल, सत्य-देव और महेशचरणसिंह द्वारा बाहरी बातों का ज्ञान हिंदी-रसिकों को हुआ और होने की आशा है। इस समय में समाचार-पत्रों की भी अच्छी उन्नति हुई और माधुरी, सरस्वती, मर्यादा*, स्त्री-दर्पण, भारत-मित्र, बंगवासी, चित्रमयजगत्, आज, वर्तमान, स्वतंत्र, विश्वमित्र, हिंदू-संसार, सूर्य, गृहलक्ष्मी, बालसखा, मतवाला, वेंकटेश्वर-समाचार, अभ्युदय, प्रताप, मनोरमा, साहित्य-समालोचक इत्यादि अनेक पत्रि-काएँ और पत्र हिंदी की शोभा बढ़ा रहे हैं। कई एक सभाएँ भी स्थापित हो चुकी हैं, जिनमें काशी-नागरीप्रचारिणी सभा और हिंदी-साहित्य-सम्मेलन प्रधान हैं। आरा एवं प्रयाग की सभाएँ भी अच्छे काम कर रही हैं। छापेख़ानों ने भी अब उन्नति कर ली है और

* खेद है कि अब यह पत्रिका बंद हो गई है।

छपाई का काम दिनोदिन अच्छा होता जाता है। कई विश्वविद्यालयों में भी हिंदी को स्थान मिल गया है। प्रयाग के साहित्य-सम्मेलन द्वारा जो परीक्षाएँ होती हैं उनसे भी हिंदी का प्रचार बढ़ रहा है।

नूतन परिपाटी

इस समय के लेखकों ने प्राचीन प्रथा को छोड़कर अब विविध विषयों पर गद्य-ग्रंथ लिखने की ओर विशेषतया ध्यान दिया है। इनकी इच्छा हिंदी में सभी उपयोगी विषयों के लाने की है। आजकल लोग ऐसे ही ग्रंथों से हिंदी का भंडार परम प्रचुरता से भर रहे हैं, जो देखकर प्रत्येक हिंदी-प्रेमी का मन आनंद-सागर की तरंगों में निमग्न होता है। पर वर्तमान लेखकों में एक यह स्वाभाविक दोष भी आ गया है कि वे लोग अनुवाद ही अधिकतर करते हैं, अथवा अन्य भाषाओंवाले ग्रंथों का सहारा लेकर हिंदी में पुस्तकें लिखते हैं। आत्मनिर्भरता और विचार-स्वतंत्रता लेखकों के लिये अत्यावश्यक गुण हैं। आजकल की लेखन-शैली देखते हुए इन अनुपम गुणों के वर्द्धमान होने में कुछ शंका उठ सकती है। वर्तमान समय के मुद्रित ग्रंथों में से कितने ही अँगरेज़ी, बँगला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं के आधार पर लिखे गए हैं। नवीन परिपाटी के लिये यह समय, हिंदी के एक प्राचीन भाषा होने पर भी, अरुणोदय-काल कहा जा सकता है। ऐसे समय में ऐसे परावलंबी ग्रंथों का बनना कुछ स्वाभाविक है, पर यह देखकर शोक अवश्य होता है कि बड़े-बड़े लेखक भी अपने मस्तिष्क से काम लेने में डरते हैं और अच्छे-अच्छे प्रसिद्ध ग्रंथों तक में दूसरों की रचनाओं से प्रच्छन्न अथवा प्रकाश चोरी या सीनेज़ोरी निकल आती है। आशा है कि हमारे लेखकगण अनुयायीपन की बानि के फेर में पड़कर नूतन विचारोत्पादन एवं मस्तिष्क-प्रबलता को न भूल जायँगे। कोई भी भाषा

केवल नक़ल करनेवालों एवं पीछे चलनेवालों के ग्रंथों से बड़ी नहीं हो सकती।

नवीन विचारों के समावेश से पाश्चात्य सभ्यता का भी प्रभाव हमारी भाषा पर पड़ रहा है, जिससे परलोक के विचारों को छोड़कर सांसारिक उन्नति-विषयक ग्रंथ इसमें इस समय बहुतायत से बन रहे हैं। पाठशालाओं के कारण भी हिंदी में विविध विषयों के ग्रंथ बनते हैं। आजकल सभ्य संसार में समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं का बल बहुत बढ़ा है। इसका कुछ प्रभाव हिंदी पर भी पड़ा है। हमारे यहाँ भी अब पत्र-पत्रिकाओं का बाहुल्य है, पर एक यह बड़ा दोष है कि बहुतेरे पत्र उन्नत नव्य विचारों को छोड़कर पुरानी लकीर पीटते जाते हैं। इसका फल यह होता है कि राजविद्या से अनभिज्ञ केवल हिंदी जाननेवाले पुरानी प्रथानुयायी लोगों के विचार विस्तीर्ण नहीं होते। आशा है कि लोकोन्नति के साथ इस क्षति की भी पूर्ति हो जायगी।

खड़ी बोली

हिंदी-पद्य में भी खड़ी बोली का अच्छा प्रचार हो रहा है, परंतु आजकल इसका कोई बहुत श्रेष्ठ कवि नहीं है ; यद्यपि कुछ महाशय इसमें सराहनीय रचनाएँ अवश्य करते हैं। इस बोली में कविता करनेवाले श्रुति-कटु दूषण को बिलकुल नहीं बचाते और बहुधा दीर्घांत छंदों में केवल ह्रस्व अक्षर लिखकर दीर्घ का काम निकालना चाहते हैं, जिससे छंदोभंग दूषण आ जाता है। खड़ी बोली के कविगण यति-भंग दूषण से भी नहीं बचते। आजकल कवियों ने पुरानी प्रथा को छोड़कर पुराने आचार्यों की आज्ञाओं से भी मुख मोड़-सा लिया है। यह बात सर्वथा अनुचित है। कविगण को प्राचीन प्रथा छोड़ने पर भी उच्छृंखलता का दोषी न होना चाहिए। इन दो-एक दोषों के होते हुए भी नवीन प्रथा की कविता को हम पसंद करते एवं आवश्यक समझते हैं। इधर हिंदी में mysticism छायावाद

अथवा अध्यात्मवाद को लेकर भी कविता होने लगी है। अंत्यानुप्रास-हीन अथवा विना तुक की कविता का प्रचार भी बढ़ चला है। हिंदी में समय-समय पर और आजकल भी अनेक प्रकार की उन्नतियाँ हुई हैं, जिनका दिग्दर्शन आगे होगा और उनके विषय में कुछ विस्तार से लिखा जायगा।

सातवाँ अध्याय

हिंदी का विकास

हिंदी ने प्रारंभ से अब तक क्या-क्या और कैसे-कैसे उन्नति की, इसका ब्योरेवार हाल इतिहास के साद्यंत देखने से प्रकट होगा, पर एक ही ठौर इसका कुछ ज्ञान प्राप्त हो जाने के विचार से हम इस स्थान पर सभी समयों के कुछ उदाहरण एकत्रित किए देते हैं। इन्हें ध्यान से मनन करने पर स्पष्ट रूप से विदित हो जायगा कि हिंदी-लेखन-प्रणाली में समयानुसार क्या-क्या परिवर्तन होते गए और वह कैसे-कैसे रूप धारण करती गई।

गद्य-विभाग

पूर्व प्रारंभिक हिंदी (संवत् १२२९ का नमूना)

मेवाड़ की सनद

स्वस्ति श्री श्री चीत्रकोट महाराजा-धोराज तपे राज श्री श्री रावल-जी श्री समरसीजी वचनातु दाअमा आचारज ठाकर रुसीकेष कस्य थाने दलीसु डायजे लाया अणी राज में ओषद थारी लेवेगा ओषद ऊपरे मालकी थाकी है ओ जनाना में थारा बंसरा टाल ओ दुजो आवेगा नहीं और थारी बैठक दली में ही जी प्रमाणे परधान बरोबर कारण होवेगा। (इसका सरल प्रचलित हिंदी में अनुवाद अध्याय ९वें में दिया है।)

उत्तर प्रारंभिक हिंदी (संवत् १४०७ के लगभग)

महात्मा गोरखनाथजी

सो वह पुरुष संपूर्ण तीर्थ अस्नान करि चुकौ, अरु संपूर्ण पृथ्वी ब्राह्मननि कौ दै चुकौ, अरु सहस्र जज्ञ करि चुकौ, अरु देवता सर्व पूजि चुकौ, अरु पितरनि कौ संतुष्ट करि चुकौ, स्वर्गलोक प्राप्त करि चुकौ जा मनुष्य के मन छन मात्र ब्रह्म के बिचार बैठौ।

प्रौढ़ माध्यमिक हिंदी (संवत् १६००–१६४८)

गोस्वामी विट्ठलनाथजी

जमे के सिघर पर शब्दायमान करत है त्रिबिधि वायु बहत है हे निसर्ग स्नेहार्द्र सखी कूं संबोधन, प्रियाजू नेत्र कमल कूं कछुक मुद्रित दृष्टि होय कै बारंबार कछु सखी कहत भई यह मेरो मन सहचरी एक क्षण ठाकुर को त्यजत नाँहीं।

गंगाभाट (१६२६)

इतनो सुनके पातशाहाजी श्रीअकबरशाहाजी आद सेर सोना नरहरदास चारन को दिया इनके डेढ़ सेर सोना हो गया।

गोस्वामी गोकुलनाथजी (सं० १६४८)

तब दामोदरदास हरसानी ने बिनती कीनी जो महाराज आप याकों अंगीकार कब करोगे तब श्री आचार्यजी महाप्रभून ने दामोदर-दास सों कह्यो जो यासों अब वैष्णव कौ अपराध पडैगो तौ हम याकों लक्ष जन्म पाछे अंगीकार करैंगे।

महात्मा नाभादासजी (संवत् १६६० के आसपास)

तब श्रीमहाराज कुमार प्रथम बशिष्ट महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भए। फिर अपर वृद्ध समाज तिनको प्रनाम करत भए। फिर श्रीराजा-धिराजजू को जोहार करिकै श्रीमहेंद्रनाथ दशरथजू के निकट बैठते भए।

गोस्वामी तुलसीदासजी (१६६६)

संवत् १६६६ समये कुआर सुदी तेरसी बार शुभ दिने लिखीत

पत्र अनंदराम तथा कन्हई के अंश विभाग पुर्वमु आगे जे आम्य दुनहु जने मागा जे आम्य सै शे प्रमान माना दुनहु जने विदित तफ़सीलु अंश टोडरमलु के माह जे बिभाग पदु होत रा।

बनारसीदासजी (संवत् १६७०)

सम्यग् दृष्टि कहा सो सुनो। संशय, विमोह, विभ्रम, ए तीन भाव जामैं नाहीं सो सम्यग् दृष्टी। संशय, विमोह, विभ्रम, कहा ताको स्वरूप दृष्टांत करि दिखाइयतु सो सुनो।

जटमल (संवत् १६८०)

हे बात की चीतौड़गड़ को गोरा बादल हुआ है जीन की वार्ता की किताब हींदवी में बनाकर तयार करी है।
गोरे की आवरत आवे का बचन सुनकर आपने पावंद की पगड़ी हाथ में लेकर वाहासती हुई सो सिवपुर में जा के वाहा दोनों मेले हुवे।

उस जग आली षान बाबा राज करता है मसीह वाका लड़का है सो सब पठानों में सरदार है जयेसे तारों में चंद्रमा सरदार है ओयसा वो है।

पूर्वालंकृत हिंदी (संवत् १७६० के आसपास)

देवजी

महाराज राजाधिराज, व्रजजनसमाजविराजमान, चतुर्दस भुवन विराज, वेद विधि विद्या सामग्री सम्राज, श्रीकृष्ण देव, देवाधिदेव देवकीनंदन, जदुदेव, यशोदानंदन, हृदयानंद, कंसादिनिकंदन, वंसावतंस, अंसावतार जय-जय।

सूरति मिश्र (संवत् १७६७)

सीस फूल सुहाग अरु बेंदा भाग ए दोऊ आए पाँवड़े, सोहै सोनें के कुसुम, तिन पर पैर धरि आए हैं (कविप्रिया की टीका)

भिखारीदासजी (संवत् १७८६) के निकट

धन पाए ते मूर्खहू बुद्धिवंत ह्वै जातु है। और युवावस्था पाए ते नारी चतुर ह्वै जाति है यह व्यंग्य है। उपदेश शब्द लक्षणा

सो मालूम होता है औ वाच्यहू मैं प्रगट है । (दास-कृत टीका)

ललितकिशोरी व ललितमाधुरी (१८००)

मलयगिरि को समस्त बन वाकी पवन सों चंदन ह्वै जाय। वाके कछू इच्छा नाहीं।

उत्तरालंकृत हिंदी (संवत् १८६०)

लल्लूलाल

इस बीच अति व्याकुल हो सुधि बुधि देह की बिसारे मन मारे रोती यशोदा रानी उद्धवजी के निकट आय राम कृष्ण की कुशल पूँछ बोली कहो उद्धवजी हरि हम बिन वहाँ कैसे इतने दिन रहे और क्या संदेशा भेजा है कब आय दर्शन देंगे ?

सदल मिश्र (वही काल)

कुंड मैं क्या अच्छा निर्मल पानी कि जिसमैं कमल के फूलों पर भौंरे गूँज रहे थे; तिस पर हंस सारस चक्रवाक आदि पक्षी भी तीर-तीर सोहावन शब्द बोलते, आसपास के गाछों पर कुहू-कुहू कोकिलैं कुहुक रहे थे, जैसा बसंत ऋतु का घर ही होय।

परिवर्तन-काल की हिंदी (संवत् १९०० से १९२५)

सरदार (१९०२)

बंशीवट के निकट आज मैंने नेक श्याम को मुख हेरो। नट नागर के पट पै तब तें मेरो मन लटको है। शिव रिपु त्रिय तुलसी घटहीन मनुज नर गिरा रस इनको आदि वर्णन लेत तुहिन गिरिजा पार्वती सुत स्वामिकार्त्तिक वाहन मोर के पक्ष शिर पर धरे हैं।

राजा शिवप्रसाद (१९११)

जब बिपत के दिन आते हैं तो सारे सामान ऐसे ही बँध जाते हैं। निदान राजा नल ने चलते समय दमयंती की साड़ी काटकर आधी उसमें से अपने पहरने को ली और आधी उसके बदन पर रहने दी। इस मनुष्य का मन भी विधाता ने किस प्रकार पर रचा है !

राजा लक्ष्मणसिंह (१६१७)

रास छोड़ते ही घोड़े सिमटकर कैसे झपटे कि खुरों की धूल भी साथ न लगी। केश खड़े करके और कनौती उठाकर घोड़े दौड़े क्या हैं उड़ आए हैं। जो वस्तु पहले दूर होने के कारण छोटी दिखाई देती थी सो अब बड़ी जान पड़ती है।

श्रीस्वामी दयानंदजी (संवत् १६२०)

जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य ही नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय किंतु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र (१६२५)

महाराज फिर संतोष ने बड़ा काम किया। राजा प्रजा सबको अपना चेला बना लिया। अब हिंदुओं को खाने-मात्र से काम देश से कुछ काम नहीं। रोज़गार न रहा तो सूद ही सही। वह भी नहीं तो घर ही का सही 'संतोषं परमं सुखं' रोटी ही को सराह-सराह के खाते हैं उद्यम की ओर देखते ही नहीं। निरुद्यमता ने भी संतोष को बड़ी सहायता दी। व्यापार को इन्हीं ने मार गिराया। फिर महाराज अपव्यय ने ख़ूब लूट मचाई। अदालत ने भी अच्छे हाथ साफ़ किए। फ़ैशन ने तो बिल और टोटल के इतने गोले मारे कि अंटाधार कर दिया और सिफ़ारिश ने भी ख़ूब ही छकाया। पूरब से पच्छिम और पच्छिम से पूरब पीछा करके ख़ूब भगाया। मोटा भाई बना-बनाकर मूँड़ लिया।

बालकृष्ण भट्ट (१६६०)

परदे का दूसरा नाम यवनिका भी है। यह यवनिका माया के रूप में ऐसा प्रबल आच्छादन है कि जिससे शुद्ध सनातन सच्चिदानंद

परमात्मा हमसे सदा तिरोहित रहता है। अज्ञान-तिमिर के पटल में पड़े समस्त जीव कोटि उसके प्रकाश से वैसे ही वंचित हो रहे हैं जैसे कोहिरे से सूर्य ढँपे रहते हैं। इस परदा के हटाने का एक-मात्र उपाय केवल ज्ञानांजन-शलाका है जिस ज्ञानांजन-शलाका से नेत्र के उन्मीलित होते ही परदा दूर हो जाता है।

गौरीशंकर-हीराचंद ओझा (आधुनिक लेखक)

हिंदुओं का दृष्टि-कोण सदा से निवृत्ति-मार्ग की तरफ़ रहने के कारण उन्होंने प्राचीन काल से ही वास्तविक इतिहास की ओर ध्यान नहीं दिया, और मनुष्यों के चरित्र अंकित करने की अपेक्षा ईश्वर के अवतारों या देवी-देवतों के वर्णन करने में ही अपनी लेखनी को कृतार्थ समझा। इसी से हमारे यहाँ के अनेक राजों, धनाढ्यों, महाराजों, विद्वानों, वीर पुरुषों आदि के केवल चरित्र ही नहीं मिलते, वरन् उनका निश्चित समय भी अज्ञात है।

गदाधरसिंह (आधुनिक लेखक)

संसार की स्थिति में युद्ध एक ऊँचे और आवश्यक स्थान का अधिकार रखता है। मनुष्यत्व के सर्वोच्च प्रभाव प्रगट होने की समर-क्षेत्र ही एक महान प्रदर्शिनी है। बिना युद्ध के मनुष्य-जाति की उन्नति का मार्ग रुक जाता है और वह जाति भ्रष्ट होकर मृत पदार्थ-वाद में लीन हो जाती है।

श्यामसुंदरदास (आधुनिक लेखक)

ग्रंथकर्ता बंदीजन वंशज खुमान अथवा मान कवि हैं जो विक्रम के आश्रित थे। ये कवि बसहरी ग्राम के रहनेवाले थे। इनके पूर्वज महाराज छत्रसाल के आश्रित थे और ये लोग क्रमशः उसी वंश के आश्रित होते आए।

मन्नन द्विवेदी गजपुरी (स्वर्गवासी आधुनिक लेखक)

मेरे विचार में राम ने सीता-निर्वासन-जनित घोर पाप का

प्रायश्चित्त अपने विलापों से किया है। प्रबल अश्रुधारा से उन्होंने अपने चरित्र की कालिमा को बहुत अंश में धो दिया है। भवभूति के राम ने अपने जीवन से "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि" को चरितार्थ किया है।

व्रजरत्नदास (नव्य लेखक)

ये बड़े समारोह के साथ कच्छा पाटते थे, और बिरादरी के लोगों की जेवनार भी करते थे। ये काशी-नरेश के महाजन थे, और इनका उस दर्बार में बहुत सम्मान था। बिरादरी में भी इनका इतना मान था कि अनेक धनाढ्यों तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों के रहते भी इन्हें ही अपना चौधरी बनाया।

इन उपर्युक्त उदाहरणों से प्रकट है कि पहले तो हिंदी-गद्य में व्रजभाषा का प्रयोग नहीं होता था, परंतु महात्मा गोरखनाथ के समय में व्रजभाषा ने ऐसा बल प्राप्त कर लिया था कि उन्होंने पूर्वीयप्रांतनिवासी होने पर भी गद्य में उसका सम्मान किया, यद्यपि पद्य में ऐसा नहीं किया, जैसा कि आगे ज्ञात होगा। इस समय से संवत् १६८० तक गंगाभाट को छोड़ गद्य में सब ज्ञात लेखकों ने प्रायः इसी भाषा का प्रयोग किया, परंतु इस संवत् में जटमल ने व्रजभाषा में खड़ी बोली बहुत मिला दी, यहाँ तक कि उसके लेख में खड़ी बोली का ही प्राधान्य है। तुलसीदासजी का लेख साधारण बोलचाल-मात्र का उदाहरण है, न कि काव्य का। देव ने शुद्ध व्रजभाषा लिखी, परंतु दास ने उसमें खड़ी बोली के कुछ शब्द मिलाए, लल्लूलाल ने उन्हें बढ़ाया और सदल मिश्र ने इस वृद्धि की और भी उन्नति की, परंतु सरदार ने फिर भी शुद्ध व्रजभाषा का प्रयोग किया। पहलेपहल राजा शिवप्रसाद ने व्रज-भाषा को प्रायः बिलकुल छोड़ दिया और राजा लक्ष्मणसिंह, स्वामी दयानंद आदि ने इसी रीति को सत्कारा। भारतेंदुजी से

गद्य की अच्छी उन्नति हुई। उन्होंने उसमें संस्कृत-शब्दों का कुछ प्रयोग बढ़ाकर उसकी छटा वर्द्धमान की, परंतु उनके पीछे लेखकों ने संस्कृत की मात्रा को बहुत अधिक बढ़ाया, जिससे भाषा दिनोंदिन गूढ़तर होती जाती है। संस्कृत-शब्दों के बहुव्यवहार के साथ-साथ उस भाषा के नियम भी हिंदी में घुसने लगे हैं। इस विषय का कुछ सविस्तर वर्णन अन्यत्र किया गया है। भाषा के गूढ़ीकरण से उसमें पांडित्य-वृद्धि अवश्य होती है, परंतु उसकी लोकप्रियता को धक्का लगता है। ऐसी कुछ बातों के होते हुए भी यह कहने का आज सहर्ष अवसर मिला है कि हिंदी-गद्य ने अच्छी उन्नति कर ली है और इसकी वृद्धि की उत्तरोत्तर आशा है। वर्तमान गद्य-लेखन-शैली का जन्म राजा शिवप्रसाद के समय से मानना चाहिए।

पद्य-विभाग

(१) पूर्व प्रारंभिक हिंदी (संवत् १०००—१३४३)

भुवाल कवि (सं० १०००)

सुमिरौं गुरु गोविंद के पाऊँ; अगम अपार है जाकर नाऊँ।
कहूँ नामयुत अंतरजामी; भगतभाव देहु गरुड़ागामी।

चंद कवि (सं० १२२५-४६)

हंस होत गति भंग मोर कटु सबद उचारै;
रोवत क्रौंच कुरंग सुकपि छंडत आहारै।
सूआ बमन करंत निकुल कुर्कुट मित्राई;
ऐसे चरित करंत जानि आगंम दिनाई।
चकोर परस्पर हित रहित कहत चंद पारष्ष लहि;
तिहि काज आनि रष्षत इनहि भूपति भोजन साल महि।
विधि-विधि भाँति सुरावल रच्चै; पूजा देव समान सुसच्चै;
अति आनंद सेव सह सारं; तब सुभ्र पंग आय परिहारं।

मोहनलाल द्विज (१२४७)

शीश भाल श्रुति नासिका ग्रीवा उर कटि बाहु ;
मूल पानि अँगुरी चरन भूषन रचि अवगाहु ।

चंद पुत्र जल्हन कवि (१२५० के पीछे)

पत्यों संभरी राय दीसै उतंगा ; मनो मेरु वज्री कियं श्रृंग भंगा ।
जिनैं बार बारं सुरत्तान साह्यो ; जिनें भीजि के भीम चालुक्क गाह्यो ।
जिनैं भंजि मैवात द्वै बार बंध्यो ; जिनें नाहरं राइ गिरनार संध्यो ।
जिनैं भंजि थट्टा सुकव्यो निकंदं ; जिनें भंजि महिपाल रिनथंभ दंदं ।

(२) उत्तर प्रारंभिक हिंदी (सं० १३४४—१४४४)

नरपति नाल्ह (सं० १३५४)

जब लगि महियल उग्गइ सूर ; जब लगि गंग बहइ जल पूर ।
जब लगि प्रीथमी नै जगंनाथ ; जाणी राजा सिर दीधौ हाथ ।

नल्लसिंह (सं० १३५५)

ईराण तोरि तुराण असि खौसिर बंग लँधारि सब ;
बल बंड पिंड हिँदुवान हद चढ़िव बीर बिजैपाल तब ।

शारंगधर (सं० १३५७)

सिंह गमन सुपुरुष बचन कदलि फरै इक सार ;
तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार ।

अमीर ख़ुसरो (सं० १३७०)

आदि कटे से सबको पालै ; मध्य कटे से सबको घालै ।
अंत कटे से सबको मीठा ; सो ख़ुसरो मैं आँखों दीठा ।

महात्मा गोरखनाथ (सं० १४०७)

नीरा रंभे चेला कूँड़ विधि रहे ; सत गुरु होय सो पुछ्या कहै ।
अवधू रहिया हाटे बाटे रूख बिरछ की छाया ;
तजिबा काम क्रोध लोभ मोह संसार की माया ।

(३) पूर्व माध्यामिक हिंदी (१४४५–१५६०)

विद्यापति ठकुर (१४४५)

सरस वसंत समय भल पाओलि दछिन पवन बहु धीरे ;
सपनहु रूप बचन यक भाषिय मुख सेंदुर करु चीरे ।
जइति देखिल पथ नागरि सजनी आगरि सुबुधि सयानि ;
कनक-लता-सम सुंदरि सजनी विह निरमावल आनि ।
कत सुख सार पाओल तुव तीरे ; छँड़इत निकट नयन बहु नीरे ।
कर जोरि बिनमों बिमल तरंगे ; पुन दरसन हो पुनमति गंगे ।

महात्मा कबीरदासजी (१४७५)

जल थल पृथ्वी गगन में बाहर भीतर एक ;
पूरण ब्रह्म कबीर है अवगत पुरुष अलेख ।
गला काटि बिसमिल करैं ते काफर बे बूझ ;
औरन को काफर कहैं अपना कुफर न सूझ ।

लोका मति का भोरा रे ;
जो काशी तन तजै कबीरा रामै कौन निहोरा रे ।
तब हम वैसे अब हम ऐसे यही जनम का लाहा ;
ज्यों जल में जल पैसन निकसे यों दुरि मिला जोलाहा ।
राम भगति पर जाको हित चित ताको अचरज काहा ;
गुरू प्रताप साधु संगति जग जीतैं जाति जोलाहा ।
कहत कबीर सुनौ रे संतौ भरम परौ जनि कोई ;
जस काशी तस मगहा ऊसर हृदय राम जो होई ।

नामदेव (१४८०)

अभि अंतर काला रहै बाहेर करै उजास ;
नाम कहै हरि भगति बिनु निहचै नरक निवास ।

बाबा नानक (१५५०)

गुन गोबिँद गायो नहीं जनम अकारथ कीन ;
नानक भजु रे हरि मना जेहि बिधि जल को मीन ।

कुतबन शेख (१५६०)

बरम दुदिस्टिल उनको छाजा ; हम सिर छाँह जियो जग राजा ।
दान देइ औ गनत न आवै ; बलि औ करन न सरबरि पावै ।

सेन (१५६०)

जब सों गोपाल मधु बन को सिधारे आली ,
मधु बन भयो मधु दानव बिखम सों ;
सेन कहै सारिका सिखंडी खंजरीट सुक ,
मिलि कै कलेस कीनो कालिँदी कदम सों ।

(४) प्रौढ़ माध्यमिक हिंदी (१५६१—१६८०)

महात्मा श्रीसूरदासजी (१५६१ से १६२० तक)

राधा ढँग हैं री तेरे ;
वैसे हाल मथत दधि कीने हरि मनु लिखे चितेरे ।
तेरो मुख देखत ससि लाजे और कहौ क्यों बाचै ;
नैना तेरे जलज जीत हैं खंजन ते अति नाचै ।
चपला ते चमकत अति प्यारी कहा करैगो स्यामहिं ;
सुनहु सूर ऐसेहि दिन खोवत काज नहीं तेरे धामहिं ।

श्रीगोस्वामी हितहरिवंशजी

ब्रज नव-तरुनि कदंब मुकुट-मनि स्यामा आजु बनी ;
नख सिख लौं अँग अंग माधुरी मोहै स्याम धनी ।
यों राजत कबरी गूथित कच कनक-कंज बदनी ;
चिकुर चंद्रकनि बीच अरध बिधु मानुहु ग्रसत फनी ।

कृपाराम (१५९८)

लोचन चपल कटाच्छ सर अनियारे बिष पूरि ;
मन मृग बेधैं मुनिन के जग जन सहित बिसूरि ।

मलिक मोहम्मद जायसी (१६००)

गोरइँ दीख साथु सब जूझा ; अपन काल नेरे भा बूझा ।
कोपि सिंह सामुह रन मेला ; लाखन सों ना मरै अकेला ।
जेइ सिर देइ कोपि तरवारू ; सइँ घोड़े टूटइँ असवारू ।
तुरुक बोलावइँ बोलइ नाहाँ ; गोरइँ मीचु धरी मन माहाँ ।

मीरा बाई (१६००)

बसो मेरो नैनन में नँदलाल ;
मोहनि मूरति साँवरि सूरति नैना बने रसाल ।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल अरुन तिलक दिए भाल ;
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजंती माल ।

कृष्णदास पयअहारी (१६००)

आवत लाल गोबर्द्धन धारी ;
आलस नैन सरस रस रंगित प्रिया प्रेम नूतन अनुहारी ।
बिलुलित माल मरगजी उर पर सुरति समर की लगी पराग ;
चूँबत स्याम अधर रस गावत सुरति भाव सुख भैरव राग ।
पलटि परे पट नील सखी के रस में झीलत मदन तड़ाग ;
बृंदाबन बीथिन अवलोकत कृष्णदास लोचन बड़ भाग ।

नरोत्तमदास (१६०२)

सिच्छक हौं सिगरे जग को गुरु ता कहँ तू अब देति है सिच्छा ;
जे तप कै परलोक सुधारत संपति की तिनकी नहिं इच्छा ।
मेरे हिये हरि के पद-पंकज बार हजार लै देखु परिच्छा ;
औरन को धन चाहिय बावरि बाँभन को धन केवल भिच्छा ।
द्वारिका जाहु जू द्वारिका जाहु जू आठहु जाम यहै बक ठानी ;

जातहि देहैं लदाय लढ़ा भरि ऐहैं लिए तू यही जिय जानी।
पावैं कहाँ ते अटारी अटा जिनको है लिखी बिधि टूटी-सी छानी;
जो पै दरिद्र लिलार लिख्यौ कहि को तेहि मेटि सकैगो अयानी।

श्रीस्वामी हरिदासजी (१६०७)

भजत भजनीय मति शयति रुचिरं चिरं
चरण युगलं सकल गुण सुललितं।
वदतु हरिदास इति मा भवतु मुक्तिरपि
भवतु मम देव सुत जन्म फलितं॥

गंग (१६१५)

झुकत कृपान मयदान ज्यों उदोत भान,
एकन ते एक मनौ सुखमा जरद की;
कहै कवि गंग तेरे बल की बयारि लागे,
फूटी गज-घटा घन-घटा ज्यों सरद की।
एते मान सोनित की नदियाँ उमड़ि चलीं,
रही ना निसानी कहूँ महि मैं गरद की;
गौरी गह्यो गिरिपति गनपति गह्यो गौरी,
गौरीपति गह्यो पूछ लपकि बरद की।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी (१६३१–८०)

पुनि बन्दौं खलगन सतिभाये; जे बिनु काज दाहिने बाँये।
पर हित हानि लाभ जिन केरे; उजरे हरष बिषाद बसेरे।
प्रनवउँ खल जस सेस सरोसा; सहस बदन बरनइँ पर दोसा।
पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना; पर अघ सुनैं सहस दस काना।
बहुरि शक्र सम बिनवउँ तेही; संतत सुरानीक हित जेही।
बचन बज्र जेहि सदा पियारा; सहस नयन पर दोस निहारा।
हरि हर जस राकेस राहु से; पर अकाज भट सहस बाहु से।
जे परदोस लखहिँ सहसाखी; पर हित घृत जिन के मन माखी।

उदय केतु सम हित सबही के ; कुंभकरन सम सोवत नीके।
पर अकाज लगि तनु परिहरहीं ; जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं।
उदासीन अरि मीत हित , सुनत जरहिँ खल रीति ;
जानु पानि जुग जोरि कै , बिनती करौं सप्रीति।

खानखाना (१६४०)

खैर, खून, खाँसी, खुसी , बैर, प्रीति, मधुपान ;
रहिमन दाबे ना दबैं , जानत सकल जहान।
संप्रति संपतिवान को , सब कोऊ वसु देत ;
दीन बंधु बिन दीन की , को रहीम सुधि लेत।
अब रहीम मुसकिल परी , गाढ़े दोऊ काम ;
साँचे से तौ जग नहीं , झूठे मिलैं न राम।

रसखान सं० १६४५)

छूटी लोक लाज गृह काज मन मोहनी को ,
मोहन को भूलि गयो मुरली बजायबो ;
अब रसखानि दिन द्वै मैं बात फैलि जैहै ,
सजनी कहाँ लौं चंद हाथन दुरायबो।
कालिह ही कलिंदी तीर चितए अचानक ही ,
दुहुन की ओर दोऊ मुरि मुसकायबो ;
दोऊ परैं पैयाँ दोऊ लेत हैं बलैयाँ ,
उन्हैं भूलि गईं गैयाँ इन्हैं गागरि उठायबो।

मोर पखा सिर ऊपर राखिकैं गुंज की माल गरें पहिरौंगी ,
ओढ़ि पितंबर लै लकुटी बन गावत गोधन संग फिरौंगी।
भावै री तोहि कहा रसखानि सो तेरे लिये सब स्वाँग करौंगी ,
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी।

केशवदास (१६४८)

सोभित मंचन की अवली गज-दंत-मई छबि उज्ज्वल छाई ,

ईस मनो वसुधा मैं सुधारि सुधाधर मंडल मंडि जुन्हाई।
ता महँ केशवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई :
देवन सों मिलि देव-सभा जनु सीय स्वयंवर देखन आई।

नाभादास (सं० १६५७)

अवधपुरी की सोभा जैसी : कहि नहिँ सकहिँ शेष श्रुति तैसी।
रचित कोट कलधौत सोहावन ; विविध रंग मति अति मन भावन।

मुबारक (सं० १६७०)

कान्ह की आँकी चितौनि चुभी जब
काल्हि ते झाँकी है ग्वालि गवाच्छनि ;
देखी है नोखी-सी चोखी-सी कोरनि,
ओछे फिरैं उभरैं चित जा छनि।
मारेई जात निहारे मुबारक,
ए सहजै कजरा मृग आछनि :
साँक लै काजर दे री गँवारिनि,
अँगुरी तेरी कटैगी कटाछनि।

(५) पूर्वालंकृत हिंदी (१६८१—१७९०)

चिंतामणि त्रिपाठी (१६८०)

एई उधारत हैं तिन्हैं जे परे मोह महोदधि के जल फेरे :
जे इनको पल ध्यान धरैं मन ते न परैं कबहूँ जम घेरे।
राजै रमा रमनी उपधान अभै बरदानि रहै जन नेरे :
हैं बल भार उदंड भरे हरि के भुजदंड सहायक मेरे।

तोष (संवत् १६९१)

कामैं कला के कुतूहल मैं कहूँ नींद गई लगि श्रीघनस्यामैं :
जामैं रही रजनी कबि तोष बजावँत बीन लगी अभिरामैं।
सामैं रह्यो बिधु बाहन मोहि लख्यो बिरही चकवान की धामैं :
हा मैं कियो यह का मैं कहा कहि पी सँग पौढ़ि रही पलका मैं।

महाराजा जसवंतसिंह (१६६५)

मुख ससि वा ससि सों अधिक, उदित जोति दिन-राति ;
सागर ते उपजी न यह, कमला अपर सोहाति ।

सेनापति (१७०६)

वृष को तरनि तेज सहसौ करनि,
तपै ज्वालनि के जाल बिकराल बरसत है ;
तपति धरनि जग झुरत झुरनि सीरी,
छाँह को पकरि पंथी पंछी बिरमत है ।
सेनापति नेक दुपहरी ढरकत होत,
धमका बिषम जो न पात खरकत है ;
मेरे जान पौन सीरे ठौर को पकरि,
कौनौ घरी एक बैठि कहूँ घामै बितवत है ।

राजा शंभुनाथ सुलंकी (१७०७)

कौहर कौल जपा दल बिद्रुम का,
इतनी जु बँधूक मैं कोति है ;
रोचन रोरी रची मेंहदी नृप शंभु,
भनै मुकता सम पोति है ।
पाँय धरै ढरै ईंगुरई तिन मैं,
खरी पायल की वनी जोति है ;
हाथ द्वै तीनिक चारि हू ओर लौं,
चाँदनी चूनरी के रँग होति है ।

विहारीलाल (१७१०)

नभ लाली चाली निसा, चटकाली धुनि कीन ;
रति पाली आली अनत, आए बनमाली न ।
मोर मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल ;
यहि बानिक मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल ।

सबलसिंह (१७१८)

गज मुख सुखकर दुख हरन, तोहि कहौं सिर नाय ;
कीजै जस, लीजै बिनै, दीजै ग्रंथ बनाय ।

कुलपति मिश्र (१७२७)

ऐसिय कुंज बनै छवि पुंज रहैं अलि गुंजत यों रस लीजै ;
नैन बिसाल वहै बनमाल बिलोकत रूप सुधा भरि पीजै ।
जामिनि जाम कि कौन कहै जुग जात न जानिए ज्यों छिन छीजै ;
आनँद यों उमगोई रहै पिय मोहन को मुख देखिबो कीजै ।

सुखदेव मिश्र (१७२८)

कानन टूटैं बिघन के, जानन ते यह ज्ञान ;
कञ्ज आनन की जाति मिटि गज आनन के ध्यान ।

कालिदास (१७३०)

गढ़न गढ़ी से गढ़ि, महल मढ़ी से मढ़ि,
बीजापुर ओप्यो दलमलि सुघराई मैं ;
कालिदास कोप्यो बीर औलिया अलमगीर,
तीर तरवारि गही पुहुमी पराई मैं ।
बूँद तें निकसि महि मंडल घमंड मची,
लोहू की लहरि हिमगिरि की तराई मैं ;
गाड़ि कै सुझंडा आड़ कीन्ही पातसाह,
तातें डकरी चमुंडा गोलकुंडा की लराई मैं ।

भूषण त्रिपाठी (१७३१)

हैवर हरट्ट साजि गैवर गरट्ट सम,
पैदर के ठट्ट फौजं जुरी तुरकाने की ;
भूषन भनत तहाँ चंपति को छत्रसाल,
रोप्यो रन ख्याल ह्वै के ढाल हिंदुवाने की ।

कैयक हजार एक बार बैरी मारि डारे,
रंजक दगनि मानो अगिनि रिसाने की;
सैद अफगन सेन सगर सुतन लागी,
कपिल सराप लौं तराप तोपखाने की।

मतिराम (१७३७)

कोऊ नहीं बरजै मतिराम रहौ तितही जितही मन भायो;
काहे को सोहैं हजार करौ तुम तौ कबहूँ अपराध न ठायो।
सोवन दीजै, न दीजै हमैं दुख, यों हीं कहा रसबाद बढ़ायो;
मान रह्योई नहीं मन मोहन! मानिनी होय सो मानै मनायो।

वृंद (१७४ :)

उद्यम कबहुँ न छाँड़िए, पर आसा के मोद;
गागरि कैसे फोरिए, उनए देखि पयोद?

देवदत्त (१७४६)

हित की हितू री क्यों न तूरी समुझावै आनि,
नित प्रति सुखदानि मुख को निहारनो;
लपने कहाँ लौं बालपने की बिकल बातैं,
अपने जनहि सपनेहू न बिसारनो।
देवजू दरस बिन तरसि मरो हो पद,
परसि जियैगो मनु बैरी अनमारनो;
पतिव्रत व्रती यै उपासी प्यासी अँखियन,
प्रात उठि पीतम पियायो रूप पारनो।

पायन नूपुर मंजु बजैं कटि किंकिनि की धुनि मैं मधुराई;
साँवरे अंग लसै पट पीत हिए हुलसै बनमाल सोहाई।
माथे किरीट बड़े दृग चंचल मंद हँसी मुख चंद जोन्हाई;
जै जग मंदिर दीपक सुंदर श्री ब्रज दूलह देव सहाई।

छत्र (१७५७)

दीरघ तनु, दीरघ भुजा, दीरघ पौरुप पाय ;
कातर ह्वै बैठे सदन, बहु बलवंत कहाय ।

बैताल (१७६०)

मर्द सीस पर नवै मर्द बोली पहिंचानै ;
मर्द खवावै खाय मर्द चिंता नहिं मानै ।
मर्द देय औ लेय मर्द को मर्द बचावै ;
गाढ़े सकरे काम मर्द के मरदै आवै ।
पुनि मर्द उनहि को जानिए, दुख सुख साथी दर्द के ;
बैताल कहै विक्रम सुनो, ए लच्छन हैं मर्द के ।

कवींद्र (१७६२)

कूरम नरिंद गजसिंह जू के चढ़े दल ,
लंक लौ अतंक बंक संक सरसाती है ;
भनत कबिंद बाजै दुंदुभी धुकार भारी,
धरा धसमसै गिरि पाँती डगलाती है ।
कमठ की पीठि पर सेस के सहस फन ,
दिया लौं दबात उमगात अधिकाती है ;
फनन ते बाहर निसरि द्वै हजार जीभैं ,
स्याह स्याह बाती लौं बुझाती रहिजाती है ।

लाल (१७६५)

एइ एक सिवराज निबाही ; करै आपने चित की चाही ।
आठ पातसाही झकझोरै ; सूबनि पकरि दंड लै छोरै ।
चहूँ ओर सों सूबन घेरो ; दिसनि अलात चक्र सो फेरो ।
कबहूँ प्रकटि जुद्ध मैं हाँकै ; मुगलनि मारि पुहुमि तल ढाँकै ।
बाननि बरषि गयंदनि फोरै ; तुरकनि तमकि तेग तर तोरै ।
कबहूँ जुरै फौज सों आछे ; लेइ लगाय चाल दै पाछे ।

कबहूँ उमड़ि अचानक आवै; घन से घुमड़ि लोह बरसावै।
कबहूँ हाँकि हरौलनि कूटै; कबहूँ चापि चँदालनि लूटै।

महाराजा अजीतसिंह (१७६७) माड़वार-नरेश

पीतांबर कछनी कछे, उर बैजंती माल;
अँगुरी पर गिरिवर धर्‍यो, संग सबै व्रजबाल।

घनआनंद (१७७१)

गाइहौं देवी गनेस महेस दिनेसहि पूजत ही फल पाइहौं;
पाइहौं पावन तीरथ नीर सुनेकु जहाँ हरि कों चित लाइहौं।
लाइहौं आछे द्विजातिन को अरु गोधन दान करों चरचाइहौं;
चाइ अनेकन सों सजनी घनआनँद मीतहि कंठ लगाइहौं।

महाराजा नागरीदास (१७८०)

यक मिलत भुजन भरि दौरि दौरि; यक टेरि बोलावत औरि-औरि।
कोउ चले जात सहजै सुभाय; पद गाय उठत भोगहि सुनाय।
अतिसै बिरक्त जिनके सुभाव; जे गनत न राजा रंक राव।
ते समिटि समिटि फिरि आय-आय; फिरि छाँड़त पद पढ़वाय गाय।

सीतल (१७८० के लगभग)

हम खूब तरह से जान गए जैसा आनँद का कंद किया,
सब रूप, सील, गुन, तेज पुंज तेरे ही तन में बंद किया;
तुझ हुस्न प्रभा की बाकी लै फिर बिधि ने यह फरफंद किया,
चंपकदल, सोनजुही, नरगिस, चामीकर, चपला बंद किया।

गंजन (१७८६)

ऐल परी अलका में खल भल खलका में,
एतो बल कामैं जे रहत निज थान हैं;
गंजन सुकवि कहै माल मुलकनि तजि,
रज रजपूती तजि तखत गुमान हैं।

रानी तजि पानी तजि कर किरवानी तजि,
अति बिहवल मन आनत न आन हैं ;
ह्वै करि किसान भूप भागत दिसान जब,
कमरुद्दीखान जू के बाजत निसान हैं।

(६) उत्तरालंकृत हिंदी (१७६१–१८८१)

दास (१७६१)

ऊधो तहाँई चलौ लै हमैं जहँ कूबरी कान्ह बसैं यक ठौरी ;
देखिये दास अघाय-अघाय तिहारे प्रसाद मनोहर जोरी।
कूबरी सों कछु पाइए मंत्र बढ़ाइए कान्ह सों प्रेम की डोरी ;
कूबर भक्ति बढ़ाइए बंदि चढ़ाइए चंदन बंदन रोरी।

राजा गुरुदत्तसिंह (१७६२)

अति सौरभ सहबास तें, सहज मधुर सुख कंद ;
होत अलिन को नलिन ढिंग, सरस सलिल मकरंद।

रघुनाथ (१७६६)

सुघरे सिलाह राखै, बायु बेगी बाह राखै,
रसद की राह राखै, राखे रहै बन को ;
चोर को समाज राखै, बजा औ नजर राखै,
खबरि के काज बहुरूपी हरफन को।
अगम भखैया राखै, सकुन लेवैया राखै,
कहै रघुनाथ औ बिचार बीच मन को ;
बाजी हारै कबहू न औसर के परे जौन,
ताजी राखै प्रजन को, राजी सुभटन को।

चाचा वृंदावनदास (१८००)

सुंदरता की हद मुरलीधर बेहद छबि श्रीराधा ;
गावैं बपु अनंत धरि सारद तऊ न पूजै साधा।

न्याय काम करवट ह्वै निकसत पिय अरु रूप गुमानी ;
बृंदावन हित रूप कियो बस सो कानन की रानी ।

गिरिधरकविराय (१८०१)

साईं ये न बिरोधिए, गुरु, पंडित, कवि, यार ;
बेटा, बनिता, पौरिया, यज्ञकरावनहार ।
यज्ञ करावनहार राज-मंत्री जो होई,
बिप्र, परोसो, बैद, आपु को तपै रसोई ।
कहि गिरिधर कविराय बात चतुरन के ताईं,
इन तेरह तें तरह दिए बनि आवै साईं ।

नूरमहम्मद (१८०१)

बहेउ पवन लट पर अनुरागे ; लट छितरानि पवन के लागे ।
परी बदन परलट लटकारी ; तपा दिवस भइ निसि अँधियारी ।
मोहि परा दरसन कर चेरा ; हना बान धन आँखिन केरा ।
यह मुख, यह तिल, यह लट कारी ; येतो कहिकै गिरा भिखारी ।

ठाकुर (१८०१)

वा निरमोहिनि रूप कि रासि न ऊपर के मन आनति ह्वै है ;
बारहि बार बिलोकि घरी-घरी सूरति तौ पहिँचानति ह्वै है ।
ठाकुर या मन की परतीति है जो पै सनेह न मानति ह्वै है ;
आवत हैं नित मेरे लिये इतनो तो बिशेष ही जानति ह्वै है ।

दूलह (१८०२)

दीरघ मत सत कबिन के, अरथासै लघु तर्न ;
कवि दूलह याते कियो, कविकुलकंठाभर्न ।

उपमान जहाँ उपमेयता लेइ तहाँ पहलोई प्रतीप गनो ;
कुच से कमनीय बने करिकुंभ कहै कबि दूलह लोग घनो ।
उपमानै जहाँ उपमेयता दै फिरि ताहि अनादरै दूजो भनो ;
सखि नैनन को जान जोम करै इनके सम सोहत कंज बनो ।

सूदन (१८११)

ऊतरु यह दैके, दूत पठै कै, असदखान हिय रोस भर्‌यो ;
बोल्यो सब मीरन, चित के धीरन, जिन न चरन रन उलटि धर्‌यो ।
तुम करौ तयारी, सब इस बारी, मैं दिल यह इतकाद कर्‌यो ;
मुझको तौ लरना, देर न करना, आय साहि का काज पर्‌यो ।

बैरीसाल (१८२५)

करत कोकनद मदहिं रद, तव पद हद सुकुमार ;
भए अरुन अति दबि मनो, पायजेब के भार ।

गोकुलनाथ, गोपीनाथ, मणिदेव (१८२८)

कसि मस्तकहि बितुंड सों, गरजत सुंड उठाय ;
धाय जाय जुग पाय सों, हने तुरग समुदाय ।
हनि तुरगन रथ महि मरदि, अब गरजो गज घोर ;
तबहिं भीम गे द्विरद के, पिछले पग की ओर ।
लगो पिछौंहीं मूक प्रहारन ; घूमन लगो द्विरद गुनि धारन ।
फिरो चक्र सम मैगल जिमि-जिमि; ता सँग फिरो बृकोदर तिमि-तिमि ।
यहि बिधि धरिक घूमि रन करकस ; कूदि सामने गयो अधरकस ।
तब करकुंडल मधि तेहि करिकै : पग सों हनन लगो गज अरिकै ।
तब धरि सुंड घूमि सो भट बर ; गयो मत्त मैगल के उत्तर ।
तेहि छन सोर भयो वहि दल मैं ; भीमहि बध्यो द्विरद यहि पल मैं ।
सो सुनि धरम सोच सों मढ़िकै ; घेर्‌यो गजहिं रथिन सह बढ़िकै ।
तेहि छन नृप अंकुस के चारन ; कियो असंख्य सरन को वारन ।
द्विरद बढ़ाय चलो भय छावन ; पग सों चाहि रथिन मरदावन ।
तब निज द्विरद बढ़ाय सुबीरा ; भिरो दसार्णोधिप रनधीरा ।

बोधा (१८३०)

एक सुभान के आनन पै कुरबान जहाँ लगि रूप जहाँ को ;
कैयो सतक्रतु की पदवी लुटियै लखिकै मुसकाहट वाको ।

सोक जरा गुजरा न जहाँ कवि बोधा जहाँ उजरा न तहाँ को ;
आन मिलै तो जहान मिलै नहिं आन मिलै तौ जहान कहाँ को।

रामचंद्र (१८४१)

लोभ झकझोरन तें, मदन हिलोरन तें,
भारी भ्रम भौंरन तें कैसे थिर रहती ;
दुख-द्रुम-डारन तें, पातक पहारन तें,
कुमति कगारन ते कैसे कै निबहती।
जरा जंतु ओकन के, चिंता जल ढोकन के,
रोग सोक मोकन के झोंक कैसे सहती ;
होते जो न आजु तेरे चरन करनधार,
मैया यह नैया मेरी कैसे पार लहती।

थान (१८४८)

जै लंबोदर संभुसुवन अंभोरुह लोचन ;
चरचित चंदन चंद्रभाल बंदन रुचि रोचन।
मुख मंडल गंडालि गंड मंडित श्रुति कुंडल ;
बृंदारक बर बृंद चरन बंदत अखंड बल।

बेनी प्रवीन (१८७५)

जान्यो न मैं ललिता अलि ताहि जु सोवत माहिं गई करि हासी ;
लाये हिये नख नाहर के सम मेरी तऊ नहिं नींद बिनासी।
लै गई अंबर बेनी प्रबीन ओढ़ाय लटी दुपटी रँग मासा ;
तोरि तनी तन छोरि अभूषन भूलि गई गल देन को फासी।

पद्माकर (१८७६)

मल्लिकान मंजुल मलिंद मतवारे मिले,
मंद-मंद मारुत मुहीम मनसा की है ;
कहै पदुमाकर त्यों नदन नदीन नित,
नागरि नवेलिन की नजरि निसा की है

दौरत दरेरे देत दादुर सु दूदैं दीह,
दामिनि दमंकनि दिसान में दसा की है ;
बद्दलनि बुंदनि बिलोको बगुलानि बाग,
बंगलन बेलिन बहार बरसा की है ।

रामसहायदास (१८७७)

मन रंजन तव नाम को, कहत निरंजन लोग ;
जदपि अधर अंजन लगे, तदपि न नींदन जोग ।
भौंह उचै, अँखियाँ नचै, चाहि कुचै सकुचाय ;
दरपन मैं मुख लखि खरी, दरप भरी मुसुकाय ।

ग्वाल (१८७६)

सोहत सजीले सित असित सुरंग अंग,
जीन सुचि अंजन अनूप रुचि हेरे हैं ;
सील भरे लसत असील गुन साल दैकै,
लाज की लगाम काम कारीगर फेरे हैं ।
घूँघट फरस ताने फिरत फबित फूले,
ग्वाल कवि लोक अवलोकि भए चेरे हैं ;
मोर वारे मन के, त्यों पन के मरोर वारे,
त्योर वारे तरुनी तरंग दृग तेरे हैं ।

चंद्रशेखर (१८८०)

मारे गढ़ चक्कवै हमीर चहुवान चक्र,
डारे बोल गरद मिलाय मद मानी के ;
लोटैं रेत खेत, एकै मोटैं लेत देत,
एकै चोटन समेत लड़े लाड़िले पठानी के ।
हारे, डर मारे, राह बसन हथ्यार डारे,
बाहन सम्हारे कौन भरे परेसानी के ;

भागे जात दिल्ली के अलाउद्दीन वारे दल,
जैसे मीन जाल ते परत दिसि पानी के।

प्रताप (१८८१)

पूजतीं और सबै बनिता जिनके मन मैं अति प्रीति सोहाति है;
कौन की सीख धरी मन मैं चलि कै बलि काहे नजीक न जाति है।
साइति या बरसाइति की, बरसाइति ऐसो न और ललाति है;
कौन सुभाव री तेरो परो बर पूजत काहे हिए सकुचाति है।

(७) परिवर्तनकालिक हिंदी (१८९०—१९२५)

गणेशप्रसाद (१९००)

जोबन पर जिस्के शम्सोक़मर वारी है;
हर गुलशन में उस गुल की गुलज़ारी है।
ज़ंजीर ज़ुल्फ़ जाना ने लटकाली है;
काली है फ़िदा जिस पर नागिन काली है।

द्विजदेव महाराजा मानसिंह (१९०७)

सोंधे समीरन को सरदार मलिंदन को मनसाफलदायक;
किंसुक जालन को कलपद्रुम मानिनी बालन हू को मनायक।
कंत इकंत अनंत कलीन को दीनन के मन को सुखदायक;
साँचो मनोभव राज को साज सु आवत आज इतै ऋतुनायक।

सेवक (१९११)

अँगना मैं बोलाय धनी अँगना कँगना पहिराय दे ओसिनी को;
दछिना दिल खोलि कै दीजै अली री बधाई सुनाय सतोसिनी को।
कबि सेवक पायँ परौं सबके बिधि दाहिनो आजु अदोसिनी को;
तजि औषध मैं तो अराम भई पति आयगो मेरी परोसिनी को।

राजा लक्ष्मणसिंह (१९१७)

मीत के मंदिर जात चली मिलिहैं तहँ केतिक राति मैं नारी;
मारग सूझि तिन्हैं न परै जब सूचिकाभेदि झुकै अँधियारी।

कंचन रेख कसौटी-सी दामिनि तू चमकाइ दिखाइ अगारी ;
कीजियो ना कहुँ मेह कि घोर मरैं अबला अकुलाय बिचारी ।

(८) वर्तमानकालिक हिंदी १६२६—अब तक)

भारतेंदुजी (१६२६)

चूरन खाते यडिटर जात : जिनके पेट पचै नहिं बात :
चूरन अमला वाले खावैं : दूनी रिशवत तुरत पचावैं ।
चूरन पूलिसवाले खाते : सब क़ानून हज़म कर जाते :
चूरन सभी महाजन खाते ; जिससे जमा हज़म कर जाते ।

प्रतापनारायण मिश्र (१६४१)

(ब्राह्मण नामक पत्र के विषय में)

सदुपदेश नितही करैं माँगैं भोजन-मात्र ;
देखौ हम सा जगत मैं कौन दान का पात्र ।

महावीरप्रसाद द्विवेदी (१६५०) वर्तमान

माता है जैसी पूज्य सुनौ हे भाई :
भाषा है उसी प्रकार महासुखदाई ।
माता से पूज्य विशेष देश-भाषा है :
मिथ्या यह हमने बचन नहीं भाषा है ।

श्रीधर पाठक (१६५० वर्तमान)

ओस बुंद ज्यों गिरैं व्योम से कोमल, निरमल, सुखकारी :
त्यों ये मृदुल बचन जोगी के लगे पथिक को दुखहारी ।
नम्र भाव से कीन्ही उसने बिनै समेत प्रनाम :
चला साथ जोगी के हरखित जहँ उसका बिश्राम ।

शिरमौर एवं शशिभाल (१६५८ वर्तमान)

रत्न-जटित उस काल मुकुट मम सुखप्रद चारु चमकता था :
चकाचौंध सारे जग मैं कर दामिनि सरिस दमकता था ।

त्राहि-त्राहि पुहुमी पर पड़ती लख मेरा भ्रू भंग;
सहे किसी ने नहीं एक छिन मेरे अस्त्र उतंग।
वज्रपात सा हुआ व्योम से इस उन्नति पर दुखदाई;
हाय सही न गई जग पितु से मेरी गरिमा प्रभुताई।
उस दयालु ने तो विरचे थे जग नर-मात्र समान;
सहा जाय फिर कैसे उससे दस्यों का अपमान।

रघुनाथप्रसाद (१९६० वर्तमान)

धवल धाम कै ध्वजा नगर की प्रविसि रहीं वन माहीं;
कैधौं ये हिम पूरित भूधर जहँ तहँ तुंग लखाहीं।
रैनि उज्यारी छटा लखे तें यों मन मैं भ्रम व्याप्यो;
जगमगात गोबरधन गिरि कोउ श्रम करि लै इत थाप्यो।

मैथिलीशरण गुप्त (१९६२ वर्तमान)

है जो आपत्ति आगे वह अटल नहीं, शीघ्र ही नष्ट होगी;
कीर्ति श्री आपकी यों प्रलय तक सदा और सुस्पष्ट होगी।
घेरे क्या व्योम में है अविरत रहती सोम को मेघ-माला;
होता है अंत में क्या प्रकट वह नहीं और भी कांतिवाला।

लोचनप्रसाद पांडेय (१९६२ वर्तमान)

जिस कुल में हो जात जगत में ख्यात हुये हो;
जिसमें रहकर भ्रात एक से सात हुये हो।
उसका उदय उपाय हाय यदि तुम्हें न भाया;
व्यर्थ हुआ नर-जन्म हुई निष्फल यह काया।
बंधु वर्ग को प्यार न करना जिसने सीखा;
विनय युक्त व्यवहार न करना जिसने सीखा।
जाति-देश-उपकार न करना जिसने सीखा;
जन्म हुआ निःसार न मरना उस ने सीखा।

युगुलकिशोर मिश्र (ब्रजराज)

समुहात ही मैली प्रभा को धरैं नित नूतन आनिकै फेर्‌यो करैं,
सरसी-ढिग जात मुँदेई लखात, न यादर सों दृग जोर्‌यो करैं ;
ब्रजराजहि तैं नभ ओर चितै नहिं तू भरमै यों निहार्‌यो करैं,
तऊ आरसी कंज ससी सकुचैं इन सों कबलौं मुख मोर्‌यो करैं ।

जगन्नाथदास "रत्नाकर" (वर्तमान)

काहू मिसि आज नंद-मंदिर गुबिंद आगैं,
लेतहि तिहारौ नाम धाम रस-पूर कौ ;
सुनि बहराइ लगे जदपि सराहन-से,
देखि कला करत कपोत अति दूर कौ ।
मृग-मद-बिंदु चारु चटक दुचंद भयौ,
मंद भयौ खौर हरिचंदन-कपूर कौ ।
थहरन लागे कल कुंडल कपोलनि पैं,
थहरन लाग्यौ सीस मुकुट मयूर कौ ।

जयशंकर 'प्रसाद' (वर्तमान)

इस करुणा-कलित हृदय में क्यों विकल रागिनी बजती ?
क्यों हाहाकार स्वरों में वेदना असीम गरजती ?

× × ×

मानस-सागर के तट पर क्यों लोल लहर की घातें ?
कलकल-ध्वनि सेहैं कहती कुछ विस्मृत बीती बातें ?

इन उदाहरणों से जान पड़ेगा कि कुतुबन शेख़ (संवत् १५६०) के समय तक प्रायः कोई भाषा हिंदी में पूर्णरूपेण स्थिर नहीं हुई थी ; कोई किसी भाषा में काव्य करता था, कोई किसी में । आदि में हिंदी प्राकृत से कुछ मिलती-जुलती थी, परंतु पीछे उसमें अवधी भाषा का प्राधान्य-सा रहा । प्रौढ़ माध्यमिक काल (संवत् १५६१) से ब्रजभाषा का बल विशेषतया बढ़ा, परंतु फिर भी तुलसीदास ने

उसका सत्कार न करके अवधी को ही प्रधान माना। उधर कृष्णभक्त व्रजभाषा का प्रयोग करते थे। इस प्रकार कथा-प्रासंगिक कवियों में तुलसीदास का अनुगमन हुआ और शृंगारी कविताओं एवं स्फुट विषयों पर व्रजभाषा का साम्राज्य फैला। यही दशा उत्तरालंकृत-काल तक रही और भाषा दिनोंदिन अलंकृत होती गई, यहाँ तक कि अलंकार-वृद्धि से कविता की शरीर-क्षति होने लगी। इस भारी काल में केवल सीतल (सं० १७८०) ने खड़ी बोली का अच्छा सम्मान किया। परिवर्तन-काल में खड़ी बोली का बल कुछ-कुछ स्थापित हुआ, जो आधुनिक काल में कुछ बढ़ा और भविष्य में उसके बढ़ने की आशा है। अब मातृभूमि-माहात्म्य, भ्रातृ-प्रेम आदि पर भी कवियों का ध्यान गया है। छायावाद और तुकांत-हीन कविता का भी प्रचार हो रहा है। परंतु कुछ दिनों से पद्य-विभाग में कुछ शिथिलता आती देख पड़ती है। श्रुति-कटु का भी अब प्रयोग बढ़ रहा है, जिससे प्राचीन प्रथानुयायी लोग खड़ी बोली को दोष देते हैं। वर्तमान कवियों को उचित है कि भाषालंकारों की भरमार तो छोड़ देवें, पर गुण-दोषों पर अवश्य ध्यान रक्खें। हिंदी-भाषा का प्रधान गुण श्रुति-मधुरता है। इसका जाना उचित नहीं है। प्राचीन प्रथा के कवि अब भी व्रजभाषा में रचना करते हैं। इनकी गणना अब तक खड़ी बोली वाले कवियों से अधिक है। भाषा का संक्षिप्त इतिहास यहीं समाप्त करके अब हम विनोद के मुख्यांश को उठावेंगे।

आदि-प्रकरण

प्रारंभिक एवं पूर्व माध्यमिक हिंदी

आठवाँ अध्याय

पूर्व प्रारंभिक हिंदी

(७००—१३४३)

हिंदी उस भाषा का नाम है, जो विशेषतया युक्तप्रांत, बिहार, बुंदेलखंड, बघेलखंड, छत्तीसगढ़ आदि में बोली जाती है, और सामान्यतया बंगाल को छोड़ समस्त उत्तरी और मध्य-भारत की मातृभाषा है। मोटे प्रकार से इसे भाषा भी कहते हैं। इसकी उत्पत्ति के विषय में दो मत हैं, एक तो यह कि यह संस्कृत की पुत्री है और द्वितीय यह कि इसकी उत्पत्ति प्राकृत से है; अथवा यों कहें कि प्राकृत ही बदलते-बदलते अब हिंदी हो गई है। अधिकतर लोगों का विचार इसी द्वितीय मत पर जमता है, यद्यपि बहुत-से विज्ञ पुरुष अब भी प्रथम मत को ही ग्राह्य समझते हैं। भारतीय लिंग्विस्टिक सरवे में डॉ० ग्रियर्सन ने इस विषय पर बहुत श्रम किया है और उन्हीं के एवं अन्य लेखों के आधार पर पंडित महावीर-प्रसाद द्विवेदी ने 'हिंदी-भाषा की उत्पत्ति'-नामक एक पुस्तक लिखी है। यह निश्चयात्मक समझ पड़ता है कि हिंदी की बहुत अधिक क्रियाएँ प्राकृत से ही निकली हैं, परंतु कुछ संस्कृत, फ़ारसी आदि से भी निकली हुई जान पड़ती हैं। शेष शब्दों को हिंदी ने संस्कृत, प्राकृत, फ़ारसी, अरबी, अँगरेज़ी, चीनी, फ़्रेंच आदि भाषाओं से पाया है और अब भी पाती जाती है।

हिंदी की उत्पत्ति जानने के लिये इसके पूर्ववाली भाषाओं का कुछ वर्णन आवश्यक है। आदिम आर्य लोग तिब्बत, उत्तरी ध्रुव, दक्षिणी रूस, मध्य-एशिया में से चाहे जहाँ से आए हों, पर पहलेपहल वे ख़ोक़ंद और बदख़्शाँ में पहुँचे। वहाँ से कुछ लोग फ़ारस की ओर गए और शेष आर्यावर्त को चले आए। फ़ारस-वाले आर्यों की भाषा के परजिक और मीड़िक-नामक दो भेद हुए। परजिक भाषा बढ़ते-बढ़ते पहलवी होकर समय पर फ़ारसी हो गई। मीड़िक भाषा मीड़िया अर्थात् पश्चिमी फ़ारस में बोली जाती थी। पारसियों का प्रसिद्ध धर्म-ग्रंथ 'अवस्ता' इसी भाषा में लिखा है। ख़ोक़ंद आदि से चलते-चलते सैकड़ों वर्षों में आर्य लोग पंजाब पहुँचे। उस समय तक उनकी भाषा का रूप मीड़िक अर्थात् आसुरी भाषा से बदलकर पुरानी संस्कृत हो गया था। इसी में ऋग्वेद की पुरानी ऋचाएँ लिखी गईं और इसी कारण ऋग्वेद के प्राचीन-तम भागों की भाषा अवस्ता की भाषा से कुछ-कुछ मिलती है। पंजाब में आने से आर्यों की पुरानी संस्कृत यहाँ के आदिम निवासियों की भाषा से, जिसे पहली प्राकृत कह सकते हैं, मिलने लगी। यह गड़-बड़ देखकर आर्यों ने अपनी भाषा का संस्कार करके उसे व्याकरण द्वारा नियम-बद्ध कर दिया। इस प्रकार वर्तमान संस्कृत का जन्म हुआ। यह भाषा पुरानी वेदवाली संस्कृत से कुछ-कुछ पृथक् है। आर्यों ने अपनी भाषा को शुद्ध एवं पृथक् रखने के लिये उसे नियम-बद्ध तो कर दिया, पर संसार का स्वाभाविक प्रवाह किसी के भी रोके नहीं रुकता। आर्यों ने पुरानी प्राकृत को संस्कृत में नहीं घुसने दिया, पर समय पाकर आर्यों और अनार्यों में संपर्क की विशेष वृद्धि से स्वयं संस्कृत पुरानी प्राकृत में घुसने लगी और इस प्रकार पुरानी प्राकृत बढ़ते-बढ़ते मध्यवर्तिनी प्राकृत अर्थात् पाली भाषा हो गई, जो अशोक के समय प्रचलित थी और

जिसमें बौद्धों के अधिकतर धर्म-ग्रंथ लिखे गए। संस्कृत कठिन होने के कारण सर्वसाधारण की भाषा न रह सकी और स्वयं आर्य भी प्राकृत बोलने लगे। इस प्रकार संस्कृत केवल पुस्तकों की भाषा रह गई और सर्वसाधारण में उसका व्यवहार न रहा। अतः बोल-चाल की भाषाओं से उसकी गणना उठ गई। जैसे-जैसे समय बीतता गया वैसे-ही-वैसे दूसरी प्राकृत अर्थात् पाली का भी विकास होता गया, और समय पाकर मागधी, शौरसेनी, मराठी आदि उसके कई विभाग हो गए। इन्हीं अंतिम भाषाओं को अब प्राकृत कहते हैं। वास्तव में यह प्राकृत के तृतीय रूप हैं, परंतु अब द्वितीय रूप को पाली, और प्रथम को पुरानी प्राकृत कहते हैं। प्राकृत के तृतीय रूपों के भी विकास समय के साथ होते गए। व्रजभाषा पश्चिमी विभागों की शौरसेनी प्राकृत की रूपांतर है और पूर्वी भाषा मागधी की। अवधी भाषा शौरसेनी और मागधी के मिश्रण से बनी है। हिंदी को पंडितों ने पूर्वी, माध्यमिक और पश्चिमी-नामक तीन प्रधान भागों में विभाजित किया है। इनके अतिरिक्त राजपूतानी तथा पंजाबी भाषाओं का ठेठ पश्चिमी-नामक एक और प्रधान विभाग हमारी समझ में होना चाहिए। इनका कुछ-कुछ संपर्क गुजराती आदि भाषाओं से भी है। हिंदी के मुख्य उपविभागों में मैथिली, मगही, भुजपुरी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, उर्दू, राजपूतानी, व्रज-भाषा, कन्नौजी, बुंदेली, बाँगरू, दक्षिणी, खड़ी बोली आदि भाषाएँ हैं।

इन उपर्युक्त विकासों में एकाएकी कोई भी नहीं हुआ, वरन् प्रत्येक विकास शताब्दियों में धीरे-धीरे होता रहा। एक देश की भाषा ग्राम-ग्राम प्रति बदलती हुई अधिक दूर चलकर बिलकुल दूसरी भाषा में परिवर्तित हो जाती है, परंतु किन्हीं मिले हुए ग्रामों में भारी हेर-फेर नहीं जान पड़ता। अवधी भाषा बंगाली से

नितांत पृथक् है, पर यह पार्थक्य धीरे-धीरे ग्राम-ग्राम प्रति बढ़ते-बढ़ते हुआ है और यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक स्थान से अवधी भाषा समाप्त होती है और मैथिल का प्रारंभ होता है, अथवा मैथिल भाषा समाप्त होकर बंगाली चलती है। ठीक यही दशा समयानुसार भाषाओं के हेर-फेर की है। अतः ठीक-ठीक यह नहीं कहा जा सकता कि हिंदी का उत्पत्ति-काल क्या है? मोटे प्रकार से इसकी उत्पत्ति प्रायः ७०० संवत् के लगभग समझनी चाहिए, क्योंकि भाषा के प्रथम ग्रंथ का समय संवत् ७७० है।

हिंदी-साहित्य का विषय उठाने के पूर्व यह उचित समझ पड़ता है कि काव्य-लक्षण का निश्चय कर लिया जाय। इस विषय में बाबू जगन्नाथदास "रत्नाकर" ने साहित्य-रत्नाकर-नामक ग्रंथ रचकर बड़ा उपकार किया है। इस ग्रंथ में कई लक्षणों पर विचार किया गया है, जिनमें से एवं अन्यत्र प्राप्त प्रधान-प्रधान लक्षणों का हम यहाँ कथन करते हैं—

(१) तद्दोषौ शब्दावर्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि (काव्य-प्रकाश)

काव्य वह है जिसके शब्द एवं अर्थ अदोष तथा गुणसंपन्न हों, चाहे उसमें कहीं-कहीं स्फुट अलंकार भी न हो।

(२) अद्भुत वाक्यहि ते जहाँ उपजत अद्भुत अर्थ;
लोकोत्तर रचना रुचिर सो कहि काव्य समर्थ।
(साहित्यपरिचय)

(३) रस युत व्यंग्य प्रधान जहँ शब्द अर्थ शुचि होय;
उक्ति युक्त भूषण सहित काव्य कहावै सोय।
(साहित्यपरिचय)

(४) वाक्यं रसात्मकङ्काव्यम्। (साहित्यदर्पण)

(५) रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। (जगन्नाथ पंडितराज)

(६) होय वाक्य रमणीय जो काव्य कहावै सोय। (रत्नाकर)

(७) जा तें अद्भुत सुख सदन शब्द रु अर्थ कबित्त ;
यह लक्षण मैंने कियो समुझि ग्रंथ बहु चित्त ।
(कुलपति मिश्र)

(८) लोकोत्तरानंददाता प्रबंधः काव्यनामभाक् ।
(अंबिकादत्त व्यास)

(९) वाक्य अरथ वा एक हू जहँ रमनीय सु होय:
शिरमौरहु शशिमाल मत काव्य कहावै सोय ।
(हम लोग)

विचार

इन लक्षणों पर विचार करने के पूर्व पाठक को समझ रखना चाहिए कि किसी पदार्थ के लक्षण में यह आवश्यक है कि उसमें से कुछ छूट न रहे और न कोई बहिरंग पदार्थ उसमें आ सके। इन्हीं अवगुणों को अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दूषण कहते हैं। लक्षण को वर्ण्य वस्तु का ठीक रूप दिखाना चाहिए, ज़रा भी बिगड़ा हुआ नहीं। अब हम प्रत्येक लक्षण को उठाकर उसके विषय में अपना मत प्रकट करेंगे।

(१) तद्दोषौ शब्दावर्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि।

इस लक्षणानुसार काव्य का निर्दोष होना आवश्यक है, अर्थात् इस मत से सदोष रचना काव्य नहीं है। उधर प्रसिद्ध आचार्य कुलपति मिश्र ने कहा है कि "ऐसो कबित न जगत में जामें दूषण नाहिं।" यदि इस कथन को अत्युक्ति मान लें, तो भी प्रति सैकड़े ९९ छंदों में कोई-न-कोई दोष दिखलाया जा सकता है। अतः इस लक्षण के मानने से साहित्यशरीर बहुत ही संकुचित हो जायगा। काव्य-दोषों की मनुष्य-देह के काने, लँगड़ेपन आदि से समानता कर सकते हैं, बरन् साधारण दोषों को साधारण रोगों के समान समझ सकते हैं। संसार में ऐसा शरीर खोजना बहुत करके असंभव है कि जिसमें किसी प्रकार का कोई भी रोग न हो। अतः यदि सरुज देह को देह

ही न मानें, तो संसार में प्रायः कोई शरीर ही न रह जायगा। ऐसी दशा में यही कहना पड़ेगा कि ऐसा माननेवाले का मत अशुद्ध है। संसार में रोगहीन देह प्रायः अलभ्य पदार्थ है, परंतु रोग के कारण शरीरों को शरीर ही न मानना नितांत भ्रममूलक है। बहुत करके ठीक यही दशा सदोष रचनाओं की है।

(२) अद्भुत वाक्यहि ते जहाँ उपजत अद्भुत अर्थ;
लोकोत्तर रचना रुचिर सो कहि काव्य समर्थ।

जान पड़ता है कि इस लक्षणकार ने उत्कृष्ट काव्य का कथन किया है; न कि काव्य का; क्योंकि यह कहता है कि इस लक्षणयुक्त काव्य को समर्थ काव्य कहना चाहिए। समर्थ शब्द से उत्कृष्टता की झलक आती है। काव्य-लक्षण के लिये अद्भुत वाक्य एवं अर्थ का होना आवश्यक नहीं। प्रसाद, सुकुमारता एवं अर्थव्यक्ति साहित्य के परमोज्ज्वल गुण हैं। प्रसाद-गुण के लिये प्रसन्नता, सुंदर शब्दार्थ तथा प्रसिद्ध शब्दों की आवश्यकता है, सुकुमारता के लिये कोमल पद मृदु अर्थ, सरस वचन, तथा ललित रचना की और अर्थव्यक्ति में भारी सरलता एवं संदेहहीन अर्थ की। ये गुण गोस्वामी तुलसीदास की रचना में बहुतायत से पाए जाते हैं, परंतु इनमें कोई अद्भुतता नहीं है। एतावता इस गुण का होना न साधारण काव्य के लिये आवश्यक है, न उत्कृष्ट काव्य के लिये।

(३) रसयुत व्यंग्य प्रधान जहँ शब्द अर्थ शुचि होय;
उक्ति युक्त भूषण सहित काव्य कहावै सोय।

इस लक्षणकार ने रस, व्यंग्य एवं अलंकार को काव्य के लिये आवश्यक माना है, जो बात ठीक नहीं है। इसने ऐसे अनुपयोगी शब्दों का भी प्रयोग किया है, जो ठीक भ्रमहीन अर्थों का बोध नहीं कराते हैं। 'जहँ' शब्द से ठीक ज्ञान नहीं होता कि

कहाँ ऐसा होना चाहिए ? जहाँ से एक वाक्य का बोध हो सकता है, एक पृष्ठ का एवं एक पुस्तक का भी। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि कितना बड़ा वर्णन यह लक्षणकार काव्य मानता है। शुचि शब्द भी शुक्ल गुणयुक्त, शुद्ध, शुद्धांतःकरण, निरपराधी आदि कई अर्थों का बोधक है। यदि शब्द विशेष्य के लिये इसका शुद्ध अर्थ मान लें, तो भी ठीक अर्थ समझ में नहीं आता। भाषा में सैकड़ों बिगड़े हुए शब्द अन्य भाषाओं से आए हैं। भाषाओं के विकास में शब्द सदैव रूप बदला करते हैं। तब किस रूप को शुद्ध मान सकते हैं ? यदि वर्तमान समय के प्रचलित रूपों को शुद्ध मानें, तो भी आपत्ति शांत नहीं होती। कविजन श्रुति-कटु बचाने एवं अनेकानेक अन्य कारणों से सैकड़ों विकृत रूपधारी शब्दों का प्रयोग करते हैं। बिहारी की रचना में ऐसे कितने ही शब्द मिलेंगे, परंतु यह नहीं कहा जा सकता है कि जिन छंदों में ऐसे शब्द आए हैं, वह सब काव्य नहीं हैं। बहुत-से ऐसे अच्छे छंद हैं, जिनमें कोई रस नहीं निकलता। उनको काव्य न मानना अनुचित है। व्यंग्य का प्राधान्य साहित्य के लिये आवश्यक नहीं है। प्रसिद्ध कवि देवजी कहते हैं—

> अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणालीन ;
> अधम व्यंजना रस विरस, उलटी कहत नवीन।

इससे प्रकट है कि प्राचीन मत में सव्यंग्य-काव्य अधम समझा जाता था, परंतु देव-काल में भी व्यंग्यहीन कथन काव्य अवश्य माना जाता था, क्योंकि लक्षणायुक्त काव्य मध्यम श्रेणी का था। स्वाभाविक उत्कृष्ट साहित्य भी प्रायः अभिधामूलक होता है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, अलंकार काव्य के लिये आवश्यक नहीं है। बहुतेरे उत्कृष्ट छंदों में भी अलंकार नहीं होते। सुतरां, इस लक्षण का कोई भी गुण यथार्थ नहीं है।

(४) वाक्यं रसात्मकङ्काव्यम् ।

इसमें काव्य के लिये रस ही न केवल प्रधान, वरन् आवश्यक समझा गया है। रस काव्योत्कर्ष के लिये आवश्यक है, परंतु पंडितों का मत है कि रसहीन रचना भी कविता कही जा सकती है। चित्र-काव्य में बहुधा रस का पूर्ण अभाव होता है। इसी प्रकार बहुत से अलंकारयुक्त चामत्कारिक छंदों में कोई दृढ़ रस नहीं होता। क्लिष्ट कल्पना से उनमें कोई रस स्थापित करना अयुक्त है। फिर सर्वत्र इस प्रकार भी प्रत्येक अच्छी रचना तक में पूर्ण रस की कौन कहे, खंडित रस भी नहीं स्थापित किया जा सकेगा। ऐसी दशा में रस काव्य के लिये आवश्यक नहीं कहा जा सकता।

(५) रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम् ।

यह लक्षण अनावश्यक बातों को छोड़कर पहलेपहल केवल रमणीयता को काव्य के लिये आवश्यक मानता है। यही गुण वास्तव में ठीक भी है। कोई भी रचना रमणीय होने से काव्य हो जायगी, चाहे उसमें कोई अन्य ख़ास गुण हो या न हो। रमणीय उसे कहते हैं जो अपने में चित्त के लगाने का सामर्थ्य रखता हो। ऐसे पदार्थ से चित्त को प्रसन्नता अवश्य होगी। परंतु काव्य के लिये केवल एक मनुष्य की रमणीयता अलं नहीं। वह ऐसा होना चाहिए, जिसमें विज्ञ पुरुषों का चित्त रममाण हो। यही गुण इस लक्षणकार ने रक्खा है, क्योंकि यह केवल रमणीयता ढूँढ़ता है, जिससे किसी ख़ास मनुष्य ही का प्रयोजन नहीं है, वरन् विज्ञ पुरुषों का मतलब निकलेगा। यदि किसी मनुष्य से कहा जाय कि उसने एक लक्ष रुपए पाएँ, तो उसे यह वाक्य रमणीय होगा, परंतु औरों को नहीं। एतावता इसे रमणीय नहीं कह सकते। इसीलिये रमणीय का अर्थ लोकोत्तरानंददायक होगा, जिसमें

प्रायः सभी विज्ञ पुरुषों का आनंद उसमें आ जाय। परंतु पंडित-राज का यह लक्षण परम चामत्कारिक होने पर भी कुछ अशुद्धता लिए हुए है। आपने शब्द को काव्य माना है, किंतु विना पूरा वाक्य हुए कोई शब्द काव्य नहीं हो सकता। विना पूरा वाक्य सुने किसी को पूरे भाव का बोध ही नहीं हो सकता, फिर उसमें अलौकिक आनंद कहाँ से आवेगा? दूसरा गड़बड़ यह है कि पंडितराज के मतानुसार काव्य केवल रमणीयार्थप्रतिपादक शब्द से हो सकता है, अन्यथा नहीं, परंतु चित्र-काव्य में बहुत-सी ऐसी रचनाएँ हैं, जो केवल शब्द-चमत्कार से रमणीय हैं, यद्यपि उनमें कोई अर्थ-चमत्कार नहीं। इनको काव्य के लक्षण से नहीं छोड़ा जा सकता, यद्यपि यह मान्य है कि इनमें उत्कृष्ट काव्य का अभाव है। इन कारणों से पंडितराज का लक्षण पूर्णतया शुद्ध नहीं है।

(६) होय वाक्य रमणीय जो काव्य कहावै सोय।

वाक्य उस शब्द-समुदाय को कहते हैं जिसमें कर्ता और क्रिया अवश्य हों और जो कोई पूरा भाव प्रकट करने में समर्थ हो। इसमें शब्द-समुदाय और अर्थ दोनों होते हैं, परंतु भाषा के आचार्यों ने शब्द-समुदाय के गुण-दोषों को वाक्य के गुण-दोष माने हैं और वाक्यार्थ के गुण-दोषों को पृथक् कहा है। यही विचार युक्तियुक्त भी समझ पड़ता है। वाक्य-रमणीयता से सहसा शब्द-चमत्कार ही की ओर ध्यान जाता है, न कि वाक्यार्थ-रमणीयता की ओर। इसी कारण वाक्य-रमणीयता कहने से अर्थ-रमणीयता की अव्याप्ति हो जाती है।

(७) जग ते अद्भुत सुख सदन शब्दरु अर्थ कबित्त।

इस लक्षण में शब्दों का प्रयोग बहुत उपयुक्त नहीं है। पहले तो इसमें वाक्य न लिखकर कवि ने शब्द लिखा है, जो अनुचित है, क्योंकि शब्द से वाक्य का पूरा होना नहीं पाया जाता। फिर

इसमें यह साफ़ नहीं है कि काव्य के लिये शब्द तथा अर्थ दोनों की रमणीयता आवश्यक है, अथवा एक की भी रमणीयता से वाक्य काव्य हो सकता है।

(८) लोकोत्तरानंददाता प्रबंधः काव्यनामभाक्।

इस लक्षण में शब्द-रमणीयता, शब्दार्थ-रमणीयता एवं इन दोनों की रमणीयतावाला कोई भी अर्थ बहुत ठीक प्रकट नहीं होता। फिर प्रबंध शब्द के कई अर्थ हैं। प्रकर्षेण बध्यते इति प्रबंधः। इस हिसाब से सेना का नियम से संचालन, बाजे का नियमानुसार बजना आदि सब काव्य हो जायँगे। यह लक्षण बिलकुल ठीक नहीं है।

(९) वाक्य अरथ वा एकहू जहँ रमनीय सु होय।

उपर्युक्त लक्षणों पर विचार से यह स्पष्ट विदित है कि काव्य के लिये वाक्य में शब्द-रमणीयता, या अर्थ-रमणीयता या शब्दार्थ-रमणीयता का होना आवश्यक है। इनमें किसी के होने से वाक्य काव्य होगा और जितनी विशेष रमणीयता होगी, उतना ही वह उत्कृष्ट होगा। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखकर हमने दोहा के स्वरूप में काव्यलक्षण सं० १९५७ में लिख दिया था। इसमें यह न सोचना चाहिए कि हम औरों के लक्षणों को अशुद्ध ठहराकर अपना शुद्ध बताते हैं। हमने औरों ही के सहारे से शुद्ध लक्षण लिखने-मात्र का साहस किया है। काव्य के शुद्ध लक्षण निर्माण के पथ-प्रदर्शन का महत्त्व केवल जगन्नाथ पंडितराज को प्राप्त है।

इन लक्षणों से प्रकट है कि काव्य गद्य और पद्य दोनों में हो सकता है। गद्य, पद्य और संगीत में छंद छोड़कर मुख्य भेद इतना ही है कि गद्य में हर्ष या शोकोत्पादक भावों thoughts की अपेक्षा विचारों feelings का बाहुल्य रहता है, पद्य में यह

दोनों प्रायः समभाव से होते हैं और संगति में विचारों की विशेष ऊनता होती है। अब हम प्राचीन काल से साहित्य-इतिहास को उठाते हैं।

आजकल प्राचीनतम हिंदी गद्य अथवा पद्य का कोई उदाहरण नहीं मिलता। शिवसिंहसरोज में टाड के आधार पर लिखा है कि भोजराज के पूर्व पुरुष राजा मान संवत् ७७० में अवंती में अच्छे संस्कृत-काव्यवेत्ता थे। उनके यहाँ (१) पुंड अथवा पुष्य बंदीजन ने दोहों में अलंकार-ग्रंथ बनाया। आजकल सिवा नाम के पुष्य की कोई रचना नहीं मिलती, अथवा कम-से-कम हमें नहीं मिली। चित्तौर के रावल खुमान ने संवत् ८६६ से ८९० तक राज्य किया। उनके समय में मुसलमानों का एक भारी धावा भारत पर हुआ था। उस समय बहुत-से राजाओं ने खुमान को सहायता दी और अंत में खुमान ने शत्रुओं को पूर्ण पराजय दी। खुमान ने २४ लड़ाइयों में युद्ध किया। इनका वर्णन (२) एक ब्रह्मभट्ट कवि ने खुमान-रासा में किया था, परंतु दुर्भाग्यवश यह प्राचीन ग्रंथ किसी प्रकार लुप्त हो गया और इसी के सहारे पर अकबर के समय एक द्वितीय खुमान-रासा बना, जिसमें रामचंद्र से लेकर महाराणा प्रतापसिंह के युद्धों तक का वर्णन है। ये बातें टाड-राजस्थान में लिखी हैं। इस प्रकार इस प्राचीन ग्रंथ का भी उदाहरण नहीं मिल सकता। (अ) ईसवी सन् १९१७ (सं० १९७६) के खोज में भाग्यवश भुवाल कवि-कृत भगवद्गीता-नामक सं० १००० का रचा हुआ ऐसा ग्रंथ मिल गया जिसके उदाहरण भी प्रस्तुत हैं। ग्रंथ कामवन मथुरा के कन्यापाठशाला में श्रीमान् देवकीनंदन के पास है। इस ग्रंथ-रत्न से हिंदी-भाषा के इतिहास की प्राचीनता निश्चय-पूर्वक सिद्ध हुई है। कवि युक्त-प्रांत का होने से भाषा में राजपूतानी आदि के शब्द नहीं हैं, जिससे भाषा में कुछ नवीनता का संदेह उठना

संभव था किंतु ग्रंथ में समय साफ़ दिया है और ध्यान-पूर्वक देखने से भाषा भी असंदिग्ध है। उदाहरण—

संबत कर अब करौं बखाना; सहस्र सो संपूरन जाना।
माघ मास कृष्णा पख भयऊ; दुतिया रबि तृतिया जो भयऊ।
तेहि दिन कथा कीन मन लाई; हरि के नाम गीत चित आई।
सुमिरौं गुरु गोबिंद के पाऊँ; अगम अपार है जाकर नाऊँ।
कहूँ नाम युत अंतरजामी; भगत भाव देहु गरुड़ागामी।

सुना जाता है कि संवत् १०७९ के लगभग जब सुलतान महमूद ने (२) राजा नंद कालिंजर-नरेश पर आक्रमण किया था, तब राजा ने उसकी प्रशंसा का एक छंद लिखकर भेजा और सुलतान ने प्रसन्न होकर कालिंजर की चढ़ाई उठा ली, तथा १४ क़िले और राजा को दिए। परंतु हमें फ़िरदौसी का हाल स्मरण कर इस बात पर विश्वास नहीं होता। अस्तु।

नाम—(अ) जिनबल्लभ सूरि

ग्रंथ—वृद्ध नवकार।

रचना-काल—११६७ के पूर्व।

विवरण—सं० ११६७ में जैन-श्वेतांबराचार्य श्रीअभयदेव सूरि के पद पर आचार्य हुए तथा उसी वर्ष इनका देहांत भी हुआ, आप बड़े प्रभावशाली तथा पंडित थे। आपने संस्कृत तथा प्राकृत में बहुत ग्रंथ रचे हैं।

उदाहरण—

किं कप्पतरु रे अयाण चिंतउ मण भितरि;
किं चितामणि कामधेनु आराहौ बहु परि।
चित्रावेली काज किसे देसंतर लंघउ;
रयण रासि कारण किसे सायर उल्लंघउ।
चौदह पूरब सार युगे एक नवकार;

सायल काज महियल सरै दुत्तर तरै संसार।
इकजीह इण मंत्र तणों गुण किता बखाणूं;
नाण हीन छउ मत्थ एह गुण पार न जाणूं।
जिम से त्रुंजै नित्थ राउ महिमा उदयवंतौ;
तिम मंत्रह धुरि एह मंत्र राजा जयवंतौ।
अड़ संपय नव पय सहित इगसठ लंघु अक्षर;
गुरु अक्षर सत्तेव एह जाणों परमाक्षर।
गुरु जिनवल्लह सूरि भणे सिव सुर के कारण;
नरय तिरिय गट्ट रोग सोग बहु दुःख निवारण।
जल थल पव्वय वन गहन समरण हुवे इक चित्त;
पंच परमेष्टि मंत्रहतणी सेवा देज्यो नित्त।

साद का पुत्र (४) मसऊद भी हिंदी का कवि था। इसका समय संवत् ११८० के लगभग समझना चाहिए।

(५) कुतुबअली ने हिंदी-काव्य में अन्हलपुर के महाराजा सोलंकी सिद्धराज जयसिंह देव को इस विषय का छंदोबद्ध प्रार्थना-पत्र दिया था कि लोगों ने उसकी मसजिद खोद डाली। महाराज ने मसजिद फिर से बनवा दी। इन महाराज का राजत्व-काल संवत् ११५० से १२००पर्यंत रहा। अतः यही समय इस कवि का समझना चाहिए।

(६) साँईदान चारण (सोलगा) बीकानेरवाले ने संवत् ११६१ में संमतसार-नामक ग्रंथ रचा। खोज में इसका नाम संवत्-सार लिखा है।

(७) अकरम फ़ैज डीडवाँणा माड़वार-निवासी ने संवत् १२०५ से १२५८ तक वर्तमान काव्य की रचना और वृत्तरत्नाकर का अनुवाद किया। इसके आश्रयदाता महाराज माधवसिंह जयपुर-नरेश थे। इस कवि का जन्म-काल संवत् ११७६ सुनने में आया है। हमारे मत में (८) चंदवरदाई ने १२२५ संवत् से १२४६ तक

कविता की। १२२९ से प्रथम की खोज में भुवाल रचित भगवद्गीता का हिंदी-अनुवाद मिला है, और कोई भी गद्य अथवा पद्य-काव्य अब नहीं मिलता, अथवा अप्रसिद्धि के कारण साधारण मनुष्यों को अप्राप्त है और चंद तथा भुवाल के अतिरिक्त प्रारंभिक लेखों के उदाहरण अब केवल रावल समरसिंह और महाराजा पृथ्वीराज के दानपत्रों में मिलते हैं। काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के खोज में नव ऐसे दानपत्र मिले हैं। उनमें अनंद-संवत् लिखा है ; सो प्रचलित संवत् उसमें ६० जोड़ देने से मिल सकता है। उन लेखों में से संवत् १२२६ और १२३५ के दो लेख हम यहाँ पर उद्धृत करते हैं—

सही

स्वति श्री श्री चीत्रकोट महाराजाधीराज तपे राज श्री श्री रावल जी श्री समरसी जी बचनातु दा अमा आचारज ठाकर रुसीकेष कस्य थाने दलीसु डायजे लाया अणी राज में ओषद थारी लेवेगा ओषद ऊपरे माल की थाकी है ओजनाना में थारा बंसरा टाल ओ दुजो जावेगा नहीं ओर थारी बेठक दली में ही जी प्रमाणे परधान बरोबर कारण देवेगा ओर थारा बंस क सपूत कपूत वेगा जीने गाम गोणों अणी राज में खाय्या पाय्या जायेगा ओर थारा चाकर घोड़ा को नामो कोठार सूं मला जायेगा ओर थूं जमाखातरी रीजो मोई में राज थान बाद जो अणी परवाना री कोई उलंगण करेगा जी ने श्री एक लींग जी की आण हे दुबे पंचोली जानकी दास सं० ११३६ काती बीद ३

अर्थ

ठीक

श्री संपन्न चित्तौर स्थान के ठीक शासक महाराजाधिराज तपे-राज श्री श्री रावलजी समरसी जी की आज्ञा से आचार्य ठाकुर ऋषीकेश को दिया गया। हम तुमको दिल्ली से दायज में लाए हैं। इस राज्य में तुम्हारी ओषध की जायगी। ओषध-विभाग के

तुम निरीक्षक रहोगे। ज़नाने में तुम्हारे वंशधरों को छोड़कर दूसरा नहीं जायगा। दिल्ली में जैसे तुम्हारी दरबारी बैठक प्रधान के पास थी वह यहाँ भी रहेगी। तुम्हारे वंशज चाहे सपूत हों चाहे कपूत, उन्हें जागीर का गाँव खाने-पीने को मिलेगा और घोड़ा भी मिलेगा, और तुम्हारे घोड़े और नौकरों का पालन सरकारी कोठार से होगा। तुम ख़ातिरजमा रक्खो और मोई-ग्राम में अपना घर बनाओ। जो कोई इस परवाने को उल्लंघन करे उस पर श्रीएकलिंगजी का क्रोध पड़े। यह आज्ञा दुवे पंचोली जानकीदास के द्वारा दी गई। कार्त्तिक बदी ३, संवत् ११३९।

सही

श्री श्री दलीन महाराजं धीराजंनं हिंदुस्थानं राजंधानं संभरी नरेस पुरबदली तषत श्री श्री माहानं राजंधीराजंनं श्री पृथीराजी सु साथंनं आचारज रुषीकेस धनंत्रि अप्रन तमने का का जीनं के दुवा की आरामं चश्रोजीन के रीजं में राकड़ रुपीआ २०००) तुमरे आहाती गोड़े का परचा सीवाञ आवेंगे। पजानं से इनं को कोई माफ करेंगे जीन को नेर को के अधंकारी होवेंगे सई दुवे हुकम के हडमंत राञ संमत ११४२ वर्षे आसाड सुदी १३

अर्थ

ठीक

श्री श्री महाराजाधिराज पृथ्वीराजजी (शासक) सुस्थान दिल्ली पूर्वी हिंदुस्तान के महाराजाधिराज संभरी राजाओं की राजधानी ने आचार्य ऋषीकेश धन्वंतरि को (दिया)। अपर तुमने काकाजी की दवा करके उन्हें अच्छा किया है, जिस कारण २०००) नक़द और हाथी घोड़े का ख़रचा तुम्हें राजकोष से भेजा जायगा। इस आज्ञा के पूरे होने में जो कोई बाधा करेंगे वे नरक जायँगे। हनुमंत-राय द्वारा यह आज्ञा हुई। संवत् ११४२, आषाढ़-सुदी १३।

इनमें से प्रथम लेख में राजपूतानी भाषा का संसर्ग है और द्वितीय उस समय की साधारण हिंदी में है। इस समय देश में कविता की भी अच्छी चर्चा थी, जैसा कि चंद बरदाई के रासो से प्रकट है। चंद कवि का समकालीन (९) जगनिक बंदीजन भी था, जो महोबा के राजा परिमाल के यहाँ रहता था। इस कवि ने आल्हा बनाया था, जो अब तक गाया जाता है, पर अब का आल्हा केवल ढंग में शायद जगनिक से मिलता हो। जगनिक का एक भी छंद अब नहीं मिलता। इसी समय के एक (१०) केदार कवि का भी नाम शिवसिंहजी ने लिखा है, पर उसके अस्तित्व का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता और न उसकी कविता ही देख पड़ती है। शिवसिंहसरोज में कन्नौज के राजा बरवै सीता को भी कवि माना गया है, परंतु इस नाम का कोई राजा कन्नौज में इस समय नहीं हुआ। (११) बारदरवेणा-नामक एक भाट कवि महाराज जयचंद के पुत्र शिवजी के साथ था, पर उसकी भी कविता हस्तगत नहीं होती। सरोज में चकेंदावाले एक अनन्य दास की कविता पृथ्वीचंद राजा के समय में लिखी है, जिसका काल संवत् १२२५ में कहा गया है। उदाहरण—

का होत मुड़ाए मूड़ बार; का होत रखाए जटा-भार।
का होत भामिनी तजे भोग; जौं लौं न चित्त थिर जुरै जोग।
थिर चित्त करै सुमिरन मँझार; ऊपर साधै सब लोकचार।
सुख मारग यह पृथिचंदराज; यहि सम न आन तम है इलाज।

यह भाषा बिलकुल आधुनिक है और उस समय की नहीं हो सकती। जान पड़ता है, पृथ्वीचंद-नाम से सरोजकार को पृथ्वीराज का भ्रम हो गया, अतः उन्होंने इतना प्राचीन संवत् लिख दिया। यह कविजी वास्तव में अक्षर अनन्य हैं, जिनका वर्णन उचित स्थान पर इस ग्रंथ में मिलेगा। चंद-कृत रासो से प्रकट होता है

कि उस समय राजदरबारों में हिंदी का अच्छा मान था और प्रत्येक दरबार में कवि रहते थे। इससे देश में भी हिंदी-कवियों का बहुतायत से होना अनुमान-सिद्ध है, परंतु काल-गति से उन कवियों के नाम तक अब ज्ञात नहीं हैं। इस समय के ज्ञात कवियों में ब्राह्मण एक भी न था। इससे सिद्ध है कि ब्राह्मण अब तक संस्कृत को प्रधान मानकर हिंदी को तुच्छ समझते थे। आगे चलकर केशव-दास तथा तुलसीदास तक भाषा-कविता करने में कुछ लज्जा-सी बोध करते थे।

(८) महाकवि चंद बरदाई

हिंदी का वास्तविक प्रथम कवि चंद बरदाई ही कहा जा सकता है और इसका रासो अब तक प्रसिद्ध है। इसके पहले हिंदी प्रायः नाम-मात्र को पाई जाती है। इस महाकवि की गणना हमने हिंदी के नव सर्वोत्तम कवियों में की है। इनका जन्म अनुमान से संवत् ११८३ में लाहौर में हुआ था, परंतु यह बाल्यावस्था ही से अजमेर में रहने लगा। ये ब्रह्मभट्ट थे और इसी कारण जान पड़ता है कि इन्हें हिंदी-कविता से रुचि थी। अजमेर में रहते-रहते चंद पृथ्वी-राज का कृपापात्र हो गया और जब उन्होंने दिल्ली का राज्य पाया, तब उनके तीन अमात्यों में चंद भी एक हुआ। इसका पृथ्वीराज के यहाँ बहुत मान था और यह स्वजनों की भाँति प्रतिष्ठा पाता था। जिस समय पृथ्वीराज की भगिनी पृथाकुँवरि का विवाह चित्तौर-नरेश समरसिंह के साथ हुआ था, तब चंद-पुत्र जल्हन को रावलजी ने दायज में पाया था। चंद के १२ पुत्रों में जान पड़ता है कि केवल जल्हन ही सुकवि था। एक बार मंत्री कैमास एक खत्री-बालिका पर आसक्त होकर पृथ्वीराज को छोड़ उसके शत्रु भोराभीमंग से मिल गया और नागौर पर उसने भीम का अधिकार करा दिया। इस समय चंद ने ससैन्य जाकर भीमंग के दल को परास्त करके

जान पर खेलकर कैमास को समझाया और इस प्रकार उसे फिर पृथ्वीराज का सहायक बनाया। जब संवत् १२४८ में पृथ्वीराज मोहम्मद ग़ोरी द्वारा पकड़े गए, तब चंद ने अपनी रचना जल्हन को देकर अपने स्वामी के उद्धारार्थ ग़ोर-देश को प्रस्थान किया और वहीं स्वामी-समेत उनका संभवतः सं० १२४९ में देहांत हुआ। चंद के पिता वेण और गुरु गुरुप्रसाद थे।

चंद ने एक-मात्र ग्रंथ पृथ्वीराज-रासो बनाया, जो प्रायः ढाई हज़ार पृष्ठ का है। इसमें कोई ढाई सौ पृष्ठों में और-और विषय वर्णित हैं और शेष ग्रंथ में पृथ्वीराज का हाल बड़े विस्तार-पूर्वक लिखा है। कुछ पंडितों को संदेह हो गया है कि रासो उस समय का ग्रंथ नहीं है, वरन् किसी ने सोलहवीं शताब्दी में चंद के नाम से उसे बना दिया। ऐसा कथन रासो में फ़ारसी-शब्दों के आने तथा उसकी समय-विषयक ज़ाहिरी अशुद्धियों के कारण किया गया है, परंतु यह संदेह उठना न चाहिए था और पंडितों के बहुमत का झुकाव इसी ओर समझ पड़ता है कि रासो जाली नहीं है। चंद स्वयं मुसलमानी राज्य में उत्पन्न हुआ था और उस समय पृथ्वीराज के राज्य की सीमा यवन-राज्य से मिली हुई थी। व्यापारिक तथा राजनीतिक संबंध से भी मुसलमानों का यातायात यहाँ विशेष रूप से था। अतः यदि सैकड़े में सात-आठ शब्द फ़ारसी के चंद के काव्य में पाए जायँ, तो वह कोई संदेह का कारण नहीं हो सकते। संवतों में भी विचार करने से संदेह निर्मूल ठहरता है। चंद का दिया हुआ प्रत्येक संवत् वास्तविक संवत् से ९० वर्ष पीछे है। इससे जान पड़ता है कि उसके संवत् अटकलपच्चू नहीं हैं, वरन् किसी दृढ़ आधार पर चलते हैं। कवि के अज्ञान के कारण यह फेर नहीं जान पड़ता, क्योंकि चाहे अन्य संवतों में गड़बड़ी रह भी जाती, परंतु शहाबुद्दीन द्वारा भारत-विजय का संवत् अशुद्ध नहीं

हो सकता था, क्योंकि जो कवि ऐसी छोटी-छोटी बातों तक के जानने का श्रम स्वीकार करेगा, जैसी कि रासो में लिखी हैं, वह भारत-पराजय का शुद्ध समय अवश्यमेव जान लेगा। चंद ने एक स्थान पर लिखा भी है कि वह विक्रम का अनंद-संवत् लिखता है। जान पड़ता है कि यह अनंद-संवत् साधारण संवत् से ९० वर्ष पीछे था। यह क्यों नब्बे वर्ष पीछे था, इसका निर्विवाद कारण अभी तक स्थिर नहीं हो सका है, परंतु इसका ऐसा होना निश्चित है।

रासो में बड़ा ही सजीव वर्णन है और यह जान पड़ता है कि जैसे-जैसे घटनाएँ होती गईं वैसे ही उनकी रचना कवि करता गया है। इसमें बहुत-से युद्धों के वर्णन कई स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रकार से किए गए हैं और वे सब प्रशंसनीय हैं। इसी प्रकार मृगया, नख-शिख आदि के वर्णन इसमें बहुत ही मनोहर हुए हैं और नीति, वसंत, उपवन, बाग, पक्षी, तलवार, सवारी, प्रेम, सिंह, वन, वर्षा, शरद्, भोजन, राज्याभिषेक, विवाह, स्तुति आदि सभी विषयों के चंद ने उत्कृष्ट रीति से सफलता-पूर्वक वर्णन किए हैं। उपमा, रूपक आदि का भी समावेश चंद ने अपने काव्य में अच्छे प्रकार से किया है। रासो में प्रधानतया युद्ध, मृगया और स्त्रियों का वर्णन है और विशेषतया यह शृंगार-प्रधान ग्रंथ है। चंद ने आदिम समय की भाषा का व्यवहार किया, जिसमें संस्कृत और फ़ारसी के अतिरिक्त कन्नौजी, सौरसेनी, अवधी, मागधी, राजपूतानी और पंजाबी भाषाओं का प्रयोग हुआ है। इन्होंने विविध छंद लिखे हैं और छप्पै को विशेष आदर दिया है। कुल मिलाकर चंद एक बड़ा ही उत्कृष्ट कवि है।

उदाहरण—

हरित कनक कांति कापि चंपेव गोरी,
रसित पदुम गंधा फुल्ल राजीवनेत्रा;

मरज जलज शोभा नाभिकोशं सरोजं,
चरण कमल हस्ती लीलया राजहंसी।
नमो आदि नाथं स्वयंभू-सनाथं ; नहीं मात तातं न को मंगि बातं।
जटा जूटयं सेषरं चंद्र भालं ; उरं हार उद्दारयं मुंड मालं।
अनीलं असन्नं उपव्वीत राजं ; कलं काल कूटं करं सूल साजं।
बरं अंग ओधूत बिम्भूत ओपं ; प्रलै कोटि उग्रंसि कालं अनोपं।
करी चर्म कंधं हरी पारि धानं ; बृषं बाहनं बास कैलास थानं।
उमा अंग बामं सुकामं पुरष्षं ; सिरं गंग नैत्रं त्रयं पंच मुष्षं।
नमं संभवायं सरव्वाय पायं ; नमो रुद्रयायं बरद्दाय सायं।
पसू पत्तये नित्तये सुग्गयाए ; कपर्दी महादेव भीमं भवाए।
नैवां दुष्य न सुष्य साहस रने नैवां न कालं कृतं
नैवां मात पिता न चैव धनयं नैवां न कित्ती रतं ;
नैवां नं हित मित्त साजन रसं नैवां न किं रुष्टयं
त्वं देवं तुअ सेव देव मरनं तोयं जयं राजयं।
सीतल बारि सुचंग तहां गय चल्लि निसाचर ;
लगि पियास स्रम अंग बारि पिन्नो अँदोलिबर।
भौ सीतल सब अंग करै अति बारि विहारह ;
रिष हारिफ गुह तपै सोर सुनि आप निहारह।
दिषि प्रबल रिष्ष पुछयो प्रसन कवन रूप कीलै सुजल ;
निसि मद्धि अद्ध राषिस बचहि पाइ परस पुब्बह सकल।
ढिंग जुग्गिनि पुर सरित तट अचवन उदक सुआय ;
तहँ इक तापस तप तपत ताली ब्रह्म लगाय।
ताली षुल्लिय ब्रह्म दिष्षि इक असुर अदम्भुत ;
दिघ्घ देह चख सीस मुष्ष करुना जस जप्पत।
तिन ऋषि पुच्छिय ताहि कवन कारन इत अंगम ;
कवन थान तुम नाम कवन दिसि करिय सुजंगम।

सो नाम ढुंढ बीसल नृपति साप देह लब्भिय दयत ;
छुट्टन सु तेह गंगा दरस तजन देह जन मंत कृत ।
दिसि बाच बाल दानव सुराज ; सज्यो सु अप्पवर बचन साज ।
उड़ि चल्यो अप्प कासी समग्ग ; आयो सु गंग तट कज्ज जग्ग ।
सत अट्ठ षंड करि अंग अग्घि ; होमे सु अप्प बर मद्धि हव्वि ।
मंग्यो सु ईस पहि बर पसाय ; सत अट्ठ पुत्र अवतरन काय ।
उतपत्ति बास सामंत चंद ; पाधरी छंद अखै सु बंद ।
दस तीन हुए दिल्ली प्रमान ; हरि सिंघ बसै गड्ढह बयान ।

जगनिक और बारदरबेणा चंद के समकालीन थे । चंद के पीछे उसका पुत्र (१२) जल्हन ही प्रधान कवि हुआ । चंद के कमला और गौरी-नामक दो स्त्रियाँ थीं, जिनसे उसके दस पुत्र और राजबाई-नामक एक पुत्री उत्पन्न हुई । चंद लाहौर का वासी ब्रह्मभट्ट था, परंतु पृथ्वीराज चौहान का राजकवि होने से वह दिल्ली में रहता था । उसने अपने पुत्रों का वर्णन इस प्रकार किया है—

देहति पुत्र कवि चंद सूर सुंदर सुज्जानं ;
जल्ह बल्ह बलिभद्र कबिय केहरि बक्खानं ।
बीरचंद अवधूत दसम नंदन गुन राजं ;
अप्प अप्प क्रम योग बुद्धि भिन भिन कर काजं ।
जल्हन जिदाज गुन साज कवि चंद छंद सायर तिरन ;
अप्पौजि दत्त रासो सरस चल्यो अप्प रज्जन सरन ।

रासो में यह वर्णन है कि जल्हन रैनसी पृथ्वीराज के पुत्र के साथ खेलता था । इसके पीछे पृथा कुँवरि के विवाह में पृथ्वीराज ने इसे राणा समरसिंह को दायज में दे दिया । इस विवाह का समय रासो में नहीं लिखा है, परंतु इसके कुछ ही साल पीछे पृथ्वीराज ने कोष खुदाया था, जिसका समय १२२८ संवत् रासो में दिया है। हमने नवरत्न में प्रमाण देकर चंद की अवस्था ६५ या ६६ साल की

मानी है और उसका मृत्यु-काल संवत् १२४६ के लगभग है, सो उसका जन्म-काल संवत् ११८३ निकलता है। जल्हन उसका चौथा पुत्र था और ये पुत्र दो माताओं के थे, सो संभवतः चंद की बीस-बाईस वर्ष की अवस्था में जल्हन उत्पन्न हुआ होगा। पृथा कुँवरि का विवाह संवत् १२२५ के लगभग हुआ था और उस समय जल्हन इतना गुणी हो चुका था कि रावल समरसिंह ने उसे सहठ दायज में लिया। अतः उसका जन्म-काल संवत् १२०५ के लगभग बैठता है। जब पृथ्वीराज संवत् १२४८वाले युद्ध में शहाबुद्दीन ग़ोरी द्वारा पकड़ लिए गए, तब चंद उनके छुड़ाने के विचार से ग़ोर गया। उस समय उसने लिखा है कि उसने जल्हन को रासो देकर ग़ज़नी की ओर प्रस्थान किया। यथा—

पदति पुत्र कबि चंद कै सुंदर रूप सुजान ;
इक्क जल्ह गुन बावरौ गुन समुंद ससि मान।
आदि अंत लगि बृत्ति मन ब्रन्नि गुनी गुनराज ;
पुस्तक जल्हन हत्थ दै चलि गज्जन नृप काज।

इसके पीछे रासो में जो वर्णन है, वह सब जल्हन-कृत है। जान पड़ता है कि पृथ्वीराज के अंतिम संवत् १२४८वाले युद्ध का भी कुछ भाग जल्हन ही ने बनाया, क्योंकि चंद उस समय ग़ोर जाने की शीघ्रता में था, सो इस वर्णन को उसे अधूरा ही छोड़ना अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है।

रासो से अपने संबंध को जल्हन ने इस प्रकार लिखा है—

प्रथम बेद उद्धार बंभ मच्छहत्तन किन्नो ;
दुतिय बीर बाराह धरनि उद्धरि जस लिन्नो।
कौमारक नभ देस धरम उद्धरि सुर सष्यिय ;
कूरम सूर नरेस हिंद हद उद्धरि रष्यिय।

रघुनाथ चरित हनुमंत कृत भूप भोज उद्धरिय जिमि ;
पृथिराज सुजस कवि चंद कृत चंद नंद उद्धरिय तिमि ।

पृथ्वीराज-कृत अंतिम युद्ध के पीछे जल्हन ने रासो में बानवेध और रैनसी समय कहे । इनकी कविता चंदीय कविता ही के समान है । उसमें उतनी उत्कृष्टता तो नहीं पाई जाती, परंतु फिर भी वह परम प्रशंसनीय है । ढंग और बोलचाल में चंद-काव्य से वह बिलकुल मिलती है । दिल्ली का हाल वर्णन करते हुए भी जल्हन सदैव चित्तौर ही के राज्य में रहा । कहते हैं कि मेवाड़-राज्य का "राजौरा राय"-वंश जल्हन से ही प्रारंभ होता है ।

यह किंवदंती प्रसिद्ध है कि शहाबुद्दीन ग़ोरी को यह विदित हुआ कि पृथ्वीराज शब्दवेधी बाण चलाना जानते हैं; अतः उसने उनका यह कौशल देखना चाहा । वह दुमंज़िला मकान पर जा बैठा और एक तोता पिंजड़े में वहीं टाँगा गया । तब नेत्र-हीन पृथ्वीराज को नीचे बुलाकर अपने मुसाहबों से उसने चौहानराज-प्रति कहलाया कि वे निशाना लगावें । इस पर पृथ्वीराज ने उत्तर दिया कि हम महाराज हैं, नौकरों के कहने से निशाना नहीं लगा सकते । हाँ यदि बादशाह अपने मुख से आज्ञा दें, तो कोई हर्ज नहीं है । चंद भी उस समय पृथ्वीराज के साथ था । इस पर बादशाह ने स्वयं आज्ञा दी कि हाँ निशाना लगाओ । उसी समय चंद ने दोहा द्वारा पृथ्वीराज से पूरा वर्णन शहाबुद्दीन की बैठक इत्यादि का करके कहा कि इस समय अब चूकना न चाहिए । यथा—××× अंगुल चारि प्रमान । सात बार तब चुक्कियो अब न चुकु चौहान ।

पृथ्वीराज ने तुरंत बाण संधानकर मारा, जिससे ग़ोरी मरकर गिर गया । इस कहावत का प्रमाण इतिहास में नहीं मिलता, परंतु रासो में इस विषय पर यह छंद दिया है—

नयन बिना नरघात कहौ ऐसी कहुँ किद्धी ;
हिंदू तुरुक अनेक हुए पै सिद्धि न सिद्धी।
धनि साहस धनि हथ्थ धन्य जस बासनि पायो ;
ज्यों तरु छुट्टै पत्र उड़त अप सतियो आयो।
दिक्खैं सुसथ्थ यौं साह कौ मनु नक्षित्र नभ तें टस्यो ;
गोरी नरिंद कबि चंद कहि आय धरप्पर धम पस्यो।

जल्हन की कविता से उदाहरण-स्वरूप दो छंद ऊपर दिए जा चुके हैं और दो-एक छंद नीचे लिखे जाते हैं। यथा—

पस्यो संभरी राय दीसै उतंगा ; मनौ मेर बज्री किय शृंग भंगा।
जिनैं बार बारं सुरत्तान साह्यो ; जिनैं भीज के भीम चालुक गाह्यो।
जिनैं भंजि मैवात द्वै बार बंध्यो ; जिनैं नाहरं राइ गिरनार संध्यो।
जिनैं भंजि थट्टा सुकढ्यो निकंदं ; जिनैं भंजि महिपाल रिन थंभ दंदं।
जिनैं जीति जद्दौ ससीब्रत्त आनी ; जिनैं भंजि कमधज्ज रक्खो जु पानी।
जिनैं भंजि षंडा सुउज्जैन मांही ; परंमार भीमंग पुत्री बिबाही।
जिनैं दौरि कनवज्ज साहाय कीयो ; जिनैं कंगुरा लेय हम्मीर दीयो।
जिनैं बीलि द्वज बालुका षेत ढाह्यो ; जिनैं गाहिरा पंग संजोग लायो।

इस जल्हनवाले लेख के लिखने में हमें बाबू श्यामसुंदरदासजी से बहुत सहायता मिली है।

जैसे चंद के पहलेवाले सब कवियों के विषय में निश्चय बहुत कम है, वैसे ही जल्हन के कुछ ही पीछेवाले कुछ कवियों के बारे में भी संदेह बना ही रहता है।

(१२) भाग्य-वश इस काल का भी एक कवि मोहनलाल द्विज सं० १९७६ के खोज में मिला है। इसका ग्रंथ पत्तलि है जो सं० १२४७ में बना। यह बलदाऊ ज़िला मथुरा के पंडित श्यामलाल शर्मा के पास है। इसमें भगवान् के विवाह में नंद के ज्योनार का वर्णन उत्कृष्ट छंदों में है।

उदाहरण—

सुनो कहौं यह संवत जानो ; बारह सौ जो सैंतालानो ।
सावन सुदि सातन मन रंगी ; छंद तृभंगी पत्तलि चंगी ।
शीश भाल श्रुति नासिका ग्रीवा उर कटि बाहु ;
मूल पानि अँगुरी चरन भूषन रचि अवगाहु ।

नाम—($१^{२}_{२}$) अनन्यदास ।

ग्रंथ—अनन्ययोग ।

कविताकाल—१२७९ के पूर्व ।

विवरण—चकपेंदवा ज़िला गोंडा-निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण तथा पृथ्वीराज चौहान के समसामयिक थे ।

सरोज में लिखा है कि किसी (१३) कवि ने अन्हलवाड़े के महाराज कुमारपाल के नाम पर कुमारपाल-चरित्र-नामक एक ग्रंथ संवत् १२२० में बनाया । सरोज में चंद का समय १०१८ लिखा है, यद्यपि वास्तव में वह १२२९ से १२४९ तक है । इस हिसाब से इस ग्रंथ का समय लगभग संवत् १३०० के पड़ता है, पर इसका कोई छंद हमारे देखने में नहीं आया ।

नाम—($१^{३}_{१}$) धर्मसूरिजैन ।

ग्रंथ—जंबूस्वामी-रासा ।

रचनाकाल—१२६६ ।

विवरण—महेंद्रसूरि के शिष्य थे ।

उदाहरण—

जिन चउ विस पय नमेवि गुरु चरण नमेवि ;
जंबू स्वामिहि तणूं चरिय भविउ नि सुणेवि ।
करि सानिध सरसत्ति देवि जीयरय कहाणउ ;
जंबू स्वामिहिं गुण गहण संखेवि बखाणउ ।
जंबु दीवि सिरि भरत खित्ति तिहिं नयर पहाणउ ;

राज ग्रह नामेण नयर पुहुवी बक्खाणउ।
राज करइ सेणिय नरिंद नरवर हं जु सारो;
तासु तणइ बुद्धिवंत मति अभय कुमारो।

नाम—($\frac{१३}{२}$) विजयसेन सूरि जैन।

ग्रंथ—रेवंतगिरि-रासा।

रचनाकाल—१२८८।

विवरण—वस्तुपाल मंत्री के गुरु थे।

उदाहरण—

परमेसर तित्थेसरह पय पंकज पणमेवि;
भणि सुरास रेवंत गिरि-अंबकि दिवि सुमिरेवि।
गामागर पुर वरग गहण-सरिसरवरि सुप एसु;
देवि भूमि दिसि पच्छिमह मणहरु सोरठ देसु।
जिणु तहिं मंडल मंडणउ मरगय मउड महंतु;
निम्मल सामल सिहिर भर रेहइ गिरि रेवंतु।
तसु सिरि सामिउ सामलउ सोहग सुंदर सारु;
×××इव निम्मल कुल तिलउ निवसइ नेमि कुमारु।
तसु मुह दंसणु दस दिसवि देसि दिसंतरु संघ;
आवइ भाव रसाल मण उहलि रंग तरंग।
पोरवाड़ कुल मंडणउ नंदणु आसा राय;
वस्तु पाल वर मंति तहि तेज पालु दुइ भाइ।
गुर्जर धरि धुरि धवल वीर धवल देवि राजि;
बिउ बंधवि अवयारियउ समऊ दूसम माझि।

सरोज में १३११ के (१४) नवलदास-नामक एक कवि की रचना दी हुई है। यथा—

भक्त एक ते एक हैं जनि कोउ करौ गुमान;
कोउ प्रकट कोउ गुप्त है जानि रहे भगवान।

इस कविका भाषा आधुनिक जान पड़ती है, सो यह संवत् संदिग्ध है।

नाम—(१४)

ग्रंथ—सप्त क्षेत्रिरास।

रचनाकाल—१३२७।

उदाहरण—

सात क्षेत्र इम बोलिया पुण एक कही सिइ;
कर जोडी श्रीसंघ पासि अविणउ मागी सइ।
कांईउ ऊणं आगउं बोलिउ उत्सूत्रु;
ते बोल्या मिच्छादुक्कय श्रीसंघ वदीतुं।
मूं मूरख तो इये कुण मात्र पुण सुगुरु पसाओ;
अनइज त्रिभुवन सामि बसइ हियडइ जगनाहो।
तीणि प्रमाणइ सात क्षेत्र इम कीधउ रासो;
श्रीसंघु दुरि यह अपहरउ सामी जिणि पासो।
संवत तेर सत्तावीसए माह मस वाडइ;
गुरु वारिआवीय दसमि पहिलइ पख वाडइ।
तहि पुरुहुव रासु सिव सुख निहाणूं;
जिण चउ बीसइ भवियणइ करि सिइ कल्याणू।

नाम—(१५) विनयचंद्र सूरि।

ग्रंथ—(१) नेमिनाथ चउपइ, (२) उवएस माला कहाणय छप्पय।

रचनाकाल—१३२६ के पूर्व।

विवरण—रत्नसिंह के शिष्य।

उदाहरण—

सो हग सुंदर घण लायन्नू; सुमिरवि सामिउ सामल वन्नू।
सखि पति राजल चडि उत्तरिय; बार मास सुणि जिम वज्जरिय।
नेमि कुमर सुमिरवि गिरनारि; सिद्धि राजल कन्न कुमारि।
श्रावणि सरवणि कडुए मेहु; गज्जइ बिरहि रिझिज्झइ देहु।

बिज्जु झबक्कइ रक्खसि जेव ; नेमिहि विणुसहि सहियइ केव ।
सखी भणइ सामिणि मन झूरि ; दुज्जण तणा मन वंछित पूरि ।
गयउ नेमि तउ बिन ठउ काइ ; अछइ अनेरा वरह सयाइ ।
बोलइ राजल तउ इह वयणू ; नत्थि नेमि वर सम वर रयणू ।
धरइ तेजु गहगण सवि ताउ ; गयणि न उग्गइ दिणयर जाव ।
माइ विसरिया सर पिक्खेवि ; सकरुण रोवइ राजल देवि ।
हा एक लडी मइ निरधार ; किम उवे षिसि करुणा सार ।

इसी स्थान पर पूर्व प्रारंभिक हिंदी का साम्राज्य समाप्त होता है। इस काल में चंद एवं जल्हन की रचनाएँ तथा चार जैन-कवियों की कृतियाँ छोड़कर कोई अन्य कविता हस्तगत कम होती है। यह हिंदी प्राकृत भाषा से कुछ संबंध रखती थी, यद्यपि इसमें हिंदीपन अवश्य आ गया था।

नवाँ अध्याय

उत्तर प्रारंभिक हिंदी

(१३४४ से १४४४ तक)

[(१५) भूपति का शुद्ध नंबर ५३५ है।] चंद और जल्हन के पीछे संवत् १३५४ में (१६) नरपति नाल्ह कवि ने बीसलदेव-रासो-नामक ग्रंथ बनाया। इसमें चार खंड हैं और उनमें बीसलदेव का वर्णन है। नरपति नाल्ह ने इसका समय १२२० लिखा है, पर जो तिथि उन्होंने बुधवार को ग्रंथ निर्माण की लिखी है वह १२२० संवत् में बुधवार को नहीं पड़ती, परंतु १२२० शाके बुधवार को पड़ती है। इससे सिद्ध होता है कि यह रासो १२२० शाके में बना जिसका संवत् १३५४ पड़ता है। नरपति नाल्ह की भाषा चंद की भाषा से बहुत मिलती है, पर वह राजपूतानी भाषा की ओर झुकी हुई है। नरपति की कविता साधारण है और उसमें छंदोभंग भी हैं।

उदाहरण—

हंस वाहण मृगलोचनि नारि सीस समारइ दिन गिणइ;
भीण सिरजइ उलि गाथा धरी नारि जाई दीहा उड़ भूरितौ।
बारह सै बहोत्तराहां मझारि जेठ वदि नवमीन बुधवार;
नाल्ह रसायण आरंभइ सारदा तूठी ब्रह्म कुंमार।
जब लगि महियल उग्गइ सूर; जब लगि गंग बहइ जल पूर।
जब लगि प्रीथमी नै जगंनाथ; जाणी राजा सिर दीधौ हाथ।
रास पहूँतो राव को बाजे पड़ह पखावज भेर;
कर जोड़े नरपति कहइ अवीचल राज कीजौ अजमेर।

(१७) नल्लसिंह भाट सिरोहिया ने विजयपाल-रासा अनुमान से संवत् १३५५ में बनाया। यद्यपि उसमें विजयपाल यादव राय की लड़ाई का समय १०९३ दिया हुआ है और यह भी लिखा है कि उन्होंने ग्रंथकर्ता को सात सौ ग्राम तथा और बहुत-सा सामान पारितोषिक में दिया, परंतु ये बातें इतिहास के प्रतिकूल जान पड़ती हैं और इसकी भाषा रासो से पहले की कदापि नहीं समझ पड़ती। इससे अनुमान होता है कि यह ग्रंथ संवत् १३५५ के लगभग बना होगा, क्योंकि इसकी भाषा-प्रणाली नरपति नाल्ह से मिलती-जुलती हुई है। इनकी भाषा प्राकृत मिश्रित है।

उदाहरण—

दशशत वर्ष निरान मास फागुन गुरु ग्यारसि;
पाय सिद्ध बरदान तेग जद्दव कर धारसि।
जीति सर्व तुरकान बलख खुरसान सु गजनिय;
रूम स्याम असपहाँ फिरंग हबसान सुभजनिय।
ढूंढाण तोरि तूराण असि खोसिर बंग खंधार सब;
बलबंड पिंड हिंदुवान हद चढ़िव बीर विजयपाल तब।

संवत् १३५७ के लगभग रणथंभार के राजा हम्मीर देव के यहाँ

(१८) शारंगधर-नामक एक कवि ने शारंगधर-पद्धति, हम्मीर-काव्य और हम्मीर-रासो-नामक तीन ग्रंथ बनाए। शारंगधर की भाषा वर्तमान व्रजभाषा और अवधी से बहुत कुछ मिलती है।

उदाहरण—

सिंह गमन सुपुरुष बचन कदालि फरै इक सार ;
तिरिया तेल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार।

नाम—(१८/१) अंबदेव जैन।

ग्रंथ—संघपति समरा रास।

रचनाकाल—१३७१।

विवरण—नागेंद्र गच्छ के आचार्य पासड सूरि के शिष्य थे।

उदाहरण—

बाजिय संख असंख नादि काहल दुडु दुडिया ;
घोडे चढ़य सल्लार सार राउत सींगडिया।
तउ देवाल उजोत्रि वेगि घाघरि रवु झमकइ ;
सम विसम नवि गणइ कोई नवि वारि उथकइ।
सिजवाला धर धड हसुइ वाहिणि बहु वेगि ;
धरणि धड़कइ रजु उड़ए नवि सूझइ मागो।
हय हींसह आर सइ करह वेगि वहइ बहल्ल ;
साद किया था हरइ अवरु नवि देइ बुल्ल।
निसि दीवि झल हलहिं जेम ऊगिउ तारायणु ;
पावल पारु न पामिय वेगि बहई सुखासणु।
आगे वाणिहि संचरए संघपति साहु दे सलु ;
बुद्धिवंतु बहु पुंनिवंतु परि कमिहि सुनिश्चलु।

इस कवि के पीछे प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो का नाम आता है, जिनके बाद महात्मा गोरखनाथ ऋषिराज का कविता-काल है।

(१९) अमीर खुसरो का देहांत संवत् १३८२ में हुआ। ये

[ख़्]वाजा फ़ारसी के एक प्रसिद्ध कवि थे, पर हिंदी-भाषा के भी छंद [इन्हों]ने रचे हैं। सुप्रसिद्ध कोष-ग्रंथ ख़ालक़ बारी इन्हीं का लिखा [हुआ] है। यह उस समय लिखा गया जब फ़ारसी और हिंदी का मेल [हो]कर वर्तमान उर्दू की नींव पड़ रही थी। इन्होंने खड़ी बोली का कविता की है।

उदाहरण—

ख़ालक़बारी सिरजनहार ; वाहिद एक बिदा करतार।
रसूल पैग़ंबर जान बसीठ ; यार दोस्त बोलै जो ईठ।

ज़े हाले मिस्कीं मकुन तग़ाफ़ुल दुराये नैना बनाए बतियाँ ;
कि ताबे हिजरां न दारमैजां न लेहु काहे लगाय छतियाँ।
शबाने हिजरां दराज़ चूँ ज़ुल्फ़ो रोज़े वस्लत चु उम्र कोता ;
सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ।

इनकी खड़ी बोली के भी उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं—

आदि कटे से सबको पालै। मध्य कटे से सबको घालै।
अंत कटे से सबको मीठा। सो ख़ुसरो मैं आँखों डीठा। (काजल)

अंधा गूँगा बहरा बोले गूँगा आप कहाए ;
देख सफ़ेदी होत अँगारा गूँगे से भिड़ जाए।

बाँस के मंदिर वाका बासा बासे का वह खाजा ;
संग मिलै तो सर पर राखैं वाको रावल राजा।

सीसी करके नाम बताया तामें बैठा एक ;
उलटा सीधा हिर फिर देखो वही एक का एक।

भेद पहेली मैं कही सुन ले मेरे लाल ;
अरबी हिंदी फ़ारसी तीनों करो ख़याल।

यह बात ध्यान देने-योग्य है कि ख़ुसरो उर्दू का नाम भी न ले-[क]र हिंदी को अरबी और फ़ारसी के साथ स्थान देता है। इसकी [भा]षा बहुत मीठी और प्यारी होती थी।

(२०) मुल्ला दाऊद अमीर खुसरो का समकालीन था। इसका कविता-काल संवत् १३८५ के लगभग था। इसने नूरक और चंदा की प्रेमकथा हिंदी-पद्य में रची। यह ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आया।

नाम—(२०/६) जिनपद्म सूरि।

ग्रंथ—थूलिभद्र फागु।

रचनाकाल—चौदहवीं शताब्दी का अंत।

विवरण—खरतर गच्छ के आप आचार्य थे।

उदाहरण—

> पणमिय पास जिणंद पय अनु सर सइ समरेवि;
> थूल भद्र मुणिवइ भणिसु फागु बंध गुण केवि।
> अह सो हग सुंदर रूववंतु गुण मणि भंडारो;
> कंचण जिम झलकंत कंति संजम सिरि हारो।
> थूलि भद्र मुणि राउ जाम माहियली बो हंतउ;
> नयर राय पाडलिय माँहि पहूतउ विहरंतउ।

(२१) महात्मा श्रीगोरखनाथजी

ये महाशय पूर्ण ऋषि और बड़े सिद्ध करामाती हो गए हैं। इनका समय संवत् १४०७ खोज में लिखा है। किंवदंतियों द्वारा यह भी सुना जाता है कि ये आल्हा के समय में हुए और अमर हैं। ये (मत्स्येंद्रनाथ) मुछंदर के शिष्य थे। ये महाराज सिद्ध हो गए थे, परंतु मुछंदरजी संसारी जाल में फँसे पड़े रहे। उनको इन्होंने फिर उससे छुड़ाया। इनकी रचना में लेखकों की असावधानी से कुछ छंदोभंग आ गए हैं। इनके ११ ग्रंथ खोज (१६०२ व १६०३) में मिले हैं—

गोरखबोध, दत्तगोरख संवाद, गोरखनाथ जीरापद, गोरखनाथजी के स्फुट ग्रंथ, ज्ञानसिद्धांतयोग, ज्ञानतिलक, योगेश्वरी-

साखी, नरवैबोध, विराट पुराण, गोरखसार और गोरखनाथ की बानी। इन ग्रंथों के अतिरिक्त गोरखनाथजी ने गोरखशतक (ज्ञानशतक), चतुर शीत्यासन, ज्ञानामृत, योगचिंतामणि, योगमहिमा, योगमार्तंड, योगसिद्धांतपद्धति, विवेकमार्तंड और सिद्धसिद्धांतपद्धति-नामक नव ग्रंथ संस्कृत में बनाए। ये महाशय शैव थे और गोरखपुर में इनका मंदिर बना है। ये देवताओं की भाँति पूजे जाते हैं। इन्होंने गोरख-पंथ चलाया था, जिसके लाखों अनुयायी यत्र-तत्र उत्तरी भारत में पाए जाते हैं। उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त गोरखनाथजी के सत्ताइस छोटे-मोटे अन्य ग्रंथों के नाम खोज १९०२ के ४४वें पृष्ठ पर लिखे हैं। गोरखनाथजी का लिखा हुआ एक गद्य-ग्रंथ भी खोज में मिला है। अतः सबसे प्रथम गद्य-लेखक गोरखनाथजी ही हैं। इनकी कविता साधारण है।

उदाहरण—

स्वामी तुम्हैं गुर गोसाइँ।
अम्हे जासिष सबद एक बूझिबा।
दयाकरि कहिबा मनहुन करि वारो संभारं भी चेला कैसे रहै।
नीरारंभे चेला कूण बिधि रहै ;
सत गुरु होय स पुछ्या कहै।

अवधू रहिया हाटे बाटे रूप बिरष की छाया ;
तजिबा काम क्रोध लोभ मोह संसार की माया।

आपु सु गुनरि अनंत बिचार ; पंडित निद्रा अलप अहार।

सो वह पुरुष संपूर्ण तीर्थ स्नान करि चुकौ, अरु संपूर्ण पृथ्वी ब्राह्मननि को दै चुकौ, अरु सहस्र जज्ञ करि चुकौ, अरु देवता सर्व पुजि चुकौ, अरु पितरनि को संतुष्ट करि चुकौ, स्वर्ग लोक प्राप्त करि चुकौ, जा मनुष्य के मन छन-मात्र ब्रह्म के विचार बैठौ।

श्री गुरु परमानंद तिनको दंडवत् है। हैं कैसे परमानंद

आनंद स्वरूप है सरीर जिन्हि को। जिन्ही के नित्य गायें ते सरीर चेतन्नि अरु आनंदमय होतु हैं। मैं जु हौं गोरिष सो मछंदर नाथ को दंडवत करत हौं। हैं कैसे वै मछंदर नाथ। आत्मा जोति निरचल है अंतहकरन जिनि कौ अरु मूल द्वार तैं छह चक्र जिनि नीकी तरह जानै; अरु जुग काल कल्प इनि की रचना तत्व जिनि गायो। सुगंध को समुद्र तिनि कौ मेरी दंडवत। स्वामी तुमे तो सत गुर अम्है तौ सिष सबद एक पुछिबा दया करि कहिबा मनि न करिबा रोस।

पराधीन उपरांति बंधन नांही सुआधीन उपरांति मुकति नांही चाहि उपरांति पाप नाहीं अचाहि उपराइंति पुनि नांही क्रम उपरांती मल नाहीं निहक्रम उपरांईति निरमल नांही दुष उपरांति कुवधि नांही निरदोष उपरांति सवधि नांही घोर उपराईति मंत्र नाही नारायण उपराईंति ईसट नाही निरंजन उपरांईति ध्यान नांही।

नाम—(२१/१) विनयप्रभ उपाध्याय जैन।

ग्रंथ—(१) गौतम रासा, (२) हंसवच्छरास, (३) शीलरास।

रचनाकाल—१४१२।

उदाहरण—

विनय विवेक विचार सार गुण गणह मनोहर;
सात हाथ सु प्रमाण देह रूपिहिं रंभावर।
नयण वयण कर चरणि जिणवि पंकज जलि पाडिय;
तेजिंहि तारा चंद सूर आकासि भमाडिय।
रूविहि मयणु अनंग करवि मेल्हिउ निद्धाडिय;
धीरिम मेरु गंभीरि सिंधु चंगिम चय चाडिय।

नाम—(२१/२) हरसेवक मुनि।

ग्रंथ—मयणरेहा रास।

रचनाकाल—१४१२।

नाम—($\frac{21}{3}$) विद्धणु जैन।

ग्रंथ—ज्ञानपंचमी चउपइ।

रचनाकाल—१४२३।

विवरण—ठक्कर माल्हे के पुत्र तथा जिन उदय गुरु के शिष्य थे।

उदाहरण—

जिनवर सासणि आछइ सारू;
जासु न लब्भइ अंत अपारू।
पढ्हु गुनहु पूजहु निसुनेहू;
सिय पंचमि फलु कहियउ एहू।
संजम मन धरि जो नरु करई;
सो नरु निरचइ दुत्तरु तरई।

नाम—($\frac{21}{4}$) सिद्धसूरि जैन।

ग्रंथ—शिवदत्त-रास।

रचनाकाल—१४२३।

नाम—($\frac{21}{5}$) हीरानंद सूरि जैन।

ग्रंथ—कलिकाल-रास।

रचनाकाल—१४२६।

इस उत्तर प्रारंभिक काल में पूर्व-काल की अपेक्षा हिंदी ने बहुत संतोषदायिनी उन्नति की। इस समय में उसको प्राकृत से बहुत करके छुटकारा मिल गया और उसने वह रूप धारण किया, जिसकी उन्नति होते होते दो शताब्दियों में सूर एवं तुलसी की रचनाएँ दृष्टिगोचर हुईं। इसी समय से महात्मा गोरखनाथ के साथ गद्य-रचना का प्रारंभ होता है। इस काल में अनेकानेक कविजन हुए होंगे, परंतु समय ने उनके यशों को नष्ट करके उनके नाम भी लुप्त कर दिए। खोज से इस समय के कुछ कवियों तथा ग्रंथों का पता

लगा है। आशा है कि आगे चलकर अन्य उपयोगी बातें भी विदित होंगी। इस काल के दो मुसलमान कवियों की भी रचनाएँ मिलती हैं। पूर्व-काल में राजाओं के यशकीर्तन की प्रथा हिंदी में मुख्यतया स्थिर थी। इस प्रणाली पर इस काल में भी कुछ-कुछ अनुगमन हुआ। धर्म-ग्रंथ लिखने के ढंग ने महात्मा गोरखनाथ से विशेष बल पाया। दाऊद ने एक प्रेम-ग्रंथ रचा और खुसरो ने खड़ी बोली में भी रचना की; अतः इस उत्तरकाल में राजयशगान की चाल कुछ शिथिल हुई, धर्म-ग्रंथों के प्रचार का प्रारंभ हुआ और प्रेमकहानी लिखने की जड़ पड़ी। प्रायः ये सब बातें पृथ्वीराज-रासो में वर्तमान हैं, परंतु मुख्यतया वह नृपयशकीर्तन का ही ग्रंथ है। उत्तरकाल में यद्यपि ऐसे कवि गणना में अधिक हुए कि जिनकी रचनाएँ अब तक मिलती हैं, परंतु पूर्व-काल का रासो एक ऐसा ग्रंथ है कि जिसकी तुलना इस उत्तरकाल की सब पुस्तकें मिलकर भी नहीं कर सकतीं; हाँ इतना अवश्य है कि इस समय में लेखन-शैली ने बहुत उन्नति पाई। अब तक कोई विशेष भाषा हिंदी में स्थिर नहीं हुई थी। चंद प्राकृत मिश्रित भाषा में रचना करता था। पीछे इस उत्तरकाल में अवधी, व्रजभाषा, राजपूतानी, पंजाबी, खड़ी बोली आदि सभी भाषाओं में कवियों ने कविता रची। महात्मा गोरखनाथ ने पूर्वीय प्रांत के निवासी होने पर भी गद्य में व्रजभाषा का प्राधान्य रक्खा। इससे विदित होता है कि उस समय अवधी गद्य का विशेष प्रयोग ग्रंथों में नहीं होता था, परंतु व्रजभाषा में गद्य-ग्रंथ लिखे जाते थे, जिनका अभी तक पता नहीं लगा है। गोरखनाथजी प्रथम प्रसिद्ध ब्राह्मण कवि हैं, जिन्होंने हिंदी को आदर दिया।

दसवाँ अध्याय

पूर्व माध्यमिक हिंदी

(१४४५ से १५६० तक)

(२२) विद्यापति ठाकुर

महामहोपाध्याय विद्यापति ठाकुर का जन्म बिसपी-ग्राम मिथिला-देश में हुआ था। ये महाशय मैथिल ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम गणपति ठाकुर, पितामह का जयदत्त ठाकुर, और प्रपितामह का धीरेश्वर ठाकुर था। इनका जन्म-काल ठीक-ठीक विदित नहीं, परंतु इन्होंने बिसपी-ग्राम राजा शिवसिंहजू देव से पाया था। उसका दानपत्र अब तक इनके वंशजों के पास है। वह लक्ष्मणसेन के प्रचारित सन् २९३ का लिखा है, जो संवत् १४५५ विक्रमीय में पड़ता है। इससे अनुमान किया जाता है कि इनका जन्म लगभग सं० १४२० के हुआ होगा, तब तो उस समय तक यह योग्यता प्राप्त करके राजमान पाने में समर्थ हुए। इनका कविता-काल सं० १४४५ समझना चाहिए। ये महाशय संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे और इन्होंने देववाणी में पाँच नामी ग्रंथ बनाए, जिनकी मिथिला प्रांत में बड़ी प्रशंसा है। इन्होंने मैथिल भाषा में बहुत-से पद बनाए, जो मिथिला में काम-काज के अवसर पर गृहस्थों के यहाँ गाए जाते हैं और इनके पदों का बंग-देश में भी विशेष आदर है, यहाँ तक कि बंगाली महाशय इनको बंग-देशी कहते हैं, यद्यपि बंग-दर्शन के द्वितीय वर्ष की द्वितीय संख्या से इस मत का खंडन होता है। ये महाशय दीर्घजीवी हुए हैं। बिहारी और बंगाली इनकी कविता को परम पूज्य दृष्टि से देखते हैं। इनकी कविता का संग्रह आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा ने अपने उपहार में वितरित करके प्रशंसनीय काम किया और इनकी पदावली सन् १९१० में नगेंद्रनाथ गुप्त द्वारा संकलित होकर उत्तम रूप में निकली, जो हमारे पास प्रस्तुत है। इस-

में ८४१ पद राधा-कृष्ण के शृंगार-विषयक, ४४ पद शिवपार्वती के, ३१ पद विविध विषयों के और अंत में २० पद कूट और पहेलियों के हैं। आपकी कविता में विशेषतया शृंगार-रस प्रधान है। इनकी भाषा बिहारी है और वह परम प्रशंसनीय है। इनकी कविता में लेखकों की असावधानी से बहुत-से छंदोभंग हो गए। इनके कुछ पद प्राकृत-मिश्रित भाषा के भी मिलते हैं। भाषा-कविता के विचार से हम इन्हें सेनापति की श्रेणी का समझते हैं।

उदाहरण—

सरस बसंत समय भल पाओलि दछिन पवन बहु धीरे;
सपनहु रूप बचन यक भाषिय मुख सेंदुरि करु चीरे।
तोहर बदन सम चाँद होअथि नहिं जैयो जतन विह देला;
कैवेरि काटि बनावल नव कय तैयो तुलित नहिं भेला।
लोचन तूअ कमल नहिं भैसक से जग के नहिं जाने;
से फिर जाय लुकैनहजल भय पंकज निज अपमाने।
भनहि विद्यापति सुन बरजौ मति ईसभ लछमि समाने;
राजा शिवसिंह रूप नरायण लखिमा दइ प्रति भाने।
जइति देखिल पथ नागरि सजनी आगरि सुबुधि सयानि;
कनकलता सम सुंदरि सजनी विह निरमावल आनि।
हस्ति गमनि जँगाँ चलइत सजनी देखइत राजकुमारि;
जिनका यहन सोहागिनि सजनी पाय पदारथ चारि।
नील बसन तन घेरलि सजनी सिर लेल चिकुर सम्हारि;
तापर भमर पिवय रस सजनी वैसल पंख पसारि।
केहरि सम कटि गुन अछि सजनी लोचन अंबुज धारि;
विद्यापति यह गाओल सजनी गुन पाओलि अवधारि।

कत सुख सार पाओल तुव तीरे; छड़इत निकट नयन बह नीरे।
कर जोरि बिनमों विमल तरंगे; पुन दरसन हो पुनमति गंगे।

पुरिस हुअउ बलिराअ जासु कर कम्ह पसारिअ ;
पुरिस हुअउ रहु तणय जेण रण रावण मारिअ ।
पुरिस भगीरथ हुअउ जेण णिय कुल उद्धरिअउ ;
परसुराम पुण पुरिस जेण खत्तिअ खय करिअउ ।
पुनि पुरिस पसंसौ राअगुरु कीरति सिंह गणेश सुअ ;
जैसत्रु समर सम्महिकिरि वप्प बैर उद्धरि अवुअ ।

विद्यापतिजी ने पारिजातहरण और रुक्मिणीपरिणय-नामक दो नाटक-ग्रंथ भी बनाए हैं। विद्यापति की कविता को चैतन्य महाप्रभु बहुत पसंद करते थे । उमापति, नंदीपति, मोदनारायण, रमापति, महीपति, जयानंद, चतुर्भुज, सरसराम, जयदेव, केशव, भंजन, चक्रपाणि, भानुनाथ, हर्षनाथ आदि मैथिल कवि विद्यापति की रीति पर रचना और उनकी नक़ल करते थे । हिंदी में पहले नाटककार विद्यापति ही हैं। इस महानुभाव की रचनाएँ बड़ी ही सजीव, श्रुतिमधुर, तल्लीनता-पूर्ण और उमंगवर्द्धिनी हैं।

चित्तौर के प्रसिद्ध (२३) महाराणा कुंभकर्ण ने सं० १४१९ से १४६६ पर्यंत राज्य किया था । ये महाराज हिंदी के कवि थे और बहुत-से कवियों को इन्होंने आश्रय दिया था, पर उन कवियों में किसी का पता अब नहीं लगता । इन्होंने गीतगोविंद की टीका बनाई थी पर वह ग्रंथ भी लुप्त हो गया। बहुत लोगों को भ्रम है कि प्रसिद्ध मीराबाई इन्हीं की पत्नी थीं पर यह बात अशुद्ध है।

नाम—(२३/१) सोमसुंदर सूरि ।

ग्रंथ—आराधना रास ।

रचनाकाल— १४५० ।

संवत् १४५३ में (२४) नारायणदेव कवि ने 'हरिचंद पुराण कथा'-नामक प्रसिद्ध दानी राजा हरिश्चंद्र की कहानी कही। इसकी भाषा प्राचीन भाषा से मिलती है और इसमें छंदोभंग बहुत हैं।

उदाहरण—

चौदह सइ त्रिपनो बिचार ; चैत्र मास दिन आदित बार।
मन माहिं सुमिस्यो आदीत ; दिन दूसरा है कियो कबीत।
एहि कथा को आयो छेव ; हम तुम जपो नरायण देव।

नाम—(२४/१) मुनिसुंदर जैन।

ग्रंथ—शांतरसरास।

रचनाकाल—१४५५।

श्रीस्वामी (२५) रामानंदजी एक प्रसिद्ध वैष्णव मत संस्थापक संवत् १४५६ के लगभग हुए। ये महाराज सिद्ध योगी हो गए हैं। महात्मा कबीरदास इन्हीं के शिष्य थे और गोस्वामी तुलसीदासजी इन्हीं का (रामानंदी) मत मानते थे। रामानंदी संप्रदाय के हज़ारों साधु आज तक हैं। इन महाराज ने भाषा के कुछ पद भी बनाए और इसीलिये कवियों में भी इनकी गणना हुई है। इनकी भक्ति-प्रगाढ़ता एवं काव्यप्रेम के कारण इनके पंथियों द्वारा हिंदी का बड़ा उपकार हुआ है। वल्लभ महाप्रभु की भाँति ये महात्माजी भी हिंदी के बड़े उपकारक थे। आप महात्मा राघवानंद के शिष्य थे, जिनके गुरु हरिनंद थे। हरिनंदजी प्रसिद्ध महात्मा रामानुजाचार्य के शिष्य देवाचार्य के चेले थे। महात्मा रामानुजाचार्य का समय ११५० संवत् माना जाता है। बाबू राधाकृष्णदास ने रामरक्षा-स्तोत्र और रामानंदीय वेदांत-नामक इनके दो ग्रंथ लिखकर उनके विषय में संदेह भी प्रकट किया है। च० त्रै० खोज में रामरक्षा और ज्ञानतिलक-नामक दो ग्रंथ इनको मिले हैं।

(२६) जैदेव मैथिल का समय संवत् १४५७ है। ये महाशय मैथिल कवि विद्यापति के समकालीन थे। इनका कोई ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आया पर इनकी कविता प्रसिद्ध है।

(२७) सेन नाई रीवाँ-वासी का भी कविता-काल संवत् १४५७ के लगभग था। यह स्वामी रामानंद के शिष्य थे। इनकी कविता सिक्खों के ग्रंथ साहब में है। सरोजकार ने एक सेन का समय संवत् १५६० लिखा है पर वह इनसे पृथक् व्यक्ति है, जिसका वर्णन उचित स्थान पर किया जायगा। उनकी कविता भी इसकी रचना से नहीं मिलती। कहते हैं कि रीवाँ के महाराजा इस महात्मा के शिष्य हो गए थे।

(२८) स्वामी भवानंदजी महात्मा रामानंद के शिष्य संवत् १४५७ के लगभग थे। इन्होंने अमृतधार-नामक चौदह अध्यायों का वेदांत पर एक ग्रंथ लिखा है।

(२९) पीपा महाराज भी रामानंदजी के शिष्य और एक प्रसिद्ध कवि थे। आप गागरौनगढ़ के राजा थे, परंतु सब छोड़ फ़क़ीर हो-कर स्वामीजी के साथ द्वारका गए। वहाँ से लौटते समय कुछ पठानों ने इनकी स्त्री सीता का हरण करना चाहा, परंतु कहते हैं कि स्वयं भगवान् ने उनकी रक्षा की। ऐसी और भी घटनाएँ इनके विषय में प्रसिद्ध हैं। कई कवियों ने इनका हाल लिखा है।

(३०) धना और (३१) रैदास भी महात्मा रामानंद के शिष्यों में कवि और परम प्रसिद्ध भक्त थे। महात्मा रैदासजी काशी के रहनेवाले चमार थे, परंतु भक्ति के कारण इनका बड़ा मान था। रैदास की बानी, साखी और पद-नामक इनके तीन ग्रंथ सन् १६०२ के खोज में मिले हैं।

(३२) महात्मा अंगद का भी यही समय समझ पड़ता है। इनका वर्णन भक्तमाल की टीका में है, जहाँ लिखा है कि ये रायसेन-गढ़ के राजा सिलहदीन के चचा थे। इनसे एक रत्न के कारण राजा से झगड़ा हो गया, परंतु इन्होंने उस रत्न को जगन्नाथजी पर चढ़ा ही दिया। इनकी रचना ग्रंथ साहब में है।

(३३) उमापति मैथिल कवि विद्यापति के समकालीन १४५७ के लगभग हुए हैं। इनकी कविता विहार में प्रसिद्ध है और बड़ी लोक-प्रियता को प्राप्त है। इनके छंद विद्यापति के ही समान होते थे, यहाँ तक कि इन दोनों महात्माओं की रचनाएँ ऐसी मिल गई हैं कि बहुधा उनका अलग करना कठिन हो जाता है।

(३४) झीमा चारण कोलावाले का समय १४६१ सुन पड़ता है। इनकी कविता देखने में नहीं आई।

(३५) महात्मा कबीरदासजी

अब तक चंद बरदाई और विद्यापति ठाकुर को छोड़ कोई तादृश नामी कवि हिंदी में उत्पन्न नहीं हुआ था, पर अब एक अन्य सुप्रसिद्ध कवि का प्रादुर्भाव हुआ। संवत् १४७५ के लगभग महात्मा कबीर-दासजी का समय है। इनके बनाए हुए अमर मूल, अनुरागसागर, उग्रज्ञानमूलसिद्धांत, ब्रह्मनिरूपण, हंसमुक्तावली, कबीरपरिचय की साखी, शब्दावली, पद, साखिया, दोहे, सुखनिधान, गोरखनाथ की गोष्ठी, कबीरपंजी, बलक की रमैनी, विवेकसागर, विचारमाल, कायापंजी, रामरक्षा, अठपहरा, निर्भयज्ञान, कबीर और धर्मदास की गोष्ठी, अगाध मंगल, बलंक की पैज, ज्ञानचौतीसा, कबीरअष्टक, मंगल शब्द, रामानंद की गोष्ठी, आनंदरामसागर, मंगल, अनाथमंगल, अक्षर भेद की रमैनी, अक्षरखंड की रमैनी, अर्जनामा, आरती, भक्ति का अंग, छप्पय, चौका घर की रमैनी, ज्ञानगूदरी, ज्ञानसागर, ज्ञानस्वरोदय, कबीराष्टक, करमखंड की रमैनी, मुहम्मदबोध नाम-माहात्म्य, पिया पहिचानबे को अंग, पुकार शब्द अलहटुक, साध कौ अंग, सतसंग कौ अंग, स्वांसगुंजार, तीसाजंत्र, जन्मबोध, ज्ञानसंबोध, मखहोम, निर्भयज्ञान, सतनाम या सतकबीर, बानी, ज्ञानस्तोत्र, हिंडोरा, सत कबीर बंदी छोरो, शब्द वंशावली, उग्रगीता, बसंत, होली, रेखता, झूलना, खसरा, हिंडोला, शब्द, रागगौरी, रागभैरव,

राग काफ़ी, फ़गुवा आदि ग्रंथ, बारहमासा, चाँचरा, चौंतीसा, अलिफ़-नामा, रमैनी, बीजक, आगम, रामसार, सोरठा, कबीरजी की कृत, शब्द पारखा और ज्ञानबत्तीसी-नामक ग्रंथों का पता नागरीप्रचारिणी-सभा के खोज प्रथम तथा द्वितीय त्रैवार्षिक में लगा है। इनमें से कई ग्रंथ संदिग्ध भी हैं। कबीरजी का एक अन्य ग्रंथ ज्ञान-तिलक रियासत छत्रपुर में मौजूद है। ये महाशय जाति के जोलाहे थे, पर हिंदू-धर्म के एक प्रसिद्ध सुधारक हो गए हैं। इनका चलाया हुआ मत कबीर पंथ कहलाता है और लाखों मनुष्य अब भी कबीर-पंथी हैं। रीवाँ के महाराज वीरसिंह देव इनके शिष्य थे। कविता की दृष्टि से इनकी उलटबाँसी बहुत प्रशंसनीय हैं। इनकी रचना नवरत्न में है। इन्होंने खरी बातें बहुत उत्तम और साफ़-साफ़ कही हैं और इनकी कविता में हर जगह सचाई की झलक देख पड़ती है। इनके ऐसे बेधड़क कहनेवाले कवि बहुत कम देखने में आते हैं। कबीरजी का अनुभव खूब बढ़ा-चढ़ा था और इनकी दृष्टि अत्यंत पैनी थी। कहीं-कहीं इनकी भाषा में कुछ गँवारूपन आ जाता है पर उसमें उद्दंडता की मात्रा अधिक होती है।

उदाहरण लीजिए—

नैया बिच नदिया बूड़ी जाय।
अपने हाथे करैं थापना अजया का सिर काटी;
सो पूजा घर लैगा माली मूरति कुत्तन चाटी।
दुनिया झूमड़ झामड़ अटकी।
दुनिया ऐसी बावरी पत्थर पूजै जाय;
घर की चकिया कोई न पूजै जेहि का पीसा खाय।
चाकिया सब रागन की रानी।
जेहि की चाकिया बंद परी है तेहि की सबै भुलानी;
भोर होय ते कुवरी पहिले घरं-घरं घरांनी।

जो कबिरा काशी मरै तौ रामै कौन निहोर।
कासी का मैं बासी बाँभन नाम मेरा परबीना ;
एक बेर हरिनाम बिसारा पकरि जोलाहा कीना ;
माई मोरे कौन बिनैगो ताना।

महात्मा कबीरदासजी ने प्रायः साधारण बातों ही में ज्ञान कहा है। ये महात्मा रामानंद के शिष्य थे और गोरखनाथजी को भी मानते थे। इन्होंने इन दोनों महात्माओं के विषय में दो ग्रंथ भी बनाए। इनके कथन देखने में तो साधारण समझ पड़ते हैं, परंतु उनमें गूढ़ आशय छिपे रहते हैं। इन्होंने रूपकों, दृष्टांतों, उत्प्रेक्षाओं आदि से धर्म-संबंधी ऊँचे विचारों एवं सिद्धांतों को सफलता-पूर्वक व्यक्त किया है। साधारण भजनों में प्रायः कबीरदास ने संसार की असारता दिखाई है। यथा —

दुलहिनी गावो मंगलचार ;
हम ग्रहि आये रजा राम भरतार।
तन रत करिहौं मन रत करिहूँ पाँचौ तत्व बराती ;
राम हमारे पहुने आए मैं जोबन मद माती।
सुर तेतीसों कौतुक आए मुनि वर कोटि अठासी ;
कह कबीर मोहिं ब्याहि चले हैं पुरुष एक अबिनासी।

(३६) भगोदास या भग्गूदास

भगोदास ने बीजक-नामक ग्रंथ बनाया है। ये महात्मा कबीरदास के शिष्य थे। इनका समय संवत् १४७७ के लगभग है।

(३७) श्रुतिगोपाल ने सुखनिधान ग्रंथ सं० १४७७ में रचा। यह भी कबीरदास के चेले थे।

(३८) नामदेव

कहते हैं कि ये महाशय वैष्णव-संप्रदायवाले स्वामी ज्ञानदेव

के शिष्य थे, जो वल्लभाचार्य के पहले हुए थे। इससे इनका कविता-काल १४८० के लगभग समझना चाहिए। इनके पद तथा छंद ग्रंथ साहब में गुरु नानकजी ने रक्खे हैं। नामदेव की बानी-नामक संवत् १७४० का लिखा हुआ इनका एक ग्रंथ द्वि०त्रै० खोज में मिला है। इन्होंने नामदेवजी की साखी, नामदेवजी का पद, और राग सोरठ का पद नामक-ग्रंथ बनाए हैं। इन्होंने दोहे और भजन अच्छे कहे हैं। इनकी भाषा व्रजभाषा है, जो सौर-काल की भाषा से मिलती है। इनकी कविता से इनकी अखंड भक्ति टपकती है। उदाहरण—

अभि अंतर काला रहै बाहेर करै उजास;
नाम कहै हरि भगति बिनु निहचै नरक निवास।
अभिअंतर रातो रहै बाहेर रहै उदास;
नाम कहै मैं पाइयों भाव भगत बिसवास।

कालै आरति दास करै तीनि लोकि जाकी जोति फिरै;
कोटि भान जाके नष की सोभा कहा भयो कर दीप फिरै।
सात समद जाके चरन निवासा कहा भयो जल कुंभ भरै॥

ये महाशय बड़े सिद्ध महात्मा समझे जाते हैं। जाति के ये छीपी थे।

नाम—($\frac{३८}{१}$) उपाध्याय जयसागर जैन।

ग्रंथ—कुशल सूरि स्तोत्र।

रचनाकाल—१४८१

उदाहरण—

रिसह जिणेसर सो जयो मंगल केलि निवास;
वासव वंदिय पय कमल, जग सहु पूरे आस।
संवत् चौदह इक्यासी बरसे मुलक बाहणपुर में;
मन हरषै आजिय जिने सरवर भवणै।

कीयौ कवित्त ए मंगल कारण विघन हरण ;
सहु पाप निवारण कोई मत संशो धरो मनै ।
जिम-जिम सेवै सुर नर राया श्री जिन कुशल मुनी-
सर पाया जय सायर उवझाय थुणै ।
इम जो सद्गुरु गुण अभिनंदे ऋद्धि समृद्धै ;
सो चिरनंदै मन वंछित फल मुझे हुवो ए ।

नाम—(३९/२)—
ग्रंथ—विद्याविलास रास ।
रचनाकाल —१४८५ ।
नाम—(३८/३) दयासागर सूरि ।
ग्रंथ —धर्मदत्त-चरित्र ।
रचनाकाल —१४८६ ।

(३९) विष्णुदास गोपाचलगढ़ ग्वालियर में रहते थे, जो कि उस समय पांडववंशी राजा डोंगरसिंह के अधिकार में था। इनका समय १४९२ है। ग्रंथ इनके प्रथम त्रैवार्षिक खोज के अनुसार ये हैं—(१) महाभारत कथा, (२) स्वर्गारोहण, (३) रुक्मणी-मंगल ।

(४०) रामानंद ने रामरक्षा संवत् १५०० के लगभग रची। यह कबीर के गुरु रामानंद से इतर हैं।

(४१) कमाल काशीवासी का समय १५०७ था । ये कबीर-दास के पुत्र थे ।

कबीरदासजी का व इनका मत नहीं मिलता । इसी कारण किसी कवि ने यहाँ तक कह दिया है कि 'डूबा बंस कबीर का उपजे पूत कमाल'। परंतु इन्होंने कबीरजी का नाम जहाँ कहीं लिखा है वहाँ कुछ निंदा-सूचक वाक्य नहीं लिखे । नहीं मालूम कि उपर्युक्त बात क्यों प्रसिद्ध हुई ।

उदाहरण—

राम के नाम सों काम पूरन भयो लच्छिमन नाम ते लच्छि पायो ;
कृष्ण के नाम सों बारि सों पार भे बिष्णु के नाम बिश्राम आयो ।
आइ जग बीच भगवंत की भक्ति की और सब छाड़ि जंजाल छायो ;
कहत कम्माल कब्बीर का बालका निरखि नरसिंह पहलाद गायो ।

(४२) दामो

इस कवि ने संवत् १५१६ में लक्ष्मणसेन-पद्मावती-नामक एक प्रेमकहानी लिखी, जिसमें राजा लक्ष्मणसेन के दो विवाह कहे गए हैं । इनकी भाषा राजपूतानी भाषा से मिलती है और इनके छंदों में छंदोभंग खूब हैं ।

उदाहरण—

सुणौ कथा रस लील विलास ।
यांगी मरण (अउर) बनवास ।
पदमावती बहुत दुख सहइ ;
मेलौ करि कबि दामो कहइ ।
सवत पदरइ सोलोत्तरा मभ्कार ;
ज्येष्ठ बदी नौमी बुधवार ।
सप्त तारिका नक्षत्र दृढ़ जान ;
बीर कथा रस करूँ बखान ।

नाम—(४२/६) हरि वासदेव

ग्रंथ—महावानी—तृ० त्रै० खो० ।

रचनाकाल—१५१७ ।

नाम—(४३) जन गिरिधारी साधू अंतरवेदी ।

ग्रंथ—भक्तमाहात्म्य ।

रचनाकाल—१५२५ ।

विवरण—श्लोक-संख्या १२०० भक्तिमयी रचना है ।

(४४) धरमदासजी

धरमदासजी कबीरदास के शिष्य थे। इन्होंने कबीर के द्वादश पंथ, निर्भय ज्ञान और कबीरबानी-नामक तीन ग्रंथ बनाए।

सरोज में १५१२ में माड़वार के महाराजा उदयसिंह का नाम कवियों में लिखा है और यह भी लिखा है कि महाराजा गजसिंह इनके पुत्र और महाराजा जसवंतसिंह पौत्र थे। परंतु महाराजा गजसिंह के पिता का नाम महाराजा सूरसिंह था और उदैसिंह १६४० संवत् में सिंहासनारूढ़ हुए थे। ये महाशय सूरसिंह के पिता थे। टाड ने इनके कवि होने के विषय में कुछ नहीं लिखा है, अतः इनका कवि होना संदिग्ध है।

नाम—(४४/१) उपाध्याय ज्ञानसागर जैन।

ग्रंथ—श्रीपाल-चरित्र।

कविताकाल—१५३१।

उदाहरण—

कर कंमल जोडेवि कर सिद्ध सयल पणमेव;
श्री श्रीपाल नरेंद्र नो रासबंध पभणेव।
भविया भावे नित नमो श्रीगुणदेव सूरि पाय;
तास सीस ए रास रच्यो ज्ञान सागर उवझाय।
पनर एकत्रि से मिगसिरे उजली बीज गुरु बार;
रास रच्यो सिद्ध चक्र नो गावो श्री नवकार।
सिद्ध चक्र महिमा सुणौ भविया कर्ण धरेवि;
मन वांछित फल दायक ए जे सुणै नित मेव।
एक मना जे नित जपै ते घर मंगल माल;
ऋद्धि अनंती भोगवै जिम भूपति श्रीपाल।

(४५) चरणदासजी

महात्मा चरणदास ने संवत् १५३७ में ज्ञानस्वरोदय-नामक एक ग्रंथ बनाया।

उदाहरण—

चारि बेद को भेद है गीता को है जीव ;
चरणदास लखु आपमें तो मैं तेरा पीव ।

(४६) अलि भगवान्‌जी ने स्फुट पद लगभग संवत् १५४० में कहे । ये महाशय हितहरिवंशजी के समकालीन थे, ये भी हितसंप्रदाय के वैष्णवों में माने गए हैं ।

(४७) बाबा नानक

ये महाराज सिक्ख-मत के संस्थापक बड़े भारी महात्मा खत्री-कुलभूषण पंजाब में हो गए हैं । इनका जन्म संवत् १५२६ में हुआ था और १५९६ में ये पंचत्व को प्राप्त हुए । इन्होंने हिंदू-मुसलमान मतों को मिलाया और जाति-पाँति के झंझटों से संकीर्ण किए हुए प्रति मनुष्य के अधिकार फिर से जागृत किए । इस बात में इनका मत महात्मा गौतमबुद्ध के मत से बहुत मिलता है । उन्होंने भी प्रति मनुष्य के गौरव को बहुत बढ़ाया था । नानकजी वेदांत मत के अनुयायी तथा एक ईश्वर के माननेवाले थे । इन्होंने हरिद्वार, काशी, गया, मक्का आदि सभी स्थानों की एक भाव से यात्राएँ कीं । ग्रंथ साहब, नानकजी की साखी, नानकजी की सुखमनी और अष्टांगयोग-नामक ग्रंथों में इनके विचार हैं । ग्रंथ साहब सिक्खों का वेद, कुरान आदि की भाँति पूज्य ग्रंथ है ।

उदाहरण—

गुन गोबिंद गायो नहीं जनम अकारथ कीन ;
नानक भजु रे हरि मना जेहि बिधि जल को मीन ।
बिषयन सों काहे रच्यो निमिष न होय उदास ;
कहि नानक भजु हरि मना परै न जम की पास ।

इस मत के कुछ अन्य गुरुओं ने भी हिंदी-कविता की है ।

नाम—(४७/६) संवेगसुंदर उपाध्याय।

ग्रंथ—सार सिखामन-रासा।

रचनाकाल—१५४८।

विवरण—तपगच्छ के जयसुंदर सूरि के शिष्य थे।

नाम—(४७/७) रास चंद्र सूरि।

ग्रंथ—मुनि पति राजर्षि-चरित।

रचनाकाल—१५५०।

उदाहरण—

संवत् पनर पचासो जाणि ; वदि वैसाख मास मन आणि।
दिन सतमी रचिउ रविवार ; भणइ सुणइ तिह हर्ष अपार।

(४८) अनंतदास (१५५७)

रैदास के कुछ ही पीछे हुए। ग्रंथ इनके ये हैं—(१) रैदास की परिचई, (२) कबीरदास की परिचई और (३) त्रिलोचनदास की परिचई। कविता हीन श्रेणी की है। इसी नाम के एक और अनंतदास हुए हैं। उन्होंने भी ग्रंथ बनाए हैं। शायद यह अनंतदास उन अनंतदास से भिन्न हों। उनका समय १६५७ है।

नाम—(४९) वल्लभाचार्य स्वामी महाप्रभु।

ग्रंथ—१ भागवतपुराण सुबोधिनीभाष्य, २ जैमिनीसूत्रभाष्य, ३ अनुभाष्य, ४ विष्णुपद, ५ वनयात्रा (हिंदी)।

जन्म—१५३५।

कविताकाल—१५६०।

जीवित रहे—१५८७ तक।

विवरण—ये महाशय वल्लभीय संप्रदाय के संस्थापक महान् ऋषि हो गए हैं। ये संस्कृत के बड़े धुरंधर पंडित और सुकवि थे। आप वल्लभीय वैष्णव-संप्रदाय में श्रीकृष्णजी के अवतार माने जाते हैं और आपकी पूजा देवताओं के समान अब तक होती है। आपके

बनाए संस्कृत के बहुत-से ग्रंथ हैं। भाषा में भी कुछ उत्तम पदों की रचना आपने की है । भाषा-कविता-भंडार आप ही के शिष्यों की रचना से परिपूर्ण हुआ है और उसकी उत्तेजना देनेवाले यही महा-पुरुष थे। आपकी कविता शुद्ध ब्रजभाषा में है। ब्रजभाषा का जो भाषा-कविता पर साम्राज्य-सा हो गया है इसका एक प्रधान कारण यह भी है कि आपके संप्रदायवालों ने अपनी पूरी रचना इसी में की है । महात्मा सूरदास तथा अष्टछाप के अन्य कविगणों की रचना ब्रजभाषा की भूषण-स्वरूप है । यदि भाषा-काव्य को आपके संप्रदाय द्वारा इतना सहारा न मिला होता, तो आज शायद ब्रज-भाषा की कविता इतनी परिपूर्ण न होती। यह सब महात्मा वल्लभा-चार्यजी ही का प्रताप है कि हिंदी-कविता की ओर ऋषिवत् साधु लोग भी झुक पड़े । बाबू राधाकृष्णदास ने लिखा है कि आपने रचना नहीं की और इस नाम के पद इसी नाम के एक अन्य कवि के थे।

(२०) कुतबन शेख़ ने मृगावती ग्रंथ संवत् १२६० में बनाया। ये महाशय शेख़ बुरहान चिश्ती के चेले थे और शेरशाह सूर के पिता हुसैनशाह के यहाँ रहते थे । इन्होंने भी पद्मावती की भाँति दोहा-चौपाइयों में रचना की है। इनकी गणना साधारण श्रेणी में है।

उदाहरण—

साह हुसैन अहै बड़ राजा ; छत्र सिंघासन उनको छाजा।
पंडित औ बुधिवंत सयाना ; पढ़ै पुरान अरथ सब जाना।
धरम दुदिस्टिल उनको छाजा ; हम सिर छाँह जियो जगराजा।
दान देइ औ गनत न आवै ; बलि औ करन न सरबरि पावै।

सरोजकार ने (२१) सेन कवि का समय १२६० लिखा है और यह कहा है कि इनके छंद कालिदास-कृत हज़ारा-नामक संग्रह

में मिलते हैं। सेन के समय के विषय में कुछ निश्चय नहीं है, केवल इतना ज्ञात है कि ये महाशय कालिदास के प्रथम थे। कालिदास औरंगज़ेब के समय में हुए हैं। सेन की कविता उत्तम और भाषा वर्तमान समय की-सी है।

उदाहरण—

जब ते गोपाल मधुबन को सिधारे आली
मधुबन भयो मधु दानव बिखम सों;
सेन कहै सारिका सिखंडी खंजरीट सुक
मिलिकै कलेस कीनो कालिंदी कदम सों।
जामिनी बरन यह जामिनी मैं जाम-जाम
बधिक की जुगुति जनावै टेरि तम सों;
देह करै करज करेजो लियो चाहति है
काग भई कोयल कगायो करै हमसों।

अब पूर्व माध्यमिक-हिंदी का समय समाप्त हुआ और इसके आगे प्रौढ़ माध्यमिक काल आवेगा। इस पूर्व काल में विद्यापति ठाकुर एवं कबीर-जैसे महाकवियों ने हिंदी का मुख उज्ज्वल करके उसे एक वास्तविक स्वच्छंद भाषा बना दिया और महात्मा रामानंद, बाबा नानक और महाप्रभु वल्लभाचार्य-जैसे महात्माओं ने भी इसमें रचना करनी आवश्यक समझी। वैसे ही प्रसिद्ध महाराणा कुंभकर्ण ने भी स्वयं इसमें कविता की और अनेक कवियों को आश्रय दिया। यह महानुभाव हिंदी का प्रथम टीकाकार हो गया है। अब हिंदी-साहित्य का साम्राज्य इतना फैल गया था कि पंजाब से लेकर बिहार तक उसकी ध्वजा फहराने लगी। राजाओं के यश कीर्तनवाली प्रथा अब बिलकुल टूट गई और धार्मिक साहित्य का बल खूब बढ़ चला। इस काल के कवियों में अधिकांश संख्या धार्मिक महात्माओं और उनके अनुयायियों ही की निकलेगी। उधर

दामो और कुतबन ने चंद और मुल्ला दाऊद की चलाई हुई प्रेम-कहानियों के लिखने की प्रणाली को दृढ़ किया। कुल मिलाकर हिंदी की उन्नति इस काल में भी अच्छी हुई और सौर काल के लिये राह साफ़ हो गई। इस काल तक कोई भाषा दृढ़ता से स्थिर नहीं हुई थी और जो कवि जहाँ लिखता था वहीं की भाषा वह विशेषतया व्यवहृत करता था; तो भी ध्यान से देखने पर स्पष्टतया विदित हो जायगा कि लोगों का रुझान व्रजभाषा की ओर अधिक होने लगा था और स्थानीय भाषा के साथ-साथ प्रायः सभी नामी कवि उसका आश्रय लेने लगे थे। अतः व्रजभाषा का सर्वव्यापिनी होने का सूत्रपात इसी काल में हुआ।

प्रौढ़ माध्यमिक-प्रकरण

प्रौढ़ माध्यमिक हिंदी

(१५६१—१६८०)

ग्यारहवाँ अध्याय

अष्टछाप और वैष्णव-संप्रदाय

इस समय तक भाषा में कितने ही कवि हो गए, पर चंद बरदाई, विद्यापति और कबीरदास को छोड़कर कोई ऐसा नहीं हुआ जो परमोत्तम कवि कहा जा सके। हाँ जल्हन कवि से लेकर सेन कवि तक हिंदी उन्नति अवश्य करती गई, और जैसे जल्हन की भाषा चंदीय भाषा से पृथक् न थी, वैसे ही सेन कवि की भाषा सौर भाषा से भी पृथक् नहीं समझ पड़ती। उन्नति करते-करते भाषा ने अब व्रजभाषा के सहारे वह रूप ग्रहण कर लिया था, जो प्रायः ३०० वर्षों पर्यंत बहुत करके जैसा-का-तैसा रहा और खड़ी बोली की कुछ कविता छोड़ वस्तुतः अद्यावधि वही वर्तमान है। इतने बृहत् काल के कवियों की भाषाओं में सामर्थ्यानुसार बहुत बड़ा अंतर भी पाया जाता है, पर वह अंतर कवियों की योग्यता के अनुसार है न कि भाषा-संबंधी किसी भारी परिवर्तन के कारण। १५६० के लगभग व्रजभाषा कुछ-कुछ परिपक्व हो चुकी थी और अच्छा समय था कि शक्ति-संपन्न कविगण उत्तम कविता बनाते। परंतु उत्कृष्ट रचना के लिये सुंदर भाषा ही की आवश्यकता नहीं है, वरन् सबसे बड़ी शक्ति जो होनी चाहिए, वह तल्लीनता है। जब तक कवि लोकलाज और आपे तक को भूलकर किसी विषय में विमल न पड़े, तब तक

उसकी कविता परमोत्कृष्ट नहीं हो सकती। तल्लीनता प्रायः प्रेम में विशेष पाई जाती है, चाहे वह ईश्वरीय प्रेम हो या कोई अन्य विषय-संबंधी प्रेम। भाग्यवश इसी समय बंगाल में चैतन्य महाप्रभु ने और युक्त-प्रांत में महाप्रभु वल्लभाचार्यजी एवं महात्मा श्रीहितहरिवंश-जी ने कृष्णभक्ति का अनुपम तथा विस्तीर्ण स्रोत प्रवाहित किया। इन तीनों ऋषियों के साथ समस्त उत्तरी भारत में भक्ति का वह अद्भुत समुद्र उमड़ पड़ा, जिसकी तरंगों ने समस्त देश को प्लावित कर दिया। वल्लभाचार्यजी के पुत्र स्वामी बिट्ठलनाथजी भी अपूर्व भक्त थे। इन दोनों ऋषियों ने काव्य का इतना आदर किया कि स्वयं भी कविता की। स्वामी वल्लभाचार्यजी ने वन-यात्रा-नामक एक हिंदी-ग्रंथ भी बनाया। संवत् १६०० के लगभग स्वामी हरिदास-जी ने भी एक वैष्णव-संप्रदाय चलाया और हिंदी का बहुत अच्छा समादर किया। इन पाँचों महात्माओं के शिष्यवर्ग में उस समय सैकड़ों भक्तशिरोमणि हो गए। बिट्ठलनाथजी के पुत्र गोकुलनाथजी ने ८४ और २५२ वैष्णवों की वार्ता-नामक गद्य में जो दो बृहत् ग्रंथ लिखे, उनके देखने से विदित होता है कि ये भक्तगण सदैव कृष्णा-नंद में ही निमग्न रहते थे। यही बात उस पद्यमय ग्रंथ के देखने से विदित होती है जो हित संप्रदाय के अनुयायियों के वर्णनों में लिखी गई थी। यह अप्रकाशित ग्रंथ हमने दरबार छत्रपुर में देखा है। इसमें इस मत के प्रायः डेढ़-दो सौ महात्माओं के वर्णन हैं। अतः यह अच्छा समय था कि कविता की उन्नति होती। इसी समय तीन उत्कृष्ट कवियों का काव्य-काल प्रारंभ हुआ। महात्मा सूरदासजी वल्लभाचार्य महाप्रभु के शिष्य थे। मीराबाई भी भक्त-शिरोमणि थीं। १५६० संवत् से सूरदासजी का कविताकाल प्रारंभ होता है और उनकी लेखनी ने १६२० तक पीयूष-वर्षा की। मीरा-बाई एवं श्रीहितहरिवंशजी ने भी लगभग इसी समय में कविता

की है। इन्हीं तीनों कवियों की कविता इस समय की शृंगार है। जायसी और कृपाराम न ऐसे भक्त थे और न बड़े रसिया ही थे, अतः उनकी कविता उस दर्जे को नहीं पहुँची। कृपाराम ने १५९८ में हिततरंगिनी बनाई और जायसी ने १५७५ से १६०० तक पद्मावत की रचना की। सूरदासजी के कुछ ही पीछे अर्थात् संवत् १६०० के लगभग सैकड़ों भक्तजनों ने उत्तम भजनों में कृष्णयशगान किया। श्रीस्वामी विट्ठलनाथजी ने वल्लभीय संप्रदाय के कवियों में आठ उत्कृष्ट कवि छाँटकर उनकी गणना अष्टछाप में की। उनमें से प्रधान श्रीसूरदासजी थे। कहना पड़ेगा कि शेष सात कवियों की रचना मनोहर होने पर भी सौर कविता से किसी अंश में भी समानता नहीं कर सकती। उपर्युक्त वर्णन से प्रकट है कि वैष्णवता का हमारी कविता पर भारी प्रभाव पड़ा है। अतः अधिक स्पष्टीकरण के विचार से सूक्ष्मतया उसका भी कुछ हाल यहाँ लिखा जाता है।

वैष्णव-मत में चार प्रधान शाखाएँ हैं, जो माध्व, विष्णु, निंबार्क और रामानुज-नाम से प्रसिद्ध हैं। इन चारों संप्रदायों में राम और कृष्ण की उपशाखाएँ हैं, जिनमें मुख्यतया इन्हीं अवतारों की उपासना होती है। माध्व-संप्रदाय में नारायण की प्रधान उपासना है। चैतन्य महाप्रभु इसी संप्रदाय में थे। इन्होंने श्रीकृष्णचंद्र की भक्ति को प्रधानता दी और नाम-कीर्तन को मुख्य माना। ये महाप्रभुजी महाप्रभु वल्लभाचार्य के सहपाठी थे। ये दोनों महाशय भारी विद्वान् थे और श्रीकृष्ण के अवतार समझे जाते हैं। ये उनके अटल भक्त थे। चैतन्य महाप्रभु वृंदावन को भी एक बार गए थे, पर विशेषतया बंगाल और जगन्नाथपुरी में रहे। ये ऐसे महान् प्रेमी थे कि भक्ति की उमंग में आपे को भूल जाते थे। इसी प्रकार एक बार आपे की भूली हुई दशा में ये दौड़कर समुद्र में डूब गए और ऐसे ही इनका शरीरांत हुआ। इनका संप्रदाय माध्व के अंतर्गत गौड़ीय

कहलाता है। इस संप्रदाय के अनुयायी बंगाल की ओर बहुत हैं, परंतु एतद्देश में भी पाए जाते हैं। चैतन्य महाप्रभु की प्रगाढ़ भक्ति का प्रभाव जन-समूह पर बहुत पड़ा। इस संप्रदाय के भी कुछ कवि थे, जिनका नाम इस ग्रंथ में स्थान-स्थान पर मिलेगा। इन कवियों में ललितकिशोरीजी, कुंदनलाल तथा ललितमाधुरीजी (फुंदनलाल) प्रधान थे। चैतन्यजी नदिया के ब्राह्मण थे और वल्लभजी दाक्षिणात्य।

विष्णु-संप्रदाय में श्रीकृष्ण की भक्ति प्रधान है। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी इसी संप्रदाय में थे। इन्होंने कृष्ण-सेवा पर विशेष ध्यान दिया। इनके अनुयायी वल्लभीय संप्रदायवाले कहलाते हैं। ८४ एवं २५२ वैष्णवों की वार्ताओं में इसी संप्रदाय के महात्माओं के वर्णन हैं। इस संप्रदाय में बहुत-से कवि हुए हैं, जिनमें अष्टछाप प्रधान है। निंबार्क-संप्रदाय में भी श्रीकृष्ण का पूजन प्रधान है। महाकवि घनानंदजी इसी संप्रदाय के थे। महात्मा हरिदासजी निंबार्क-संप्रदाय में थे। आपने टट्टियों-वाली शाखा-संप्रदाय चलाई और विरक्ति एवं ब्रह्मचर्य पर विशेष ध्यान दिया, तथा मूर्तिपूजन का बल कम किया। इनके संप्रदाय में भी बहुत-से कवि और महात्मा हुए हैं, जिनके नाम इस ग्रंथ में स्थान-स्थान पर मिलेंगे। प्रसिद्ध कवि महाराजा नागरी-दासजी एवं महंत सीतलदास इसी संप्रदाय में थे।

रामानुज-संप्रदाय में नारायण-भक्ति प्रधान है। इसमें ईश्वर के शरण होने एवं यज्ञादिक पर विशेष ध्यान रहा है। महात्मा रामानंदजी इसी संप्रदाय में हुए। आपने रामभक्ति पर बहुत ध्यान दिया और इस प्रकार रामानुज-संप्रदाय की शाखास्वरूप रामानंदी संप्रदाय चलाया। गोस्वामी तुलसीदासजी इसी संप्रदाय में थे तथा अयोध्या के महंत आदि प्रायः इसी में हैं। इसमें भी बड़े-बड़े कवि हुए हैं।

गोस्वामी हितहरिवंशजी को राधाजी ने स्वप्न में मंत्र दिया और तब से ये अपने को उन्हीं का शिष्य मानने लगे। हितजी ने एक पृथक् संप्रदाय चलाया, जिसे हित-संप्रदाय कहते हैं। यह अनन्य संप्रदाय, हित अनन्य संप्रदाय, तथा राधावल्लभीय संप्रदाय भी कहलाता है। इसमें विशेषतया राधाजी की प्रधानता है। इसमें स्वयं हितहरिवंशजी एक परमोत्तम कवि थे और कितने ही अन्य उत्कृष्ट कवि हुए हैं, जिनमें हितध्रुवजी एवं चाचा वृंदावनजी प्रधान थे। गणना में इस संप्रदाय एवं वल्लभीय संप्रदाय के कवि प्रायः बराबर थे और उत्तमता में भी दोनों संप्रदायों के कवि समान कहे जा सकते हैं, क्योंकि वल्लभीय संप्रदाय में सूरदासजी अद्वितीय थे, तथापि हित-संप्रदाय में भी स्वयं हितजी तथा चाचाजी परमोत्तम कवि थे और कुल मिलाकर ये दोनों संप्रदाय काव्य-प्रौढ़ता में समान ही ठहरेंगे। रामानंदी संप्रदाय में स्वयं तुलसीदासजी तथा अन्य उत्तम कविगण थे, सो यह संप्रदाय भी काव्योत्कर्ष में उन्हीं दोनों संप्रदायों के समान था। टट्टी-संप्रदाय में भी अच्छे-अच्छे कवि थे, परंतु गणना तथा उत्तमता दोनों में वह इन तीनों की समानता नहीं कर सकता। ये बातें केवल काव्योत्कर्ष के अनुसार लिखी जाती हैं। भक्ति-भाव एवं धार्मिक महत्त्व के विषय में हम कुछ भी तुलना नहीं करते। इन भावों में ये सभी संप्रदाय महान् थे। गौर-संप्रदाय की विशेषता बंगाल में रही और हिंदी में उसके बहुत कवि नहीं हुए।

इस स्थान पर भक्ति के विषय में भी दो-एक बातों का लिखना उचित जान पड़ता है। भक्ति पाँच भावों से की जाती है, अर्थात् शांत, दास, वात्सल्य, सख्य और शृंगार। प्रहलाद की भक्ति शांतभाव की थी, तथा हनुमान, रामानंद, तुलसीदास आदि

की दासभाववाली। वल्लभीय संप्रदायवाले वात्सल्यभाव की भक्ति रखते थे, परंतु इसमें सूरदास एवं कुछ अन्य कवियों ने वात्सल्य के साथ सख्यभाव भी मिला दिया था। शृंगारभाव की भक्ति में प्रायः भक्तजन अपने को प्रियाजी की सखी समझते हैं। हरिदासजी, हितहरिवंशजी, चैतन्य महाप्रभु आदि की भक्ति इसी सखीभाव की थी। जितने भक्तों के नामों के साथ अली नाम लगा है, उन सबकी भक्ति सखीभाव की प्रसिद्ध है। सखीभाव का तात्पर्य यह है कि केवल ईश्वर पुरुष है और सब भक्त उसके आश्रित हैं, सो उनमें स्त्रीभाव है। कृपानिवास, अग्रदास-नाभादास आदि का भी सखीभाव था। रामसखे, श्यामसखे आदि का सखाभाव था। यही सब भाव इन भक्तों की कविताओं से भी प्रकट होते हैं। वैष्णव-संप्रदायों की रामानंदी शाखा में दासभाव मुख्य है और वल्लभीय में वात्सल्य। शेष संप्रदायों में सखीभाव का ही प्राधान्य है।

वैष्णव-संप्रदायों में सबसे पहले राधावल्लभीय का प्रभाव हिंदी-साहित्य पर पड़ा। जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस संप्रदाय के वैष्णवों में बहुत-से महात्माओं ने साहित्य-सेवा की है। इन सब-में अष्टछापवाले कविगण सर्वप्रधान माने गए हैं। इस अष्टछाप में सूरदास, कृष्णदास, परमानंददास तथा कुंभनदास श्रीस्वामी वल्लभाचार्य के शिष्य थे और शेष तत्पुत्र बिट्ठल स्वामी के। इन कवियों का सूक्ष्म हाल नीचे लिखा जाता है।

(५२) महात्मा श्रीसूरदासजी

इनका जन्म दिल्ली के पास सीही-ग्रामनिवासी रामदास-नामक एक दरिद्र सारस्वत ब्राह्मण के यहाँ लगभग सं० १५४० के हुआ था। ये महाशय श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे और जीवन-पर्यंत सदैव कृष्णानंद में मग्न रहे। आठ वर्ष की अवस्था

से अपने माता-पिता को छोड़ आप श्रीमथुराजी में रहने लगे थे और अंत तक व्रजमंडल ही में रहे। इनका शरीरपात सं० १६२० के आसपास पारासोली-ग्राम में हुआ। इनका निवास-स्थान विशेषतया गऊघाट पर था। इन्होंने सूरसागर, सूरसारावली, साहित्यलहरी, व्याहलो और नल-दमयंती-नामक पाँच ग्रंथों की रचना की। चौथे त्रैवार्षिक खोज में इनका एक ग्रंथ प्राणप्यारी-नामक मिला है। उनमें सूरसागर प्रौढ़तम और परमोत्कृष्ट है। कहा जाता है कि इसमें प्रायः एक लाख पद हैं, परंतु आजकल जितनी प्रतियाँ सूरसागर की मिलती हैं, उनमें पाँच-छः हज़ार से अधिक पद नहीं मिलते। इसमें गौण रूप से समस्त भागवत की कथा कही गई है, परंतु विस्तार-पूर्वक व्रजवासी कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। सूरसारावली सूरसागर का सारांश है और साहित्य-लहरी में सूर-कृत दृष्टकूटों का संग्रह है। व्याहलो और नल-दमयंती की कथाओं के विषय उनके नाम ही प्रकट करते हैं। कैटालागस कैटालागोरम में इनकी हरिवंशटीका नाम की एक और पुस्तक लिखी है। पदसंग्रह. दशम स्कंध टीका, एवं नाग-लीला, यह तीन ग्रंथ खोज में इनके और मिले हैं। तृ० त्रै० रि० में इनके भागवत तथा सूरपचीसी-नामक ग्रंथ भी मिले हैं।

सौर कविता में भक्ति का गुण सर्वप्रधान है। इनकी भक्ति वात्सल्य और सख्यभाव की थी। ये महाशय एक ईश्वर के उपासक थे। और राम, कृष्ण तथा विष्णु को एक ही समझते थे। इन्होंने शुद्ध व्रजभाषा में कविता की और उपमा, रूपक, नख-शिख, प्रबंधध्वनि एवं अन्य काव्यांगों का अपनी कविता में अच्छा सन्निवेश किया। आपने अपने प्रिय विषयों के वर्णन बहुत ही सांगो-पांग और विस्तार से किए। इस गुण में शायद संसार साहित्य में आपकी समानता करनेवाला कोई भी कवि नहीं हुआ। श्रीकृष्णचंद्र

की बाललीला का वर्णन इन्होंने विस्तार-पूर्वक और ऐसा विशद किया कि जिसको देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। माखनचोरी, ऊखलबंधन, रासलीला, मथुरागमन और उद्धव-संवाद आदि इनके परमोत्कृष्ट और प्रभाव-पूर्ण वर्णन हैं, जिनके देखने से इनकी कविता का महत्त्व पाठक को विदित होता है। इनका मथुरागमन बड़ा ही हृदयद्रावक है। वर्णन-पूर्णता, साहित्य-गौरव, बारीकबीनी, रंगों का सम्मिश्रण एवं तत्प्रभाव, तथा भाव-गरिमा की सूरदास में अच्छी बहार है। भक्तिगांभीर्य के साथ इन्होंने ऊँचे विचारों, प्रकृति-निरीक्षण एवं मानव शील-गुणावलोकन के अनुभवों को खूब मिलाया है। आपने चरित्र-चित्रण में अच्छी सफलता प्राप्त की है। इनके वर्णनावलोकन से मनुष्य में उच्च भावों का संचार होगा। सूरदासजी के गुणगणों का दिग्दर्शन-मात्र यहाँ कराया गया है। जिन पाठकों को विस्तार-पूर्वक इनकी समालोचना पढ़नी अभीष्ट हो, वे हमारा हिंदी-नवरत्न देखने की कृपा करें। तृ० त्रै० रि० में इनके भागवत तथा सूर-पचीसी-नामक ग्रंथ भी मिले हैं।

उदाहरण—

अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल ;
काम, क्रोध को पहिरि चोलना कंठ बिषय की माल।
महामोह के नूपुर बाजत निंदा सबद रसाल ;
भरम भर्यो मन भयो पखावज चलत कुसंगति चाल।
तृष्णा नाच करत घट भीतर नाना बिधि दै ताल ;
माया को कटि फेंटा बाँधे लोभ तिलक दै भाल।
कोटिक कला काछि दिखराई जल थल सुधि नहिं काल ;
सूरदास की सबै अबिद्या दूरि करौ नँदलाल।

अब कै राखि लेहु गोपाल ;
दसहु दिसा ते दुसह दवागिनि उपजी है यहि काल।

पटकत बाँस कास कुस चटकत लटकत तालतमाल ;
उचटत अति अंगार फुटत झर झपटत लपट कराल ।
धूम धुंध बाढ़ी धर अंबर चमकत बिच-बिच ज्वाल ;
हरिन बराह मोर चातक पिक जरत जीव बेहाल ।
जनि जिय डरहु नैन मूँदहु सब हँसि बोले गोपाल ;
सूर अनल सब बदन समानी अभय करे ब्रजबाल ।

देखु सखि सुंदरता को सागर ;
बुधि विवेक बल पार न पावत मगन होत मन नागर ।
तनु अति स्याम अगाध अंबुनिधि कटि पट पीत तरंग ;
चितवत चलत अधिक रुचि उपजत भँवर परत सब अंग ।
नैन मीन मकराकृत कुंडल भुजबल सुभग भुजंग ;
मुकुत माल मिलि मानहु सुरसरि दोय सरित लिय संग ।
मोर मुकुट मनि नग आभूषन कटि किंकिनि नख चंद ;
मनु अडोल बारिधि मैं बिंबित राका उड़गन वृंद ।
बदन चंद मंडल की सोभा अवलोकनि सुख देत ;
जनु जलनिधि मथि प्रकट कियो ससि श्री अरु सुधा समेत ।
देखि सरूप अमल गोपीजन रहीं बिचारि-बिचारि ;
तदपि सूर तरि सकीं न शोभा रही प्रेम पचि हारि ।

स्याम कर मुरली अतिहि बिराजत ;
परसत अधर सुधारस प्रकटत मधुर-मधुर सुर बाजत ।
लटकत मुकुट भौंह छबि मटकत नैन-सैन अति छाजत ;
ग्रीव नवाय अटकि बंसी पर कोटि मदन छबि लाजत ।
लोल कपोल झलक-कुंडल की यह उपमा कछु लागत ;
मानहुँ मकर सुधासर क्रीड़त आपु-आपु अनुरागत ।
वृंदावन विहरत नँद नंदन ग्वाल सखन सँग सोहत ;
सूरदास प्रभु की छबि निरखत सुर नर मुनि मन मोहत ।

हरि मुख निरखत नैन भुलाने ;
ए मधुकर रुचि पंकज लोभी ताही ते न उड़ाने ।
कुंडल मकर कपोलन के ढिंग मनु रबि रैनि बिहाने ;
भ्रुव सुंदर नैननि गति निरखत खंजन मीन लजाने ।
अरुन अधर ध्वज कोटि बज्र दुति ससिगन रूप समाने ;
कुंचित अलक सिलीमुख मानहुँ लै मकरंद निदाने ।
तिलक ललाट कंठ मुकतावलि भूषनमय मनि साने ;
सूरदास स्वामी अँग नागर ते गुन जात न जाने ।

प्रिया मुख देखौ स्याम निहारि ;
कहि न जाय आनन की शोभा रही बिचारि बिचारि ।
छीरोदक घूँघट हातो करि सनमुख दियो उघारि ;
मनहुँ सुधाकर छीरसिंधु तें कढ़्यो कलंक पखारि ।
मुकता माँग सीस पर सोभित राजति यहि आकारि ;
मानहु उड़गन जानि नवल ससि आए करन जुहारि ।
भाल लाल सिंदूर बिंदु पर मृगमद दियो सुधारि ;
मनौं बँधूक कुसुम ऊपर अलि बैठो पंख पसारि ।
चंचल नैन चहूँ दिसि चितवत जुग खंजन अनुहारि ;
मनहुँ परसपर करत लराईं कीर बचाईं रारि ।
बेसरि के मुकता मैं झाँईं बरन बिराजत चारि ;
मानहुँ सुरगुरु सुक्र भौम सनि चमकत चंद मझारि ।
अधर बिंब दसनन की सोभा दुति दामिनि चमकारि ;
चिबुक बिंदु बिच दियो बिधाता रूप सींव निरवारि ।
जोति पुंज पटतर करिबे को दीजै कह अनुहारि ;
जनु जुग भानु दुहूँ दिसि उगए तम दुरि गयो पतारि ।
लाल सु माल हार कुचमंडल सखियन गुही सुढारि ;
मनु दस दिसि निरधूम अगिनि करि तप बैठे त्रिपुरारि ।

सनमुख डीठि परे मनमोहन लजित भई सुकुमारि ;
लीन्हीं उमगि उठाय अंक भरि सूरदास बलिहारि ।
लखियत चहुँ दिसि ते घन घोरे ;
मानहु मत्त मदन के हथियन बल करि बंधन तोरे ।
स्याम सुभग तन चुवत गंडमद बरसत थोरे-थोरे ;
रुकत न पौन महावत हू पै मुरत न अंकुस मोरे ।
पल बरुनी बल निकसि नैन जल कुचकंचुकि बँद बोरे ;
मनौ निकसि बगपाँति दंत उर अवधि सरोवर फोरे ।
तब तेहि समय आनि ऐरावत ब्रजपति सों कर जोरे ;
अब सुनि सूर कान्ह केहरि बिन गरत गात जिमि ओरे ।

नाम—(५२/१) ईश्वर सूरि जैन ।

ग्रंथ—ललितांग-चरित्र ।

रचनाकाल—१५६१ ।

विवरण—शांति सूरि के शिष्य थे ।

उदाहरण—

सालंकार समत्थं सच्छंदं सरस सुगुण संजुत्तं ;
ललि यंग कुमर चरियं ललणा ललि यव निसुणेह ।
महि महति मालव देस ; धण कणय लच्छि निवेस ;
तिंह नयर मडव दुग्ग ; अहि नवउ जाणकि सग्ग ।
नव रस बिलास उलोल ; नवगाह गेय कलोल ;
निज बुद्धि बहुअ बिनाणि ; गुरु धम्म फल बहु जाणि ।
इय पुण्य चरिय प्रबंध ; ललि अंग नृप संबंध ;
पहु पास चरियह चित्त ; उद्धरिय एह चरित्त ।

(५३) कृष्णदास

ये महाराज वल्लभाचार्यजी के शिष्य थे । आपके कोई ग्रंथ हमने नहीं देखे, परंतु १०४ पद हमारे पास वर्तमान हैं । इन्होंने

अधिकतर भक्ति-पूर्ण शृंगार-रस का वर्णन किया है। ये महाशय जाति के शूद्र थे, पर तो भी आचार्यजी के शिष्य और सच्चे वैष्णव होने से ये श्रीनाथजी के मंदिर के सर्वप्रधान प्रबंधकर्ता नियत हुए। एक बार बिट्ठलनाथजी से चिढ़कर इन्होंने श्रीनाथजी में उनकी डेवढ़ी बंद कर दी, जिससे गोस्वामीजी को अत्यंत कष्ट हुआ। यह हाल सुनकर महाराजा बीरबल ने कृष्णदासजी को क़ैद कर दिया। इस पर गोस्वामी बिट्ठलनाथजी ही को इनके कष्टों पर इतना खेद हुआ कि उन्होंने अन्न-जल छोड़ दिया। यह देख बीरबल ने इन्हें कारागार से मुक्त किया। गोस्वामीजी ने फिर भी इन्हें श्रीनाथजी के प्रबंध पर बहाल रक्खा। कृष्णदास ने जुगल मान चरित्र, भक्तमाल पर टीका, भ्रमरगीत, और प्रेमसत्त्वनिरूप-नामक तीन ग्रंथ बनाए। इनका काल १६०० के लगभग है। कविता में ये सूरदासजी से लाग-डाट रखते थे। आपका वैष्णववंदन नामक ग्रंथ खोज में मिला है। इनका बानी-नामक एक और ग्रंथ सुन पड़ता है तथा सरोजकार ने प्रेमरस-रास-ग्रंथ का नाम भी इनके संबंध में दिया है। इस नाम के कई महात्मा कवि भी थे, सो यह निश्चय नहीं होता कि ये सब ग्रंथ इन्हीं के हैं अथवा कुछ औरों के भी। कृष्णदास पयअहारी इनसे इतर महाशय थे।

इनकी कविता अच्छी होती थी और हम इन्हें तोष की श्रेणी में रक्खेंगे। आपने शुद्ध व्रजभाषा का प्रयोग किया। आपकी रचना निर्दोष, भाव-पूर्ण और सोहावनी है। उसमें अनूठेपन की अच्छी बहार है। आपकी गणना अष्टछाप में थी और आपका चरित्र ८४ वैष्णवों की वार्ता में लिखा हुआ है।

उदाहरण—

रासरस गोबिंद करत बिहार।
सूरसुता के पुलिन रम्य महँ फूले कुंद मँदार।

अद्‌भुत सतदल विकसित कोमल मुकुलित कुमुद कल्हार ।
मलय पवन बह सारद पूरन चंद मधुप झंकार ।
सुघर राय संगीत कलानिधि मोहन नंदकुमार ।
अंजभामिनि सँग प्रमुदित नाचत तन चरचित घनसार ।
उभै स्वरूप सुभगता सींवाँ कोक कला सुख सार ।
कृष्णदास स्वामी गिरिधर पिय पहिरे रस मैं हार ।

नाम—(५३/१) अजबेस भट्ट ।

रचनाकाल—१५७० ।

विवरण—जोधपुर के राजा वीर भानु के आश्रित थे ।

(५४) परमानंददास

ये महाशय कान्यकुब्ज ब्राह्मण कन्नौज के रहनेवाले थे । इनकी भी गणना अष्टछाप में थी । ये महाराज श्रीस्वामी वल्लभाचार्य के शिष्य थे। इनकी कविता बहुत मनोरंजक बनती थी । आपने बालचरित्र और गोपियों के प्रेम का बहुत वर्णन किया है । इनका एक पद खड़ी बोली में भी हमने देखा है । इनका रचा हुआ एक ग्रंथ परमानंदसागर हमारे सुनने में आया है और इनके स्फुट छंद बहुत-से यत्र-तत्र पाए जाते हैं। इनका एक पद सुनकर वल्लभाचार्यजी एक बार ऐसे प्रेमोन्मत्त हो गए कि कई दिन तक देहानुसंधान-रहित रहे। इससे एवं छंदों के पढ़ने से विदित होता है कि इनमें तल्लीनता का गुण खूब था। इनके बनाए हुए 'परमानंददासजी का पद' और 'दानलीला' १९०२ की खोज में मिले हैं। इनका समय १६०६ के लगभग था। प्र० त्रै० खोज में इनका एक ग्रंथ ध्रुव-चरित और मिला है। चौरासी वैष्णवों की वार्ता में भी आपका वर्णन किया गया है । हम इनको तोष कवि की श्रेणी में रक्खेंगे ।

उदाहरण—

देखो री यह कैसा बालक रानी जसुमति जाया है ;
सुंदर बदन कमल दल लोचन देखत चंद्र लजाया है ।
पूरन ब्रह्म अलख अविनासी प्रगटि नंद घर आया है ;
परमानंद कृष्ण मन मोहन चरन कमल चित लाया है ।

राधेजू हारावलि टूटी ;
उरज कमल दल माल मरगजी बाम कपोल अलक लट छूटी ।
बर उर उरज करज पर अंकित बाहु जुगुल बलयावलि फूटी ;
कंचुकि चीर बिबिध रँग रंजित गिरिधर अधर माधुरी घूटी ।
आलस बलित नैन अनियारे अरुन उनींदे रजनी खूटी ;
परमानँद प्रभु सुरति समै रस मदन नृपति की सेना लूटी ।

कहा करौं बैकुंठहि जाय ;
जहँ नहिं नँद जहाँ नहीं जसोदा जहँ नहिं गोपी ग्वाल न गाय ।
जहँ नहिं जल जमुना को निरमल और नहीं कदमन की छाय ;
परमानँद प्रभु चतुर ग्वालिनी ब्रजरज तजि मेरि जाय बलाय ।

(५५) कुंभनदास

ये महाराज वल्लभाचार्यजी के शिष्य अपने समय के पूरे ऋषि थे । एक बार अकबर के बुलाने पर इन्हें फ़तेहपुर सीकरी जाना पड़ा और यह अकबर शाह द्वारा सम्मानित भी हुए, परंतु फिर भी इन्हें वहाँ जाना समय का नष्ट करना-मात्र समझ पड़ा । इनकी कविता में शृंगार-रस का प्राधान्य समझ पड़ता है, परंतु वह कृष्णानंद से पूर्ण है । हम कविता की दृष्टि से इनकी गणना साधारण श्रेणी में करेंगे । इनकी भी गिनती अष्टछाप में थी । आपका कोई ग्रंथ देखने में नहीं आया, परंतु इनके प्रायः ४० पद हमारे पास हैं । ये महाशय सदैव परम दरिद्री रहे, परंतु इन्होंने कभी किसी राजा या बादशाह से धन लेना स्वीकार न किया । इनका कविता-

काल १६०६ के लगभग था। कुंभनदासजी की कथा ८४ वैष्णवों की वार्ता में वर्णित है। ये महाशय गौरवा ब्राह्मण थे। इनके सात पुत्रों में चतुर्भुजदास भी एक थे। इनके पौत्र राघवदास भी अच्छे कवि थे।

उदाहरण—

संतन का सिकरी सन काम ;
आवत जात पनहियाँ टूटीं बिसरि गयो हरि-नाम।
जिनको मुख देखे दुख उपजत तिनको करिबे परी सलाम ;
कुंभनदास लाल गिरिधर बिन और सबै बेकाम।

तुम नीके दुहि जानत गैया ;
चलिए कुँवर रसिक मन मोहन लगौं तिहारे पैया।
तुमहि जानि करि कनक दोहिनी घर ते पठई मैया ;
निकटहि है यह खरिक हमारो नागर लेहुँ बलैया।
देखियत परम सुदेस लरिकई चित चुहँट्यो सुँदरैया ;
कुँभनदास प्रभु मानि लई रति गिरि गोबरधन रैया।

(५६) चतुर्भुजदास

ये महाशय स्वामी बिट्ठलनाथजी के शिष्य और कुंभनदास के पुत्र थे। इनका वर्णन १५२ वैष्णवों की वार्ता में है। आपकी कविता में शृंगार-रस का प्राधान्य है। इनकी भी गणना अष्टछाप में थी। हम इन्हें साधारण श्रेणी में रक्खेंगे। इनकी अल्ल गौरवा थी। इन्होंने मधुमालती री कथा एवं भक्तिप्रताप-नामक ग्रंथ भी बनाए हैं। आपका समय १६२५ के लगभग था। इनके ४९ पद एवं 'समैया के पद'-नामक ६६ पृष्ठों का एक ग्रंथ हमने देखा है।

इनका एक ग्रंथ द्वादशयश-नामक और देखने में आया है, जिसमें संवत् १२६० लिखा है। जान पड़ता है कि यह समय अशुद्ध है, क्योंकि ये महाशय स्वामी बिट्ठलनाथ के शिष्य तथा कुंभनदास

के पुत्र थे, सो इनका रचना-काल १५६० ठीक नहीं माना जा सकता है। संभव है कि यह ग्रंथ किसी दूसरे चतुर्भुजदास का हो। हितजू को मंगल-नामक इनका एक और ग्रंथ खोज में मिला है।

उदाहरण—

जसोदा कहा कहौं हौं बात ;
तुम्हरे सुत के करतब मोपै कहत कहे नहिं जात।
भाजन फोरि ढोरि सब गोरस लै माखन दधि खात ;
जो बरजौं तौ आँखि देखावै रंचहु नाहिं सकात।
और अटपटी कहँ लौं बरनौं छुवत पानि सौं गात ;
दास चतुर्भुज गिरिधर गुन हौं कहति कहति सकुचात।

(५७) छीतस्वामी

ये महाराज गोस्वामी बिट्ठलनाथजी के शिष्य थे। इनकी भी गणना अष्टछाप में है। ये महाशय मथुरिया पंडा थे और राजा बीरबल इनके यजमान थे। पहले ये बड़े गुंडे थे, पर स्वामी विट्ठलनाथजी के दर्शन पाकर पूर्ण भक्त हो गए। इनका समय १६१२ के लगभग था। आपका कोई ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आया, परंतु स्फुट छंद ३४ हमारे पास वर्तमान हैं। कविता के विचार से हम इन्हें साधारण श्रेणी में रक्खेंगे। इनका वर्णन २५२ वैष्णवों की वार्ता में है।

उदाहरण—

भोर भए नव कुंज सदन ते आवत लाल गोबर्द्धन धारी ;
लटपट पाग मरगजी माला सिथिल अंग डगमग गति न्यारी।
बिनु गुन माल बिराजत उर पर नख छत द्वैज चंद अनुहारी ;
छीतस्वामि जब चितए मो तन तब हौं निरखि गई बलिहारी।

(५८) नंददास

ये महाराज किसी तुलसीदासजी के भाई थे। इन्होंने १६२३ के लग-

भग कविता की। अनेकार्थ नाममाला,*रास पंचाध्यायी, रुक्मिणीमंगल, हितोपदेश,*. दशमस्कंध भागवत, दानलीला, मानलीला, ज्ञानमंजरी, †अनेकार्थ मंजरी,‡ रूपमंजरी, नाममंजरी नामचिंतामणि माला,× रसमंजरी,+ विरहमंजरी+ नाममाला,+ नासकेतु+ पुराण गद्य, और श्यामऽ सगाई नामक ग्रंथ इनके बनाए हुए हैं। इनकी गणना अष्ट-छाप में है। ये स्वामी बिट्ठलनाथजी के शिष्य थे। शिष्य होने के प्रथम एक बार ये द्वारका जा रहे थे, पर राह भूलकर सीनंद ग्राम में पहुँचे और वहाँ एक खत्री की स्त्री पर आसक्त हो गए। उस स्त्री के संबंधी इनसे पिंड छुटाने को गोकुल चले गए, पर ये भी पीछे लगे रहे। अंत में बिट्ठलनाथजी के उपदेश से इनका मोह भंग हुआ और इनका अगाध प्रेम कृष्णभगवान् में लग गया। यह हाल २५२ वैष्णवों की वार्ता में लिखा है। बाबू राधाकृष्णदास ने भक्तनामावली में लिखा है कि नंददासजी का २५२ वार्ता में सनाढ्य ब्राह्मण होना लिखा है, पर वार्ता देखने से प्रकट हुआ कि उसमें नंददास का केवल ब्राह्मण और किसी तुलसीदासजी का भाई होना कहा गया है। इससे प्रकट है कि नंददासजी ब्राह्मण थे। इस विषय में हमारा तुलसीदास-विषयक प्रबंध हिंदी-नवरत्न में देखिए। इनकी कविता बड़ी ही ओजस्विनी, गंभीर एवं मनोहारिणी होती थी। रास-पंचाध्यायी पढ़कर चित्त परम प्रसन्न हो जाता है। हम इनकी गणना पद्माकर की श्रेणी में करेंगे।

उदाहरण—

परम दुसह श्री कृष्ण विरह दुख व्याप्यो तिनमें;
कोटि बरस लगि नरक भोग दुख भुगते छिन में।

---

* खोज ११०१। † खोज ११०२। ‡ खोज ११०३। × जोग-लीला। + द्वि० त्रै० रि०। ऽ प्र० त्रै० रि०।

सुभग सरित के तीर धीर बल बीर गए तहँ ;
कोमल मलय समीर छबिन की महा भीर जहँ ।
कुसुम धूरि धूँधरी कुंज छबि पुंजनि छाई ;
गुंजत मंजु मलिंद बेनु जनु बजति सोहाई ।
इत महकति मालती चारु चंपक चित चोरत ;
उत घनसारु तुसारु मलय मंदारु झकोरत ।
नव मर्कत-मनि स्याम कनक मनि मय ब्रजबाला ;
बृंदाबन गुन रीझि मनहु पहिराई माला ।

इनकी कविता के विषय में कहावत प्रसिद्ध है कि "और सब गढ़िया, नददास जड़िया", अर्थात् और सब कवि गहने गढ़ते थे, पर नंददास उन्हें जड़ते थे, अर्थात् पच्चीकारी का महीन काम नंददास ही के भाग पड़ा था । इनका एक गद्य-ग्रंथ भी छत्रपूर में हमने देखा है । यह विज्ञानार्थप्रकाशिका-नामक संस्कृत-ग्रंथ की ब्रजभाषा में टीका है । इसके अतिरिक्त नासकेतपुराण का भाषानुवाद गद्य में इन्होंने किया है, जैसा कि ऊपर लिखा गया है । कहते हैं कि मथुरावाले व्यासों के आग्रह से इन्होंने रासपंचाध्यायी से इतर अपनी भागवत-कविता यमुनाजी में डुबो दी । व्यासों को यह भय हुआ था कि भाषा भागवत सभी पढ़ लेंगे, जिससे उनकी संस्कृत भाषा में कथाओं का माहात्म्य घट जायगा ।

(५९) गोविंदस्वामी

ये महाशय अंतरी के रहनेवाले सनाढ्य ब्राह्मण थे । वहाँ से आकर ये महावन में रहे और लोगों को शिष्य करते रहे । अंत में ये स्वयं स्वामी बिट्ठलनाथजी के शिष्य हो गए और तब से गोवर्द्धन पर श्रीनाथजी की सेवा में रहने लगे । ये कवि होने के अतिरिक्त गान-विद्या में बहुत निपुण थे और तानसेन भी इनके गाने से मोहित हो जाते थे । इनकी कविता केवल अच्छे गवैए ही गा सकते हैं ।

इन्होंने गोवर्द्धन के पास कदंब का एक उपवन लगाया था, जो अब तक वर्तमान है और गोविंदस्वामी की कदंब खंडी कहलाता है। इनके कोई ग्रंथ देखने में नहीं आए, परंतु स्फुट पद बहुत इधर-उधर देखे-सुने गए हैं। इनकी कविता साधारणतः सरस और मधुर है, और अष्टछाप के अन्य कवियों की भाँति कृष्णानंद से भरी है। हम इनकी गणना साधारण श्रेणी में करेंगे। इनका समय १६२३ के लगभग था।

उदाहरण—

प्रात समै उठि जसुमति जननी गिरिधर सुत को उबटि न्हवावति ;
करि शृंगार बसन भूषन सजि फूलन रचि-रचि पाग बनावति।
छुटे बंद बागे अति सोभित बिच-बिच चोव अरगजा लावति ;
सूथनलाल फूँदना सोभित आजु कि छबि कछु कहति न आवति।
बिबिधि कुसुम की माला उर धरि श्रीकर मुरली बेत गहावति ;
लै दरपन देखे श्रीमुख को गोबिंद प्रभु चरननि सिर नावति।

बारहवाँ अध्याय

प्रौढ़ माध्यमिक काल के अन्य प्रभावशाली कविगण

(५९ अ) चंद-नामक किसी कवि ने सं० १५६३ में हितोपदेश ग्रंथ बनाया।

उदाहरण—

संवत पंद्रह सै जब भयऊ ; तिरसठि बरस अधिक चलि गयऊ।
फागुन मास पाख उजियारा ; सुभ नछत्र सातैं सुभ बारा।
तेहि दिन कबि आरंभेऊ चंद चतुर मन लाय ;
हित उपदेश सुनत सुख दुख बैराग्य नसाय।

(६०) गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजी

ये महाराज देवबंद (अथवा देवनगर) सहारनपूर के निवासी

गौड़ ब्राह्मण व्यास मिश्र के पुत्र थे। इनके पिता का उपनाम हरिराम मिश्र तथा माता का नाम तारा रानी था। हरिवंशजी का जन्म मिती बैसाख-बदी ११ संवत् १५३० का था। इनके रुक्मिणी-नाम्नी स्त्री से तीन पुत्र और एक कन्या हुई। फिर ये महाशय वृंदावन पहुँचे और वहाँ कार्त्तिक-शुक्ल तेरसि संवत् १५६५ को इन्होंने श्रीराधावल्लभजी की मूर्ति स्थापित की। इन संवतों का हाल इनके संप्रदाय में विदित है। इनके शिष्यों में ध्रुवदास के होने से हमें इनके समय के विषय में प्रथम भ्रम हो गया था, पर पीछे जान पड़ा कि संवत् १६४० के लगभग जन्म पानेवाले ध्रुवदास इनके शिष्य तीसरे पुत्र गोपीनाथ के स्वप्न द्वारा हुए थे। हितजी ने स्वप्न में राधाजी से मंत्र पाया और तब से आप उन्हीं के शिष्य हो गए।

ये महाशय अनन्य (राधावल्लभीय) संप्रदाय के संस्थापक थे। यह मत परम प्रसिद्ध है और लाखों मनुष्य अब भी इस संप्रदाय में हैं। कितने ही बड़े-बड़े भक्त इनके शिष्य थे। इनके वंशधरों की एक भारी गद्दी है और वल्लभ-संतानों की भाँति वे भी पूजे जाते हैं। इनके शिष्य सेवकजू अच्छे कवि थे। स्वामीजी के कुल चार पुत्र थे। ये महाशय बड़े भक्त थे और इनका जीवन बड़ा ही पुनीत था। ये संस्कृत और भाषा के कवि थे। संस्कृत में इन्होंने राधा-सुधानिधि-नामक २७० श्लोकों का ग्रंथ बनाया। भाषा में आपने ८४ पद कहे, जिनके संग्रह का नाम शिवसिंहजी ने 'हित चौरासी धाम' लिखा है और हमारे पास वही 'प्रेमलता'-नामक पुस्तक के नाम से वर्तमान है। बाबू राधाकृष्णदास ने लिखा है कि उन्होंने इन ८४ पदों के अतिरिक्त कुछ और भी इनके पद देखे हैं। यद्यपि ये महाशय संस्कृत के भी कवि थे, तथापि इनकी भाषा-कविता में अव्यवहृत प्रायः एक भी संस्कृत का पद अथवा श्रुति-कटु शब्द नहीं

आने पाया है। इनकी भाषा बड़ी ही मृदुल और सुष्ठु है। इन्होंने अनुप्रास, यमकादि का आदर नहीं किया है; फिर भी इनकी भाषा परम मनोहर है। गोस्वामीजी ने इन थोड़े-से पदों में ही अपनी पूर्ण कवित्व-शक्ति का परिचय दे दिया है। इन्होंने संगीत और काव्य, दोनों का अच्छा स्वरूप दिखाया है। इन महाराज द्वारा नख-शिख का वर्णन कहीं-कहीं एक-ही-एक पद में विलक्षण प्रकार से दिखा दिया गया है और उपमाएँ भी अच्छी-अच्छी दी गई हैं। गोस्वामीजी का रासवर्णन बड़ा ही विशद है। उत्तम पदों की मात्रा इनकी कविता में विशेष है और वह बहुत आदरणीय है। इनके पद बड़े गंभीर हैं। हम इन्हें सेनापति की श्रेणी में रखते हैं। ये महाशय काव्यरसिकता के कारण काव्य नहीं करते थे, वरन् इन्होंने भक्तिप्रचुरता के कारण ऐसा किया है। कविता इनके पवित्र जीवन का एक अंश-मात्र थी और ये इसी कारण कविता करते थे कि वह इनकी भक्तिमार्ग में सहायक थी। इन महाशय ने भक्तिप्रगाढ़ता के कारण ही श्रीकृष्णचंद्र के विषय में शृंगार-कविता भी की है। खोज में इनका एक ग्रंथ स्फुट नाम का मिला है। इनकी कविता से कुछ पद नीचे लिखे जाते हैं—

रागदेवगंधार

ब्रज नव तरुणि कदंब मुकुट मणि श्यामा आजु बनी;
नख शिख लौं अँग अंग माधुरी मोहे श्याम धनी।
यों राजत कवरी गूँथित कच कनक कंज बदनी;
चिकुर चंद्रिकनि बीच अरध विधु मानहुँ ग्रसत फनी।
सौभग रस सिर श्रवत पनारी पिय सीमंत ठनी;
भृकुटि काम को दंड नैन सर कज्जल रेख अनी।
तरल तिलक ताटंक गंड पर नासा जलज मनी;
दसन कुंद सरसाधर पल्लव पीतम मन समनी।

चिबुक मध्य अति चारु सहज सखि साँवल बिंदु कनी ;
प्रीतम प्रान रतन संपुट कुच कंचुकि कसित तनी।
भुज मृनाल बल हरत बलयजुत परस सरस श्रवनी ;
स्याम सीस तरु मनु मिड़वारी रची रुचिर रवनी।
नाभि गँभीर मीन मोहन मन खेलन कौं ह्रदिनी ;
कृश कटि पृथु नितंब किंकिनि व्रत कदलि खंभ जघनी।
पद अंबुज जावकयुत भूषण प्रीतम उर अवनी ;
नव नव भाय बिलोभ भाम इभ बिहरत बर करनी।
हितहरिबंस प्रसंसित स्यामा कीरति बिसद घनी ;
गावत स्रवननि सुनत सुखाकर बिस्व दुरित दवनी।

राग सारंग

चलहि किन मानिनि कुंज-कुटीर ;
तो बिन कुँवर कोटि बनिता जुत मथत मदन की पीर।
गद्‌गद सुर बिरहाकुल पुलकित श्रवत बिलोचन नीर ;
क्वासि क्वासि वृषभानुनंदिनी बिलपत बिपिन अधीर।
बंसी बिसिख व्याल मालावलि पंचानन पिक कीर ;
मलयज गरल हुतासन मारुत साखामृग रिपुचीर।
हित हरिवंस परम कोमल चित चपल चली पिय तीर ;
सुनि भय भीत बज्र को पिंजर सुरत सूर रनबीर।

आजु बन नीको रास बनायो ;
पुलिन पवित्र सुभग यमुनातट मोहन बेनु बजायो।
कल कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचुपायो ;
जुवतिनु मंडल मध्य श्यामघन सारँग राग जमायो।
ताल मृदंग उपंग मुरज डफ मिलि रससिंधु बढ़ायो ;
बिबिध बिसद वृषभाननंदिनी अंग सुगंध दिखायो।
अभिनय निपुन लटकि लट लोचन भृकुटि अनंग नचायो ;

ताताथेइ ताथेइ धरि नवगति पति ब्रजराज रिझायो।
सकल उदार नृपति चूड़ामनि सुख बारिद बरखायो;
परिरंभन चुंबन आलिंगन उचित जुवति जन पायो।
बरखत कुसुम मुदित नभ नायक इंद्र निसान बजायो;
हित हरिबंस रसिक राधापति जस बितान जग छायो।

स्वामी हितहरिबंशजी की जीवनयात्रा प्रायः ७६ वर्ष की अवस्था में समाप्त हुई। इनके मतानुयायियों में सैकड़ों अच्छे कवि और भक्त हो गए हैं। जैसे स्वामी वल्लभाचार्य के भक्तों में सैकड़ों कवि होने से वे महाशय हिंदी के परमोपकारक हैं, उसी भाँति श्रीहितहरिबंशजी का भी कविता पर बड़ा भारी ऋण है, क्योंकि इन्होंने स्वयं कविता की और इनके शिष्यों में सैकड़ों कवि हो गए हैं, जिनमें कितने ही सत्कवि थे। इनके बहुत-से शिष्य थे और इनके संप्रदायवाले इन्हें श्रीकृष्ण की भाँति सदैव से मानते चले आते हैं। गोस्वामीजी का जीवन धन्य है।

(६१) कृपाराम

इस कवि के विषय में हम लोगों को प्रायः कुछ भी नहीं ज्ञात है। इसके नाम से रत्नाकरजी ने इसे पश्चिमी ब्राह्मण माना है। इस कवि ने संवत् १५९८ में हिततरंगिनी-नामक एक रस-रीति का ग्रंथ बनाया है। इसमें रसों का विषय बहुत ही विस्तार-पूर्वक और मनोहर छंदों द्वारा कहा गया है। इस कवि की भाषा सुष्ठु ब्रजभाषा है। उसमें मिलित वर्णों का प्रयोग बहुत कम हुआ है और उसे मनोहर बनाने में कवि ने पूरा प्रयत्न किया है। इस ग्रंथ में ३११ छंद हैं और वे सब प्रायः दोहे हैं, केवल दो-चार बरवै छंदादि कहीं-कहीं मिलेंगे। इस कवि ने मानवीय प्रकृति के दिखाने में बड़ी कृतकार्यता पाई है। इन्होंने लिखा है कि अन्य कवि बड़े छंदों में

शृंगार-रस का वर्णन करते हैं, परंतु मैंने दोहा में इस कारण लिखा कि उसमें थोड़े ही अक्षरों में बहुत अर्थ आ जाता है। इस कथन से प्रकट होता है कि उस समय बहुत-से कवि थे, परंतु दुर्भाग्य-वश उनके ग्रंथ अब नहीं मिलते। रीति में लोग केशवदास को प्रथम आचार्य समझते हैं, परंतु रस-रीति के प्रथम आचार्य कृपाराम ही ठहरेंगे। हम इनकी गणना तोष की श्रेणी में करते हैं।

सिधि निधि सिव मुख चंद्र लखि माघ शुद्ध तृतियासु ;
हिततरंगिनी हौं रची कबि हित परम प्रकास।
बरनत कबि सिंगार रस छंद बड़े बिस्तारि
मैं बरन्यो दोहानि बिच याते सुघर बिचारि।
लोचन चपल कटाच्छ सर अनियारे बिष पूरि ;
मन मृग बेधैं मुनिन के जग जन सहित बिसूरि।
आजु सवारे हौं गई नंदलाल हित ताल ;
कुमुद कुमुदिनी के भटू निरखे औरै हाल।
पति आयो परदेस ते ऋतु बसंत की मानि ;
झमकि-झमकि निज महल में टहलैं करै सुरानि।

इस कवि के पद कहीं-कहीं बिहारीलाल से मिल जाते हैं, जिससे यह भी संदेह किया जा सकता है कि यह कवि बिहारी से पीछे हुआ, परंतु अन्य प्रमाणों के अभाव में इसके ग्रंथ का ठीक संवत् अप्रमाणिक नहीं माना जा सकता और यही कहना पड़ेगा कि या तो बिहारी ने इसकी चोरी की या पद दैवात् मिल गए।

(६२) मलिक मोहम्मद जायसी

इन्होंने अखरावट और पद्मावत-नामक दो ग्रंथ बनाए, जो हमारे पास प्रस्तुत हैं। अखरावट में इन्होंने सन् संवत् का कुछ ब्योरा नहीं दिया है, परंतु पद्मावत में यह लिखा है कि वह सन् ६२७ हिजरी में आरंभ की गई जो संवत् १२७२ में पड़ता है, परंतु उस समय के

बादशाह का नाम इन्होंने यों कहा है कि "सेरसाह दिल्ली सुल-तानू ; चारिउ ओर तपा जस भानू ।" बादशाह के नाम लिखने की यह आवश्यकता पड़ी कि फ़ारसी-नियमानुसार ग्रंथ बनाने में खुदा, रसूल और खलीफ़ाओं की स्तुति करके उस समय के बादशाह की भी तारीफ़ की जाती है । शेरशाह संवत् १५९६ में गद्दी पर बैठा था और संवत् १६०० में उसका देहांत हुआ । इस हिसाब से २२-२३ साल का गड़बड़ दीखता है । जान पड़ता है कि जायसी ने कथा बनाना संवत् १५७५ में प्रारंभ कर दिया था और फिर ग्रंथ समाप्त हो जाने पर शेरशाह के समय में उसकी वंदना बनाई । उसके प्रभाव के आधिक्य से जान पड़ता है कि यह ग्रंथ शेरशाह के अंतिम संवत् में समाप्त हुआ । खोज सन् १९०३ से पद्मावत का रचनाकाल १५९५ आता है । कदाचित् इस अंतर का कारण सन् ९२७ हिजरी-विषयक पाठ-भेद है । हमारी प्रति में रचनाकाल सन् ९२७ हिजरी है । पद्मावत में लिखा है कि "जायस नगर धरम अस्थानू ; तहाँ आय कवि कीन्ह बखानू ।" जायस अवध-देश के ज़िला-रायबरेली का एक प्रसिद्ध क़स्बा और रेलवे-स्टेशन है । इसमें मुसलमान बहुतायत से रहते हैं । पूर्वोक्त चौपाई से विदित होता है कि जायस इस कवि का जन्मस्थान न था, किंतु निवासस्थान था । महामहोपाध्याय पं० सुधाकरजी द्विवेदी ने इनके ग्रंथों पर विशेषतया श्रम किया और पद्मावत को आपने टिप्पणी-सहित प्रकाशित किया है । आपने लिखा है कि बहुत लोग जायसी का जन्म-स्थान ग़ाज़ीपूर मानते हैं । जायसी ने अपने को काना लिखा है और यूसुफ़ मलिक, सालार क़ादिम, मियाँ सलोने और शेख़ बड़े-नामक चार व्यक्तियों को अपना मित्र और सैयद असरफ़ को अपना पीर बताया है । इन्होंने यह भी लिखा है कि लोग कुरूप होने के कारण इनको हँसा करते थे । इन्होंने चारों ख़लीफ़ाओं

की वंदना की है। इससे जान पड़ता है कि ये सुन्नी थे। जायसी ने पद्मावत की रचना जायस-नगर में की। सुधाकरजी ने लिखा है कि इनके आशीर्वाद से राजा अमेठी के पुत्र उत्पन्न हुआ था। इस कारण वह इन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे; अतः जायसी के मरने पर गढ़अमेठी के फाटक के सामने इनकी क़बर बनवाई गई। इनका नाम मोहम्मद था, मलिक-पद इनके नाम के आगे सम्मान-सूचक लगा दिया गया है, और जायस में रहने के कारण, ये जायसी कहलाने लगे; इस प्रकार इनका पूरा नाम मलिक मोहम्मद जायसी पड़ गया।

बहुत लोगों का मत है कि ये महाशय वर्तमान भाषा के वस्तुतः प्रथम कवि हैं। हमारा इस मत से विरोध है। पद्मावत बनने के १५ वर्ष पूर्व संवत् १५५८ में दादुर-ग्रामनिवासी हरप्रसाद पुरुषोत्तम-नामक वैश्य ने 'धर्मास्वमेध'-नामक बड़ा ग्रंथ बनाया। गोस्वामी सूरदासजी का जन्म संवत् १५४० के लगभग हुआ था और संवत् १६०७ में उन्होंने अपना अंतिम ग्रंथ साहित्यलहरी संग्रह किया। इसके प्रथम एक लक्ष पदों का अपना सूरसागर-नामक ग्रंथ वे बना चुके थे। ६७ वर्ष की अवस्था में उन्होंने सूरसारावली-नामक सूरसागर की सूची भी समाप्त कर दी थी। इन तीन ग्रंथों के निर्माण में कम-से-कम ४०-४५ साल अवश्य लगे होंगे; अतः सूरदास की कविता का समय लगभग संवत् १५६० से संवत् १६२० तक होता है और जायसी की कविता का समय संवत् १५७५ से १६०० तक का है। तब सूरदासजी कम-से-कम जायसी के समकालीन अवश्य थे। इसके अतिरिक्त यह स्मरण रखना चाहिए कि जायसी के पहले ६१ कवि हो गए थे, जिनमें से अनेकों की भाषा वर्तमान हिंदी से जायसी की अपेक्षा अधिक मिलती है। जायसी की भाषा ग्रामीण होने के कारण भी बहुत लोगों ने इन्हें प्रथम कवि समझ रक्खा है। उनके

विचार में सूरदास के समय तक भाषा ने तरक़्क़ी की और इसी कारण सूरदास व जायसी की भाषाओं में अंतर है। सन् संवत् पर ध्यान देने से यह मत बिलकुल अशुद्ध ठहरेगा, क्योंकि यदि मान भी लेवें कि जायसी सूरदास से पहले के थे, तो भी भाषा दस-पाँच बरस में इतनी नहीं सुधर सकती जितना अंतर कि इन दोनों कवियों की भाषाओं में है। यथार्थ बात यह है कि इन दोनों कवियों ने अपने-अपने निवास-स्थानों की भाषा में कविता की है। हम कबीरदासजी को वर्तमान भाषा का वस्तुतः प्रथम कवि मानते हैं।

पद्मावत की कथा यह है कि सिंहलद्वीप के राजा गंधर्वसेन के एक परम रूपवती कन्या हुई, जो लक्षण और नाम दोनों में पद्मिनी थी। उसके यहाँ हीरामणि-नामक एक बड़ा चतुर तोता था जो किसी प्रकार से चित्तौर के महाराना रतनसेन के हाथ बिका। उसने रतनसेन से पद्मिनी के रूप की इतनी प्रशंसा की कि वह इसकी खोज में योगी बनकर सुए के साथ घर से निकल पड़ा। बड़ी कठिनता से राजा गंधर्वसेन ने पद्मिनी का विवाह रतनसेन के साथ किया। महाराना बहुत दिन तक सुख-पूर्वक चित्तौर में रहते रहे। अंत में पद्मिनी के रूप का वर्णन सुनकर अलाउद्दीन बादशाह उस पर मोहित हुआ। वह १२ वर्ष तक चित्तौर का घेरा किए रहा, पर दुर्ग-विजय न कर सका और न पद्मिनी ही को पा सका। केवल एक बेर दर्पण द्वारा शाह ने उसका स्वरूप देख पाया। अंत में छल से वह रतनसेन को बंदी करके दिल्ली ले गया। रानी पद्मिनी के संबंधी गोरा व बादल ने ससैन्य दिल्ली जाकर बड़ी चालाकी से राजा को छुड़ाकर चित्तौर पहुँचा दिया, परंतु रास्ते में बादशाह से लड़ने में गोरा बड़ी वीरता-पूर्वक लड़कर मारा गया। तत्पश्चात् पद्मिनी के कारण रानाजी और राजा देवपाल से युद्ध हुआ, जिसमें राना और राजा दोनों मारे गए और पद्मिनी पति के साथ सती

हो गई। इसके पीछे बादशाह ने फिर चित्तौर घेरा, जिसमें बादल भी बड़ी शूरता से लड़कर मारा गया। पद्मावत में २६७ पृष्ठ हैं। इस ग्रंथ की कथा मनगढ़ंत नहीं है बरन् सिवा दो-एक छोटी-छोटी बातों के और सब इतिहास से मिलती है।

इस बृहद् ग्रंथ में स्तुति, राजा-रानी, नख-शिख, षट्ऋतु, बारह-मासा, ज्योतिष, स्त्रियों की जाति, राग-रागिनी, रसोई, दुर्ग, फ़क़ीर, प्रेम, युद्ध, दुख, सुख, राजनीति, विवाह, बुढ़ापा, मृत्यु, समुद्र, राजमंदिर आदि सभी विषयों के वर्णन हैं और प्रत्येक विषय को जायसी ने उत्तम रीति से और बड़े विस्तार-पूर्वक कहा है। इतने भिन्न-भिन्न विषयों को समुचित प्रकार से सफलता-पूर्वक कहना किसी साधारण कवि का काम नहीं है। महर्षि वाल्मीकि का यह ढंग था कि वे जिस विषय को लेते उसको बहुत ही विस्तार-पूर्वक और यथातथ्य कहते थे। इस कारण उनकी कविता से तत्कालीन रहन-सहन का अच्छा पता लगता है। यही गुण कुछ-कुछ जायसी में भी वर्तमान है। सिवा स्वाभाविक कवियों के और किसी में यह गुण नहीं पाया जाता। इसके लिये यह आवश्यक है कि कवि अपने प्रत्येक विषय का पूर्ण ज्ञाता हो और उससे सहृदयता भी रखता हो। जायसी ने रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा आदि अच्छी कही हैं और अपने ग्रंथ में उचित स्थान पर सदुपदेश भी दिए हैं। इनकी कविता में उद्दंडता का भी अभाव नहीं है। इन्होंने स्तुति, नख-शिख, रसोई, युद्ध और प्रेमालाप के वर्णन विशेष सफलता से किए हैं।

अखरावट में ३६ पृष्ठों द्वारा परमेश्वर की स्तुति और संसार की असारता कही गई हैं और इसमें क से लेकर प्रायः सभी अक्षरों पर कविता की गई है और प्रायः हरएक वर्ण पर कई चौपाइयाँ दी गई हैं। यह ग्रंथ पद्मावत के पीछे बना होगा। इस बात का अनुमान इसके विषय से होता है। जान पड़ता है कि जिस समय इनकी पीर

की भाँति पूजा होने लगी थी, उस समय यह बना था। उदाहरणार्थ इनकी कविता के दोनों ग्रंथों से कुछ छंद नीचे लिखे जाते हैं—

वंदना

कीन्हेसि मानुस दिहिसि बड़ाई ; कीन्हेसि अन्न भुगुति तहँ पाई।
कीन्हेसि राजा भोजहिं राजू ; कीन्हेसि हस्थि घोर तहँ साजू।
कीन्हेसि तेहिं कहँ बहुत बिरासू ; कीन्हेसि कोइ ठाकुर कोइ दासू।
कीन्हेसि दरबि गरवु जेहि होई ; कीन्हेसि लोभु अघाइ न कोई।
कीन्हेसि जियन सदा सबु चहा ; कीन्हेसि मीचु न कोई रहा।
कीन्हेसि सुख अरु कोटि अनंदू ; कीन्हेसि दुख चिंता औ दंदू।
कीन्हेसि कोइ भिखारि कोइ धनी ; कीन्हेसि सँपति बिपति पुनि घनी।
कीन्हेसि राकस भूत परेता ; कीन्हेसि भूकस देव दएता।
कीन्हेसि बनखँड औ जड़ मूरी ; कीन्हेसि तरवर तार खजूरी।
कीन्हेसि सात समुंदर पारा ; कीन्हेसि मेरु अखंड पहारा।
कीन्हेसि कोइ निमरोसी कीन्हेसि कोइ बरियार ;
छारहि ते सब कीन्हेसि पुनि कीन्हेसि सब छार।

दिक्‌शूल-विचार

आदित सुक पच्छिम दिसि राहू ; बीफै दखिन लंक दिसि दाहू।
सोम सनीचर पुरुब न चालू ; मंगर बुध उत्तर दिसि-कालू।
परी रेनु होइ रबिहि गरासा ; मानुख देखि लेइँ फिरि बासा।
मुइँ उड़ि अंतरिच्छ मृत मंडा ; ऊपर होइ छावा महि मंडा।
डोलइ गगन इंद्र डर काँपा ; बासुकि जाय पतारहि चाँपा।
मेरु धसमसइ समुद सुखाई ; बनखँड टूटि खेह मिलि जाई।

अखरावट

था थापहु वहु ग्यान विचारू ; जेहि महँ सब समाय संसारू।
जइसे अहइ पिराथिमी सगरी ; तइसहि जानहु काया नगरी।
तन महँ पिर अउ वेदन पूरी ; तन महँ बरनउ औखद मूरी।

तन महँ बिख औ अमरितु बसई ; जानइ सोइ जु कसौटी कसई ।
का भा पढ़े गुने अउ लीखे ; करनी साथ किए अउ सीखे ।
आपुइ खोइ उहइ जो पावा ; सो बीरउ मन लाइ जनावा ।
जो वहि हेरत जाय हिराई ; सो पावइ अमिरितु फल खाई ।

नख-शिख

कहउँ लिलार दुइज की जोती ; दुइजइ जोति कहाँ जग ओती ।
सहस किरन जो सुरज दिपाए ; देखि लिलार वहउ छिपि जाए ।
का सिर बरनउँ दिपइ मयंकू ; चाँदु कलंकी वह निकलंकू ।
आव चाँदु पुनि राहु गरासा ; वह बिन राहु सदा परगासा ।
तिहि लिलार पर तिलकु बईठा ; दुइज पास मानहु धुव दीठा ।
कनक पाट जनु बइठेउ राजा ; सबइ सिंगार अस्त्र लइ साजा ।

युद्धवर्णन

गोरइ दीख साथु सब जूझा ; अपन काल नेरे भा बूझा ।
कोपि सिंह सामुह रन मेला ; लाखन सन ना मरइ अकेला ।
लियउ हाँकि हस्थिन कइ ठटा ; जइसइ सिंघ बिदारइ घटा ।
जेहि सिर देइ कोपि तरवारू ; सइँ घोड़े टूटइँ असवारू ।
टूटि कंध सिर परइँ निरारी ; माठ मँजीठ जानु रन ढारी ।
सबइ कटक मिलि गोरइ छेंका ; गूँजत सिंघ जाइ नहिं टेका ।
जेइँ दिसि उठइ सोइ जनु खावा ; पलटि सिंघ तेइ ठाँउ न जावा ।
तुरक बोलावइँ बोलइ नाहीं ; गोरइ मीचु धरी मन माहाँ ।
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा ; मुए पीछ कोऊ घिसि आवा ।
काहिकइ गरजि सिंघु अस धावा ; सुरजा सारदूल पहँ आवा ।

जायसी की भाषा ठेठ ग्रामीण पूर्वी हिंदी है, परंतु इसमें इस कवि ने "उकुति विशेषो कब्बो भाषा जाहो साहो" की यथार्थता पूर्णरूपेण सिद्ध कर दी है। इससे यह विदित होता है कि स्वाभाविक कवि भाषा का मोहताज नहीं और वह किसी भाषा में मन-

मोहनी कविता कर सकता है। जायसी की भाषा गोस्वामी तुलसीदास से बहुत कुछ मिलती है। इन्होंने दोहा-चौपाइयों में काव्य-रीति पर कथा कही है। इनका काव्य तोष कवि की श्रेणी का है और कथा-प्रासंगिक कवियों में इनकी गणना छत्र की कक्षा में है। जायसी ने पद्मावत की वंदना और समस्त अखरावट में मुसलमानी धर्मानुसार वर्णन किया है और हिंदुओं के किसी देवी-देवता का नाम नहीं लिया, परंतु इन्होंने कट्टर मुसलमानों की भाँति हिंदू-धर्म या रस्म-रवाजों पर कहीं भी अश्रद्धा नहीं प्रकट की और कथा-वर्णन में उचित स्थलों पर बड़ी श्रद्धा के साथ हिंदू-देवताओं का वर्णन किया है और मुसलमानों और राजा के युद्ध तथा अन्य स्थानों पर उचित रीति पर राना या बादशाह की यथोचित स्तुति या निंदा की है। इनकी सहानुभूति राना ही की ओर रही है क्योंकि न्याय उन्हीं की तरफ़ था। इस बात से इनकी महानुभावता का पूरा परिचय मिलता है। इन्होंने अपनी समस्त कविता में ऐसा कोई भी फ़ारसी शब्द व्यवहृत नहीं किया है जो हिंदी में प्रचलित न हो। इनकी वंदना बड़ी ही उत्कृष्ट है।

(६२) मीराबाई

ये बाईजी मेड़तिया के राठौर रत्नसिंह की पुत्री राव ईंदाजी की पौत्री और जोधपुर के बसानेवाले प्रसिद्ध राव जोधाजी की प्रपौत्री थीं। इन्होंने संवत् १५७३ में चोकड़ी-नामक ग्राम में जन्म लिया और इनका विवाह उदयपूर के महाराना कुमार भोजराज के साथ हुआ। इनकी भक्ति इतनी प्रगाढ़ थी कि ये सांसारिक संबंधों को तुच्छ जानकर श्रीकृष्णचंद्र को अपना पति मानती थीं। यद्यपि इनके मायके और ससुराल दोनों स्थानों में किसी बात की कमी न थी, तथापि ये कभी पलँग पर नहीं शयन करतीं और सदैव पृथ्वी पर मृगचर्म बिछाकर रहती थीं। इसी प्रकार हर बात में यह ऋषियों

का-सा आचार रखती थीं, और आनंद-मग्न होकर प्रायः मंदिर में श्रीकृष्णचंद्र के सामने नाचती और गाती थीं। इनके ऐसे आचरणों से इनके स्वजन इनसे रुष्ट रहते थे और उन्होंने इनके मारने के प्रयत्न कई बार किए, परंतु परमेश्वर ने इनकी सदा ही रक्षा की। भजनानंद में उन्मत्त होकर ये दूर-दूर निकल जाती थीं और इन्होंने द्वारिकाजी तथा वृंदावन के प्रत्येक मंदिर को अपने भजनों द्वारा सम्मानित किया। ये जहाँ गईं वहीं इनका बड़ा सत्कार हुआ, क्योंकि भक्तजन एवं और लोग इनको बड़े आदर की दृष्टि से देखते और साक्षात् देवी की भाँति इनकी पूजा करते थे। ये सब बातें जानकर राणाजी को अपने कुव्यवहारों के कारण बड़ा पश्चात्ताप होता था। एक बार इनके पति ने भिक्षुकों की भाँति गेरुआ वस्त्र धारण करके वृंदावन में जिस मंदिर में मीराबाई थीं वहीं जाकर मीराजी से भिक्षा माँगी। मीराजी ने उत्तर दिया कि "एक भिक्षुक-स्त्री के पास सिवा आशीर्वाद के और क्या है जो वह आपको दे?" भोजराज ने कहा—"नहीं केवल तुहीं मुझे दान दे सकती है।" मीरा ने पूछा—"किस प्रकार?" इस पर उत्तर पाया कि "मुझे क्षमा करके।" इतना कह भोजराज ने गेरुआ वस्त्र उतार डाला। अपने पति को पहचानकर बाईजी उन्हें तुरंत क्षमा करके उनकी इच्छानुसार फिर चित्तौर वापस गईं। इन्होंने नरसीजी का मायरा, गीतगोविंद की टीका, राग सोरठा के पद, और रागगोविंद-नामक चार ग्रंथ बनाए हैं। ये ग्रंथ अवश्य ही अच्छे होंगे, परंतु हमारे देखने में नहीं आए। 'भजन मीराबाई'-नामक ३१ पृष्ठों का इनके भजनों का संग्रह हमारे पास है। इसमें चौंतिस बड़े-बड़े भजन हैं। इनमें से बहुत-से कल्पित जान पड़ते हैं, परंतु जो असली हैं उनमें मीरा की प्रगाढ़ भक्ति का चित्र प्रत्यक्ष देख पड़ता है। हम इसे संग्रह इस कारण कहते हैं कि इसमें स्वतंत्र ग्रंथ की भाँति बंदना, कवि का वर्णन,

संवत्, इतिश्री आदि कुछ भी नहीं है और मुंशी देवीप्रसादजी ने भी मीरा के तीन ही ग्रंथ माने हैं। इनके पति कुमार भोजराजजी अपने पिता के सामने ही परलोक-वासी हो गए थे। सुना जाता है कि जिस समय मीराबाई की भक्ति के कारण उनके स्वजन रुष्ट थे उस समय मीराजी ने श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी स अनुमति माँगी थी। इस पर गोस्वामीजी ने यह उत्तर भेजा था—

जिनके प्रिय न राम बैदेही ;
ते छाँड़िए कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही।
तज्यौ पिता प्रह्लाद बिभीषन बंधु भरत महतारी ;
बालि गुरु तज्यौ कंत ब्रजबनितन भे सब मंगलकारी।

कहते हैं कि इसी के पीछे मीराबाई ने और भी स्वतंत्र आचरण ग्रहण किया, परंतु यह किंवदंती अशुद्ध जान पड़ती है, क्योंकि मीराबाई का देहांत द्वारिकाजी में संवत् १६०३ में हुआ था और तुलसीदासजी का संवत् १६८० में, सो गोस्वामीजी को चाहे जितना दीर्घजीवी मानें, किंतु गोस्वामीजी का और मीराजी की कविता का काल किसी समय में एक नहीं हो सकता। गोस्वामीजी का उपर्युक्त पद मीराबाई की जीवन-संबंधी घटनाओं से मिलता-जुलता है ; अतः लोगों ने इसके सहारे यह कथा गढ़ ली होगी। पहले बहुतों का मत था कि मीराबाई राणा कुंभकरण की स्त्री थीं और बाईजी का जन्म-काल सं० १४७९ का लोग मानते थे, परंतु जोधपूर के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुंशी देवीप्रसादजी ने मीराबाई के बाबत उपर्युक्त बातों का पता लगाया है, जो अब सर्वसम्मत भी हैं। नमावाला वर्णन श्रीमती एनीबेसेंट के लेख के आधार पर लिखा गया है। साधारण हिंदूसमाज पर कुछ पौराणिक स्त्रियों को छोड़कर और भारतवर्ष की किसी स्त्री का प्रभाव मीराबाई के बराबर नहीं पड़ा है। इस महिला-रत्न के अपूर्व गुणों का भारतवासियों ने मुक्त कंठ से गान

किया है । भक्तशिरोमणि नाभादास एवं ध्रुवदास तथा व्यासजी, भगवत रसिक मलूकदास, राजा नागरीदास आदि सभी महाशयों ने बड़े आदर के साथ भक्तों में मीराबाई का नाम लिखा है और उसके जीवनचरित्र का वर्णन किया है । जैसा इस स्त्रीरत्न का प्रभाव हिंदू-समाज पर पड़ा वैसी ही इसकी प्रगाढ़ भक्ति भी थी । कुछ लोगों का विचार है कि मीराबाई के वास्तविक कुमारी अवस्था में ही इनके पति का परलोक-वास हो गया था और इनके पति के स्वजनों ने इनके यहाँ साधुओं की भीड़ जुड़ती देख लोकापवाद के भय से इन्हें मारने का प्रयत्न किया और अन्य कष्ट दिए, जिस पर ये वृंदावन चली गईं और फिर द्वारिकाजी को इनके बुलाने को राणाजी की ओर से ब्राह्मण भेजे गए, जिन्होंने इनके यहाँ जाकर धरना दिया । उसी समय इनका शरीरपात हो गया । रणछोरजी के मंदिर के साथ मीराबाई की भी पूजा होती है । जो हो, मीराबाई अचल भक्ति की थाप कर गई है । वह कलियुग में देवी होकर जन्मी थी ।

इनकी कविता में अखंड भक्ति का प्रवाह बहता है । आपकी भाषा राजपूताना-मिश्रित ब्रजभाषा है और वह सर्वतोभावेन सराहनीय है । हम इनके कुछ पद नीचे उद्धृत करते हैं—

बसो मेरे नैनन में नँदलाल ;
मोहनि मूरति साँवरि सूरति नैना बने रसाल ।
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल अरुन तिलक दिए भाल ;
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजंती माल ।
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल ;
मीरा प्रभु संतन सुखदाई भक्तबछल गोपाल ।

भजि मन चरन कमल अबिनासी । (टेक)
जेतइ दीसे धरनि गगन बिच तेतइ सब उठि जासी ;

कहा भयो तीरथ व्रत कीने कह लिए करवट कासी।
इस देही का गरब न करना माटी में मिलि जासी;
यो संसार चहर की बाजी साँझ पड्याँ उठ जासी।
कहा भयो है भगवाँ पहर्याँ घर तज भए संन्यासी;
जोगी होय जुगुति नहिं जानी उलटि जनम फिरि आसी।
अरज करौं अबला कर जोरे स्याम तुमारी दासी;
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर काटौ जम की फाँसी।

मन रे परसि हरि के चरन। (टेक)

सुभग सीतल कमल कोमल त्रिविध ज्वाला हरन;
जे चरन पहलाद परसे इंद्रपदवी धरन।
जिन चरन ध्रुव अटल कीनो राखि अपने सरन;
जिन चरन ब्रहमंड भेट्यो नखसिखौ श्री भरन।
जिन चरन प्रभु परसि लीने तरी गौतम घरन;
जिन चरन कालीहि नाथ्यौ गोप लीला करन।
जिन चरन धार्‌यो गोबरधन गरब मघवा हरन;
दास मीराँ लाल गिरिधर अगम तारन तरन।

यद्यपि इनके ग्रंथ हमने नहीं देखे हैं, तथापि इनकी स्फुट कविता श्रवण करके हम यह कह सकते हैं कि इनकी रचना बहुत ही भक्ति-पूर्ण तथा ऊँचे दर्जे की है। उत्तम कविता बनाने के वास्ते सहृदयता और तल्लीनता की सबसे अधिक आवश्यकता है और यही गुण श्रेष्ठ कविता के प्रधान कारण हैं। ये गुण इनमें पूर्ण रूप से थे। इन्होंने जयदेव-रचित गीतगोविंद की टीका बनाई है। इससे अनुमान होता है कि ये संस्कृत की भी पंडिता थीं। हम मीरा को दास की श्रेणी में समझते हैं।

(६४) श्री स्वामी हरिदासजी ललिता सखी के अवतार समझे जाते थे। इन्होंने 'टट्टीवाली' वैष्णव संप्रदाय चलाई। इनके

बहुत-से शिष्य थे । ये महाशय वैष्णवों में बड़े प्रधान पूरे ऋषि समझे जाते हैं । इन्होंने बानी, साधारण सिद्धांत, रस के पद, पद, भरथरी-वैराग्य और हरिदासजू को १६०७ ग्रंथ-नामक ग्रंथ रचे हैं । इनकी बानी हमने छत्रपूर में देखी और इनके शेष ग्रंथ खोज सन् १९००, १९०२ व १९०५ में लिखे हैं । इन्होंने भरथरी-वैराग्य संवत् १६०७ में और पद १६१७ में बनाए। तृ० त्रै० खो० में इनका एक ग्रंथ केलिमाला-नामक मिला है । आपके बहुत-से पद हमने इधर-उधर संग्रहों में भी देखे हैं । आपकी भाषा में बहुत स्थानों में संस्कृत बहुत मिल जाती थी, जिससे वह कठिन हो गई है । इनके पद बड़े मनोहर और कृष्णभक्ति से भरे हैं । हम इन्हें तोष की श्रेणी में समझते हैं । यह बड़े गायनाचार्य थे और इन्होंने तानसेन को भी गाना पढ़ाया था ।

उदाहरण—

गहौ मन सब रस को रस सार ;
लोक वेद कुल करमै तजिए भजिए नित्य बिहार ।
गृह कामिनि कंचन धन त्यागौ सुमिरौ श्याम उदार ;
गहि हरिदास रीति संतन की गादी को अधिकार ।

स्वामी हरिदासजी के प्रधान शिष्य इनके मामा बिट्ठल विपुल थे । इनकी शिष्य-परंपरा में बिट्ठल बिपुल, बिहारिनिदास, दो नागरीदास (प्रसिद्ध महाराज मिलाकर), सरसदास, नवलदास, नरहरिदास, चौबे ललितकिशोरी, मौनीदास आदि बड़े-बड़े महात्मा और सुकवि थे । स्वामी हरिदासजी प्रथम वृंदावन में रहे और फिर निधुवन में । गानविद्या में ये महाराज बड़े ही निपुण थे । इनकी विरक्ति की भी बड़ी प्रशंसा सुनने में आती है और ग्रंथों में लिखी है । इन्होंने ब्रह्मचर्य का अच्छा सम्मान किया और प्रतिमा-पूजन की महिमा कम की । आपके शुद्ध चरित्रों एवं कविता-प्रेम का प्रभाव

समाज पर बहुत पड़ा। इनका गाना सुनने को अकबर एक बार वेष बदलकर तानसेन के साथ इनके यहाँ गए। तानसेन ने जान-बूझकर गाने में ग़लती कर दी। तब हरिदासजी ने उसे शुद्ध करके गाना गाया और अकबर का मनोरथ पूरा हुआ। विना इस युक्ति के इनका गाना सुनना अकबर को नसीब नहीं होता था। बाबू राधाकृष्णदास ने लिखा है कि भक्तसिंधु में इनका जन्मस्थान कोल के समीप हरदासपूर लिखा है और यह कहा गया है कि ये सनाढ्य ब्राह्मण थे, परंतु इनके वंशधर इन्हें सारस्वत ब्राह्मण मुल्तान के निकटस्थ उच्चगाँव का निवासी बताते हैं।

(६४ अ) बलवीर कवि तिरहुत-निवासी क्षत्रिय थे। आपने सं० १६०८ में डंगव पर्व ग्रंथ बनाया जो विशेषतया दोहा-चौपाइयों में है। रचना साधारण श्रेणी की है।

(६५) गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी

इनका जन्म संवत् १५८६ में राजापूर ज़िला-बाँदा में सरयूपारीण ब्राह्मण आत्माराम दुबे की धर्मपत्नी हुलसी के गर्भ से हुआ था। माता-पिता ने इनका नाम रामबोला रक्खा। तुलसीचरित्र के आधार पर कुछ लोग इनके सर्वमान्य चरित्र, जन्मसंवत्, माता, पिता, भाई आदि के नामों में संदेह करते हैं। उनके विचार में गोस्वामीजी ने ७१ वर्ष की अवस्था में रामायण बनाना प्रारंभ किया और प्रायः १२० वर्ष की अवस्था में शरीर त्यागा। उनके कथनानुसार गोस्वामीजी बाल्यावस्था में दरिद्री न थे और उनके भाइयों में एक नंददास न थे। आर्थिक दरिद्रता का अभाव स्वयं गोस्वामीजी के कथनों के प्रतिकूल है। नंददास का भाई न होना ८४ वैष्णवों की वार्ता के प्रतिकूल है। यह ग्रंथ गोस्वामीजी का समकालीन है। ७१ वर्ष की अवस्था में रामायण का प्रारंभ होना अनुमान-विरुद्ध है। यही दशा १२० वर्ष की अवस्था की है। हम तुलसीचरित्र का

प्रमाण नहीं मानते हैं क्योंकि इस ग्रंथ को अभी तक सिवा एकआध सज्जनों के और किसी ने नहीं देखा है और उन महाशय ने हमसे कई बार वादा करने पर भी उस ग्रंथ के दिखाने में कोई तत्परता न की। हम गोस्वामीजी का वह सूक्ष्म चरित्र यहाँ लिखते हैं, जो अब तक पंडितसमाज में विशेषतया माना गया है।

बाल्यावस्था में ये अत्यंत दरिद्र थे, फिर इन्होंने श्रम करके कुछ विद्या प्राप्त की। प्रायः बीस वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हुआ और इनके तारक-नामक एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ, परंतु वह थोड़े ही समय में चल बसा। आप अपनी स्त्री के बड़े प्रेमी थे, जिस पर एक समय उसने इनसे कहा कि तुम यदि इतना प्रेम ईश्वर से करते तो सिद्ध हो जाते। इसी पर ये घरबार छोड़ रामानंदी मत के महात्मा नरहरिदासजी के शिष्य हो गए जिन्होंने इनका नाम तुलसीदास रक्खा। इन्हीं के उपदेश से गोस्वामीजी ने रामायण की रचना की। तुलसीदास तीर्थ-स्थानों पर घूमा करते, परंतु विशेषतया काशीजी में असीघाट पर रहते थे। इसी स्थान पर संवत् १६८० में इनका शरीरपात हुआ। इन्होंने निम्न-लिखित ग्रंथों की रचना की है—

रामचरित्र-मानस (रामायण), कवितावली-रामायण, गीतावली-रामायण, अंकावली *, छंदावली-रामायण, बरवै रामायण, ध्रुवप्रश्ना-वली, पदावलीरामायण, कुंडलिया रामायण, छप्पैरामायण, करखा रामायण, रोलारामायण, झूलना रामायण, रामाज्ञा, रामलला-नहछू, जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, कृष्णगीतावली, हनुमानबाहुक, संकटमोचन, हनुमानचालीसा, रामसलाका, रामसतसई, वैराग्य-संदीपनी, विनयपत्रिका, तुलसीदास की बानी, कलिधर्माधर्मनिरूपण, दोहावली, ज्ञान को परिकरण, मंगलरामायण, गीताभाषा, सूर्य-

*[खोज ११०४]।

पुराण, राममुक्तावली, और ज्ञानदीपिका । चौथी त्रैवार्षिक खोज में इनके स्वयंवर तथा रामगीता और हनुमानशिक्षामुक्तावली और मिले हैं। कृष्णचरित्र तथा सगुनावली भी इनके ग्रंथ मिले हैं। ये ३ ग्रंथ द्वितीय त्रैवार्षिक खोज के हैं * । इनमें से बहुत-से ग्रंथ परमोत्तम हैं और उनमें भी रामचरित-मानस, कवितावली, गीतावली, कृष्णगीतावली, हनुमानबाहुक और विनयपत्रिका बहुत ही अमूल्य ग्रंथ-रत्न हैं। इन सबमें भी रामचरित-मानस की बराबरी कोई नहीं कर सकता; बरन् यों कहना चाहिए कि इसकी समता हिंदी-साहित्य में क्या शायद किसी भी भाषा का कोई भी काव्य-ग्रंथ नहीं कर सकता। हमारे इस कथन पर चौंकना न चाहिए। हम पूर्ण रीति पर आगा-पीछा विचारकर शांत भाव से ऐसा कहने का साहस करते हैं। अवश्य ही हमने संसार की सभी भाषाओं की कौन कहे, थोड़ी-सी भाषाओं का भी तत्त्व नहीं जान पाया है, पर जहाँ तक हम तुच्छ ज्ञानवालों ने देखा-सुना, हमने किसी भाषा में कोई कवि गोस्वामीजी से बढ़कर नहीं पाया और न कोई ग्रंथ उनके रामचरित-मानस के सामने ठहर सका। इस ग्रंथ-रत्न में बहुत-से कवियों ने अपने क्षेपक भी लगा दिए हैं, परंतु उनके कारण रामायण में सिवा दोष के कोई विशेष चमत्कार नहीं आ सका। उपर्युक्त नामावली में भी कई ग्रंथों के गोस्वामीजी-कृत होने में संदेह है। गोस्वामीजी ने कविता चार पृथक्-पृथक् प्रणालियों की रची है और इनके ग्रंथ देखने से विदित होता है कि मानो वह चार भिन्न-भिन्न उत्कृष्ट कवियों की रचनाएँ हैं।

---

* खोज [१९०३] से इनका कवित्तरामायण-नामक और एक ग्रंथ का पता चलता है। प्र० त्रै० रिपोर्ट में इनका तुलसीसतसई-नामक ग्रंथ मिला है।

उपमा और रूपक इनके बहुत ही विशद हैं और उनका हर स्थान पर आधिक्य भी है।

इसी प्रकार इस महाकवि ने भाषाएँ भी चार प्रकार की लिखी हैं। इन कथनों के उदाहरणस्वरूप इनके रामचरित-मानस, कविता-वली, कृष्णगीतावली, और विनयपत्रिका-नामक ग्रंथ कहे जा सकते हैं और इन्हीं चारों ग्रंथों की प्रणालियों पर इनके प्रायः सभी शेष ग्रंथ विभाजित किए जा सकते हैं।

गोस्वामीजी का सर्वोत्कृष्ट गुण इनकी अटल भक्ति है, जो स्वामी-सेवक-भाव की है। इन्होंने अपने नायक तथा उपनायकों के शील-गुण खूब ही निबाहे हैं और ब्राह्मणों की सदैव प्रशंसा की है परंतु साधारण देवताओं का पद उच्च नहीं रक्खा है। गोस्वामीजी ने निर्गुण-सगुण ब्रह्म, नाम, भक्ति, ज्ञान, सत्संग, माया आदि का बड़ा ही गंभीर निरूपण किया है। ये महाशय भाग्य पर बैठना निंद्य समझते और उद्योग की प्रशंसा करते थे। इनके मत में प्रत्येक कविता करनेवाले का रामगुणगान करना आवश्यक कर्तव्य है। इनके गुण अगाध हैं और उनका दिग्दर्शन तक यहाँ नहीं कराया जा सकता। जो महाशय इस विषय को कुछ विस्तार से देखना चाहें वे हमारा हिंदी-नवरत्न अवलोकन करने का कष्ट उठावें।

उदाहरण—

उदित उदय गिरि मंच पर रघुबर बाल पतंग ;
बिकसे संत सरोज बन हरखे लोचन भृंग ।

नृपन केरि आसा निसि नासी ; बचन नखत अवली न प्रकासी ।
मानी महिप कुमुद सकुचाने ; कपटी भूप उलूक लुकाने ।
भए बिसोक कोक मुनि देवा ; बरसहिं सुमन जनावहिं सेवा ।

रा० च० मा०

अवधेस के द्वार सकार गई सुत गोद मैं भूपति लै निकसे ;

अवलोकत सोच बिमोचन को ठगि-सी रही जे न ठगे धिक से।
तुलसी मनरंजन अंजित अंजन नैन सु खंजन जातिक से;
सजनी ससि में सम सील उभै नव नील सरोरुह-से बिकसे।

कवितावली

पखा मोर के जो जरी सीस सोहैं;
लसैं फूल की मुंड माला बिमोहैं।
भलो कुंकुमा भस्म के लेप कीने;
करैं संख को नाद श्रृंगीहि लीने।

ज्ञानदीपका (सं० १६३१)

बंदौं गुरु-पद-पदुम-परागा ; सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।
अमिय मूरि मै चूरन चारू ; समन सकल भवरुज परिवारू।
सुकृत संभु तन बिमल बिभूती ; मंजुल मंगल मोद प्रसूती।
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी ; किए तिलक गुन गन बस करनी।
श्रीगुरु पद रज मंजुल अंजन ; नैन अमिय दृग दोष बिभंजन।
तेहि करि विमल बिराग बिलोचन ; बरनौं रामचरित भवमोचन।

रा० च० मा०

कहहु तात केहि भाँति कोउ करै बड़ाई तासु ;
राम लखन तुम सत्रुहन सरिस सुवन सुचि जासु।

सब प्रकार भूपति बड़भागी ; बादि बिषाद करिय तेहि लागी।
यह सुनि समुझि सोच परिहरहू ; सिर धरि राज रजायसु करहू।
राय राज पद तुम कहँ दीन्हा ; पिता बचन फुर चाहिय कीन्हा।
तजे राम जेहि बचनहि लागी ; तनु परिहरेउ राम बिरहागी।
नृपहिं बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना ; करहु तात पितु बचन प्रमाना।
करहु सीस धरि भूप रजाई ; यह तुम कहँ सब भाँति भलाई।
परसुराम पितु अज्ञा राखी ; मारी मातु लोग सब साखी।
तनै जजातिहि जौबन दयऊ ; पितु अज्ञा अघ अजस न भयऊ।

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन ;
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमर पति ऐन ।
कौसल्या धरि धीरज कहई ; पूत पथ्य गुरु आयसु अहई ।
सो आदरिय करिय हित मानी ; तजिय बिषादु काल गति जानी ।
बन रघुपति सुरपुर नरनाहू ; तुम्ह यहि भाँति तात कदराहू ।
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा ; तुम्हही सुत सब कहँ अवलंबा ।
लखि बिधि बाम काल कठिनाई ; धीरज धरहु मातु बलि जाई ।
सिर धरि गुरु आयसु अनुसरहू ; प्रजा पालि पुरजन दुख हरहू ।
भरत कमल कर जोरि धीर धुरंधर धीर धरि ;
बचन अमिय जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि ।
मोहि उपदेश दीन्ह गुरु नीका ; प्रजा सचिव सम्मत सबही का ।
मातु उचित पुनि आयसु दीन्हा ; अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा ।
अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू ; मोहि अनुहरत सिखावन देहू ।
हित हमार सियपति सेवकाई ; सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई ।
मैं अनुमानि दीख मन माहीं ; आन उपाय मोर हित नाहीं ।
मोहि नृप करि भल आपन चहहू ; सो सनेह जड़ता बस अहहू ।
कहउँ साँच सब सुनि पतियाहू ; चाहिय धरम सील नरनाहू ।
मोहि राज हठि देइहहु जबहीं ; रसा रसातल जाइहि तबहीं ।
आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहिं सिर नाय ;
देखे बिन रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाय ।
तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई ; गगन मगन मकु मेघहि मिलई ।
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी ; सहज छमा बरु छाँड़इ छोनी ।
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई ; होय न नृप मद भरतहि भाई ।
सगुन छीर अवगुन जल ताता ; मिलइ रचइ परपंच बिधाता ।
भरत हंस रवि बंस तड़ागा ; जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ।
जौं न होत जग जनम भरत को ; सकल धरम-धुर धरनि धरत को ।

रामचरितमानस

(६६) महाकवि केशवदासजी

ये महाशय सनाढ्य ब्राह्मण कृष्णदत्त के पौत्र और काशीनाथ के पुत्र थे। इनका जन्म ओड़छे में संवत् १६१२ के लगभग हुआ था। प्रसिद्ध कवि बलभद्र इनके भाई थे। ओड़छा-नरेश महाराजा रामसिंह के भाई इंद्रजीतसिंह के यहाँ इनका विशेष आदर था। महाराज बीरबल ने केवल एक छंद पर छः लाख रुपए इनको दिए थे। आपने महाराज बीरबल के द्वारा अकबर के यहाँ से इंद्रजीत पर एक करोड़ रुपए का जुर्माना माफ़ करा दिया था। इसी समय से केशवदास का ओड़छा-दरबार में विशेष मान हुआ, जिसका वर्णन इन्होंने स्वयं इस प्रकार लिखा है—"भूतल को इंद्र इंद्रजीत जीवै जुग जुग जाके राज केसौदास राजु सो करत है"। इनके शरीरांत का समय सं० १६७४ ठहरता है।

केशवदास ने निम्न लिखित ग्रंथ बनाए—१ रसिकप्रिया, २ कविप्रिया, ३ रामचंद्रिका, ४ विज्ञानगीता, ५ वीरसिंह देवचरित्र, ६ जहाँगीरचंद्रिका, ७ नख-शिख और ८ रतबावनी। इनमें से अंतिम दो ग्रंथ हमने नहीं देखे हैं। रसिकप्रिया में शृंगार-प्रधान रसों का वर्णन है और आकार में यह ग्रंथ रसराज के बराबर होगा। खोज १९०३ से रसिकप्रिया ग्रंथ १६४८ में रचा जाना पाया जाता है। इसकी मनोहरता दर्शनीय है। विज्ञानगीता प्रबोधचंद्रोदय की भाँति नाटक के ढर्रे का एक साधारण ग्रंथ है। कविप्रिया विशेषतया अलंकार-प्रधान ग्रंथ है। इसमें दूषण, कवियों के गुण-दोष, कविता की जाँच, अलंकार, बारहमासा, नख-शिख और चित्रकाव्य वर्णित हैं। यह बड़ा ही उत्तम ग्रंथ है और स्वयं केशवदास ने इसकी प्रशंसा भी की है। इसी ग्रंथ से इनको आचार्य की पदवी मिली। रामचंद्रिका में रामचरित्र का वर्णन अश्वमेध-पर्यंत है। यह भी एक बड़ा ही रोचक और प्रशंसनीय ग्रंथ है। खोज १९०२ से कविप्रिया तथा

रामचंद्रिका का संवत् १६५८ में रचा जाना पाया जाता है। वीरसिंह देवचरित्र भी छप चुका है। इसमें ११४ पृष्ठ हैं। यह सं० १६६४ का बना है। इसकी रचना इनके अन्य ग्रंथों से शिथिल है। जहाँगीर चंद्रिका की रचना संवत् १६६६ में हुई।

केशवदास की भाषा संस्कृत और बुँदेलखंडी मिली हुई व्रजभाषा है, परंतु वह परम प्रशंसनीय तथा चित्ताकर्षिणी है। इन्होंने अपनी कथा-प्रासंगिक कविता में छंद बहुत शीघ्रता से बदले और तुकांत की भी बड़ी सख़्ती नहीं रक्खी। आपको अनुप्रास का इष्ट न था। उचित रीति से अनुप्रास तथा यमकादि का प्रयोग ये करते थे। इनकी रचना में अलंकार बहुतायत से हैं, परंतु रस उसमें अधिकता से नहीं हैं। उत्तम छंदों का इनके काव्य में बाहुल्य है। अयोध्या, सूर्योदय, धनुषयज्ञ, स्वयंवर इत्यादि बहुत-से विषयों के परमोत्तम वर्णन इन्होंने किए हैं। ये महाशय सर्वव्यापिनी दृष्टि के कवि थे। परशुराम का वर्णन इन्होंने और कवियों से अच्छा किया और विभीषण को उसके राम की तरफ़ मिल जाने के कारण अश्वमेध में लव से खूब फटकार दिलाई है। इनकी कविता संस्कृत-मिश्रित होने के कारण कठिन होती थी। उसके बाबत यह लोक-कहावत प्रचलित है—'कवि का दीन न चहै बिदाई; पूँछै केसव की कविताई।' कथा-प्रासंगिक कविता की प्रणाली प्रायः इन्हीं की चलाई हुई है। पाठकों को इनका विशेष वर्णन नवरत्न में देखना चाहिए।

उदाहरण—

माल गुही गुन लाल लटैं लटकी लर मोतिन की सुखदैनी;
ताहि बिलोकत आरसी लै कर आरस सों कछु सारसनैनी।
केसव स्याम दुरे दरसी परसी मति सों उपमा अति पैनी;
सूरज-मंडल में ससि-मंडल मध्य धसी जनु धार त्रिबेनी।

मूलन ही को जहाँ अधोगति केसव गाई;
होम हुतासन धूम नगर एकै मलिनाई।
दुरगति दुरगन ही जु कुटिल गति सरितन ही मैं;
श्रीफल को अभिलाख प्रकट कवि-कुल के जी मैं।
अति चंचल जहँ चलदलै बिधवा बनी न नारि;
मन मोह्यो ऋषिराज को अद्भुत नगर निहारि।
सोहत मंचन की अवली गज-दंतमई छबि उज्जल छाई;
ईस मनौं बसुधा मैं सुधारि सुधाधर-मंडल मंडि जुन्हाई।
ता महँ केसवदास बिराजत राजकुमार सबै सुखदाई;
देवन सों मिलि देवसभा मनु सीय-स्वयंबर देखन आई।
कैटभ सो नरकासुर सो पल मैं मधु सो मुर सो जेहि मार्‌यो;
लोक चतुर्दस रच्छक केसव पूरन बेद-पुरान बिचार्‌यो।
श्रीकमला कुच कुंकुम मंडित पंडित बेद पुरान उचार्‌यो;
सो कन माँगन को बलि पै करतारहु ने करतार पसार्‌यो।
राघव की चतुरंग चमू चय को गनै केसव राज-समाजनि;
सूर तुरंगन के उरझैं पद तुंग पताकनि की पट साजनि।
टूटि परैं तिनते मुकुता धरनी-उपमा बरनी कबिराजनि;
बिंदु किधौं नव फेननि सों किधौं राजसिरी स्रवै मंगलकाजनि।
हरि कर मंडन सकल दुख-खंडन,
मुकुर महिमंडल को कहत अखंड मति;
परम प्रकास तिमि पीयुष निवास,
परिपूरन उजास केसौदास भू अकास गति।
मदन कदन कैसे श्रीजू के सदन जेहि,
सोदर सुधोदर दिनेसजू के मीत अति;
सीताजू के मुख सुषमा की उपमा को कहि
कोमल न कमल अमल न रजनि-पति।

देखी बन बारी चंचल भारी तदपि तपोधन मानी ;
अति तपमय लेखी जग थित पेखी तदपि दिगंबर जानी ।
जग जदपि दिगंबर पुष्पवती नर निरखि-निरखि मन मोहै ;
पुनि पुष्पवती तन अति-अति पावन गर्भसहित हित सोहै ।
पुनि गर्भ सँजोगी रति-रस-भोगी जगजन लीन कहावै ;
गुनि जग जन लीना नगर प्रबीना अति पति के चित भावै ।
अति पतिहि रमावै प्रेम बढ़ावै सौतिन प्रेम दृढ़ावै ;
अब यों दिन-रातिन गुनि बहु भाँतिन कबि-कुल-कीरति गावै ।
उठि कै धर धूरि अकास चली ; बहु चंचल बाजि खुरीन दली ।
भुव हालति जानि अकास हिए ; जनु थंभित ठौरहि ठौर किए ।
रहि पूरि बिमाननि ब्योमथली ; तिनको जनु टारन धूरि चली ।
परिपूरि अकासहि धूरि रही ; सु गयो मिटि सूर-प्रकास सही ।
अपने कुल को कलह क्यों देखहिं रबि भगवंत ;
यहै जानि अंतर कियो मानौ मही अनंत ।
बहु तामहँ दीह पताक लसैं ; मनु धूम मैं अग्नि कि ज्वाल बसैं ।
रसना किधौं काल कराल घनी ; किधौं मीचु नचै चहुँ ओर बनी ।

तेरहवाँ अध्याय

प्रौढ़ माध्यमिक काल में हिंदी

(१५६१ से १६८० तक)

यह अपूर्व समय हिंदी-कविता के लिये परम सौभाग्य का था । हिंदी की उत्पत्ति हुए प्रायः आठ सौ वर्ष बीत गए थे, परंतु सिवा दो-चार के कोई भी प्रथम श्रेणी का कवि अब तक नहीं हुआ था । संख्या में भी पिछले आठ सौ वर्ष में इस सवा सौ वर्ष की अपेक्षा बहुत थोड़े कवि उत्पन्न हुए थे । चंद बरदाई, कबीर और

विद्यापति को छोड़कर यह भारी सात-आठ सौ साल का समय कवितावाहुल्य और साहित्य-सौंदर्य दोनों के वास्ते बाल-काल समझना चाहिए। साहित्य की उत्तमता सर्वतोभावेन उमंग और उत्साह आदि पर निर्भर है। यही गुण साहित्य-देवी की चित्ता-कर्षिणी मूर्ति को और भी मनोहर बना सकते हैं और उसकी प्रतिभा को देदीप्यमान करते हैं। परंतु ये गुण साधारण व्यक्तियों में नहीं पाए जाते और इसी से उनकी कविता में वह सौंदर्य नहीं आ सकता जो बरबस चित्त को अपनी तरफ़ खींच ले और उसमें उस संजीवनी शक्ति का संचार नहीं होता जो दिल की मुरझाई हुई कली को विकसित कर दे। ये गुण प्रधानतया तल्लीनता से प्राप्त होते हैं, चाहे वह ईश्वर-संबंधी हो या किसी और विषय पर।

चंद बरदाई पृथ्वीराज द्वारा सम्मानित होने एवं अन्य कारणों से उनके गुणों पर इतना मुग्ध थे कि वह चौहानराज की प्रशंसा मुक्त कंठ से करने को बरबस उत्साहित होते थे और उनकी बहुत-सी बातों से सहमत भी थे। उसके सुविशाल अनुभव और भाषा के प्रगाढ़ अधिकार ने उसकी कवित्व-शक्ति को और भी स्फूर्ति दे दी थी। इन्हीं कारणों से वह उत्तम कविता रच सके, परंतु तब तक और कोई कवि तादृश प्रतिभा प्राप्त करने में समर्थ नहीं हुआ। महात्मा गोरखनाथ की शिष्यमंडली का रुझान कविता की ओर नहीं हुआ। महर्षि रामानंद दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे, सो हिंदी-भाषा पर उनके विशेष अधिकार होने की आशा भी नहीं की जा सकती थी। उनके दूरस्थ होने के कारण उत्तरी भारत पर कुछ समय तक उनकी भक्ति का विशे-षतया प्रभाव नहीं पड़ा। महात्मा कबीरदास की रचनाएँ अनूठेपन एवं आधिक्य में अवश्य प्रशंसनीय हैं, परंतु फिर भी उनकी शिष्य-मंडली में किन्हीं कारणों से साहित्य का सिक्का न जम सका। इन महा-त्माओं के शिष्यवर्गों की तल्लीनता का बल कविता की ओर नहीं लगा।

भाषा के सौभाग्य से श्रीमहात्मा वल्लभाचार्य, श्रीचैतन्य महाप्रभु, हितहरिवंशजी, हरिदासजी आदि ने उत्तरी भारत में भक्तितरंगिनी की प्रकांड धारा को इस वेग से प्रवाहित किया कि सारा देश उसके अकथनीय आनंद में एकदम निमग्न हो गया। इनके अनुयायियों में भक्तिभाव तल्लीनता की मात्रा का अच्छा विकास हुआ। तल्लीनता एक भारी बल है, जिसके सम्मुख कोई भी वस्तु असंभव नहीं है। इसी के वश प्रेमीजन अपनी प्रेमिका पर पतंग की भाँति निछावर हो जाते हैं, इसी के वश योगीजन कंचन को पत्थर के ढेले की भाँति समझकर ईश्वरानंद में निमग्न रहते हैं और कठिन से कठिन तपस्या में भी परमानंद का अनुभव करते हैं और इसी के वश शूरवीर रणक्षेत्र में तिल-तिल अंग कट जाने पर भी मुँह न मोड़कर सहर्ष स्वर्गयात्रा करते हैं। इन महानुभावों ने इस अमोघ बल को साहित्य की ओर लगा दिया। फिर क्या था? इसने कृष्ण-भक्ति के साथ पूर्ण विकास पाकर भाषा-भंडार को मनमोहनी एवं प्रचुर कविता से भर दिया।

इन महानुभावों की भक्तिरसलीला-संबंधी होने के कारण इन संप्रदायों के कवियों में श्रृंगार विषयक कविता ही विशेषतया प्रचलित हुई, जिसके कारण भाषा-काव्य के कविगणों का रुझान श्रृंगार ही की ओर हो गया और इस रस ने हमारी कविता पर ऐसा अधिकार जमा लिया कि और रस मुँह ताकते ही रह गए। ये संप्रदाय-प्रचारक तथा पहले के महात्मा लोग विशेष त्यागी, निर्विकार तथा विरक्त थे, अतः इनकी रचनाओं में भक्ति का प्राधान्य देख पड़ता है, परंतु आगे चलकर विकारी कवियों द्वारा भक्ति का तिरोभाव हो गया और भाषा-साहित्य में भक्तिहीन श्रृंगार-रस ने बल पाया। इससे इतनी हानि अवश्य हुई, परंतु कुल मिलाकर भाषा-साहित्य को लाभ ही हुआ। यदि वैष्णव महात्मागण

तथा उन महात्माओं के अनुयायी भाषा-साहित्य पर इतना श्रम न किए होते, तो आज दिन इतनी परिपूर्णता कदापि देखने को नसीब न होती। फिर गोस्वामी तुलसीदासजी को छोड़कर ये सब महात्मा अपने को कवि समझते ही न थे और न कभी कवि कहते थे। ये लोग तो भजनानंद और कृष्ण-गुणगान के लिये ही छंदों की रचना करते थे। छंद-रचना से उत्तम कवि कहलाने का इनका सचमुच अभिप्राय न था। पर इस अभिप्राय के न होने से भी इन महानुभावों से साहित्योन्नति बहुत अच्छी हुई और इनकी भक्ति के कारण यह समय कविता के लिये बड़ा उपयोगी हो गया।

अतः यह अपूर्व समय हिंदी-कविता का कल्प-वृक्ष था। हिंदी ने इसी समय में ऐसे-ऐसे महाकवि उत्पन्न किए कि जिनके जोड़ के संसार की प्रायः किसी भी भाषा में कठिनता से मिलेंगे। महात्मा श्रीसूरदासजी, गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजी, हरिदासजी, तुलसीदासजी एवं केशवदासजी ने इसी समय को सुशोभित किया है, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं। इनके अतिरिक्त भी कवि-शिरोमणि बल-भद्र, मुबारक, रसखान, गंग, नरोत्तम, भक्तशिरोमणि निपटनिरंजन, अग्रदास, नाभादास, दादूदयाल तथा जैन-कवि-शिरोमणि बनारसी-दास आदि इसी अमूल्य समय में हुए हैं। इसी समय में अकबरशाह आदि बड़े-बड़े बादशाहों तक ने हिंदी का ऐसा आदर किया कि वे स्वयं कविता करने लगे। फ़ैज़ी, अबुल्फ़ज़्ल, ख़ान-ख़ाना रहीम, महाराजा बीरबल (ब्रह्म), महाराजा टोडरमल आदि ने इसी समय कविता करके हिंदी का समादर किया। वास्तव में व्रजभाषा-संबंधी प्रौढ़ हिंदी-कविता का इसी समय जन्म हुआ। इसी समय सूरदास ने पदों में, तुलसीदास ने दोहा-चौपाइयों में, और केशवदास ने विविध छंदों में कथा लिखने की प्रणालियाँ चलाईं, जो अद्यावधि स्थिर हैं। रीतिग्रंथ और विशेषतया अलंकार

तथा नायिका-भेद पर ग्रंथ रचने की भी प्रथा इसी समय से केशव-दास द्वारा चली। इस अनमोल काल के पूर्वार्द्ध में श्रीकृष्ण-संबंधी कथाओं का विशेषतया पदों द्वारा पूर्ण साम्राज्य रहा, पर उत्तरार्द्ध में विविध विषयों का वर्णन होने लगा। पूर्वार्द्ध में जायसी ने कथा-प्रसंग की एवं कृपाराम ने रीति-ग्रंथोंवाली प्रणाली की नींव अवश्य डाली, पर उस समय कवियों में इनका कुछ विशेष समादर न हुआ। पंडितों का विचार है कि जायसीवाले समय के लगभग कुछ साधारण कवियों ने भी उसी प्रकार की कविता की थी, पर उत्तम न होने के कारण वह संसार-चक्र में दबकर लुप्त अथवा लुप्तप्राय हो गई।

संवत् १५६१ से १६३० तक अष्टछाप की कविता के ढंग पर अनेकानेक भक्तवरों ने पदों में कृष्ण-भक्ति की मनमोहनी कविता की, जो भक्तकल्पद्रुम, रागसागरोद्भव, सूरसागर आदि ग्रंथों में संगृहीत है। दामो, दामोदर, वासुदेवलाल, गोपालदास, केशवदास (दूसरे), नारायण, खेम, निर्मल, पद्मनाभ, माधवदास, कल्यानदास, मदन-मोहन, मुरारिदास, श्याम, धोंधे, श्रीभट्ट, अग्रदास, जगन्नाथ, तान-सेन (प्रसिद्ध गानेवाले), जगजीवन, द्वारिकेस, विष्णुदास त्रैलोक, चतुरबिहारी, नरसैयाँ, रसिक, बिहारिनदास, श्रीस्वामी हरिदास (बड़े भक्त तथा धर्मप्रचारक), व्रजपति, व्यास, श्रीस्वामी बिट्ठल-नाथजी, कान्हरदास, भगवान हित, बिट्ठल विपुल, गदाधर, आस-करन, रामदास, वृंदावनदास, माधवदास, गोपालदास, दामोदरदास, रामराय, नरवाहन, केवलराम, रघुनाथ, बंसीधर, चंद्रसखी, रसरंग, बलराम, माणिकचंद, सगुनदास, करुनानिधि, अजानानंद, विद्या-दास, परशुराम, नवलसखी, संतदास, ललितकिशोरी इत्यादि भिन्न-भिन्न समयों में इसी प्रकार के कवि हुए हैं। इन सबोंने अष्टछाप के कवियों से मिलती-जुलती कविता की है और कृष्णानंदसागर की

तरंगें लहराई हैं। स्वामी हरिदास ने संस्कृत-मिश्रित भी कविता की और भगवान हित ने नख-शिख अच्छा कहा। परमप्रसिद्ध गायक तानसेन की कविता से जान पड़ता है कि ये कृष्ण भक्त थे। इनका मुसलमान होना इनकी रचना से नहीं प्रकट होता। प्रसिद्ध गायनाचार्य बैजू बावरे और सदारंग भी तानसेन के समकालिक थे। इनका भी नाद-शास्त्र पर प्रगाढ़ अधिकार था। कहते हैं कि बैजू बावरे तानसेन के गायन-शास्त्र के गुरु थे। ग्वालियरवाले शेख़ मुहम्मद ग़ौस भी तानसेन के गाने में गुरु थे। महाराज नरसैयाँ ने पंजाबी-मिश्रित भाषा में भी रचना की है। कविता का समादर वैष्णव-संप्रदायों में इतना था कि स्वयं वल्लभाचार्यजी, हितजी, हरिदासजी तथा बिट्ठलदासजी स्वामी ने भी कविता की। उपर्युक्त पद-निर्मायकों में सब इसी समय के पूर्वार्द्ध में न थे, पर अधिकांश थे। इसी प्रकार अन्य विषयों के कहनेवाले भी पूर्वार्द्ध में हुए हैं, पर विशेषतया उनकी स्थिति उत्तरार्द्ध ही में है। वैष्णव-संप्रदायवालों के ही प्रेम के कारण भारत में कृष्णलीला और रास की चाल पड़ी है और इसी समय से रामलीला आदि होने लगीं।

अकबर शाह के यहाँ हिंदी-काव्य का विशेष समादर हुआ, और उनके यहाँ उनके अतिरिक्त टोडरमल, बीरबल, मानसिंह, रहीम, गंग, नरहरि, फ़ैज़ी, अबुलफ़ज़्ल आदि अच्छे-अच्छे कवि थे। इनके अतिरिक्त अन्य कविगण भी वहाँ जाते और समादर पाते थे। होलराय ने होलपुर बसाने को भूमि अकबर से पाई थी। केशवदास ने कविता ही के द्वारा ओड़छा-नरेश पर एक कोटि का जुर्माना शाही दरबार से माफ़ करा लिया था। प्रवीणराय वेश्या को बुलाने की इच्छा अकबर को उसके सौंदर्य एवं साहित्य दोनों ही कारणों से हुई थी। एक बार तानसेन के साथ वेष बदलकर अकबर स्वामी हरिदास के दर्शन करने गए थे। कुंभनदास को उन्होंने सीकरी बुलाया

था। तुलसीदास से भी मिलने की उन्हें इच्छा हुई थी। अकबरी दर-बार में हिंदी के विशेष समादर से उस समय अन्य हिंदू और मुसलमान बड़े मनुष्यों के यहाँ भी हिंदी का अच्छा मान होने लगा। यह मान भी तुलसीदासजी के समयवाले कवियों में हिंदी की वृद्धि का एक कारण हुआ। अकबर के साथ औरंगज़ेब के काल तक उत्तरी भारत में पूर्ण शांति रही। इस कारण भी कविता की इस समय बहुत अच्छी उन्नति हुई। इस समय हिंदुओं और मुसलमानों का विशेष संघट्ट हो रहा था, सो जिस प्रकार पुरानी संस्कृत और पुरानी प्राकृत के मेल से पाली की उत्पत्ति पूर्व काल में हुई थी, उसी प्रकार फ़ारसी और हिंदी के सम्मिश्रण से एक नई भाषा दृढ़ हो रही थी, जिसने समय पाकर उर्दू का रूप ग्रहण किया और जो अब फ़ारसी अक्षरों में लिखी जाने तथा फ़ारसी-शब्दों की प्रचुरता के कारण पुस्तकों में हिंदी से एक पृथक् भाषा-सी देख पड़ती है, यद्यपि साधारण जनसमूह के बोलचाल में कोई ऐसा भेद नहीं है। यह भाषा बहुत दिनों से बन रही थी और अकबर के काल में इसकी भारी उन्नति हुई तथा इसमें कविता भी विशेष होने लगी। स्वयं अकबर ने इसमें कुछ रचना की और ख़ानख़ाना रहीम ने भी इसका समादर किया। इसी संघट्ट के कारण हिंदी में फ़ारसी के शब्द तथा भाव भी इस काल बहुतायत से आ गए, जिनसे हिंदी को एक नया चमत्कार प्राप्त हुआ। हिंदी का ऐसा ही प्रभाव विदेशी भाषा और कविता पर भी पड़ा।

ख़ानख़ाना (रहीम) ने फ़ारसी-मिश्रित भाषा, उर्दू-मिश्रित भाषा, व्रजभाषा, ग्रामीण भाषा आदि सभी प्रकार की हिंदी में इस समय कविता की तथा बीरबर (ब्रह्म) ने व्रजभाषा में प्रशंसनीय छंद रचे। अकबर ने उपर्युक्त भाषा के अतिरिक्त व्रजभाषा में भी रचना की। कविता की दृष्टि से इनकी गणना साधारण श्रेणी में हो सकती है।

उदाहरण—

साहि अकब्बर बाल की बाँह अचिंत गही चलि भीतर भौने ;
सुंदरि द्वारहि दीठि लगाय कै भागिबे को श्रम पावत गौने।
चौंकत-सी चहुँओर बिलोकत संक सकोच रही मुख मौने ;
यों छवि नैन छबीली के छाजत मानो बिछोह परे मृग-छौने।

यह वर्णन मीनाबाज़ार से भुलाकर लाई हुई किसी स्त्री का-सा ज्ञान पड़ता है।

अन्य उन्नतियों के साथ अकबर के काल में हिंदी को यह हानि भी पहुँची कि इसका प्रचार सरकारी दफ़्तरों से उठ गया। अब तक दफ़्तरों में भाषा-प्रचार बराबर रहा था, पर महाराजा टोडरमल को यह समझ पड़ा कि दफ़्तरों में हिंदी-प्रचार के कारण हिंदू लोग फ़ारसी कम पढ़ते हैं और इस प्रकार उन्हें सरकारी ओहदे बहुतायत से नहीं मिलते। इस विचार से उन्होंने हिंदी उठाकर फ़ारसी चलाई। जिससे हिंदुओं को भी वह विद्या पढ़नी पड़ी। इस प्रकार साधारण जनसमुदाय में फ़ारसी के नूतन भाव फैले, जिनका प्रभाव हिंदी-कवितापर भी शृंगार एवं विविध विषय-वर्द्धन में पड़ा। सो टोडरमल की इस आज्ञा ने हिंदी-प्रचार को हानि पहुँचाई, परंतु साहित्य-विषय-प्रस्फुरण को इससे भी कुछ लाभ ही हुआ।

अकबर का समय मोटे प्रकार से तुलसी-काल से मिलता है। तुलसी-काल हमने १६३१ से १६८० तक माना है। यद्यपि सूरदास १६२० में स्वर्गवासी हो चुके थे, तथापि अष्टछापवाले कवियों ने उनके पीछे तक उसी प्रकार की कविता की। अतः मोटे प्रकार से बहुत करके १६३० तक सौर कविता का ढंग स्थिर रहा। गोस्वामी तुलसीदास ने १६३१ में रामचरित-मानस (रामायण) बनाना प्रारंभ किया। अकबर संवत् १६१३ में गद्दी पर बैठे, पर थोड़े काल तक उनका राज्य भली भाँति जमने नहीं

पाया था। जब उनका शासन ख़ूब स्थिर हो गया और शांति पूर्णरूपेण उत्तरी भारत में स्थापित हो गई, तब अकबर के यहाँ हिंदी का सम्मान हुआ और हिंदी के लिये अकबर-काल के लाभ तभी से प्रारंभ हुए। यह समय भी मोटे प्रकार से १६३१ से प्रारंभ होता है। तुलसी-काल में भाषा-कविता ने सौर-काल से भी अधिक विकास पाया। इस समय मुसलमानों के संघट्ट के कारण इसे नए शब्दों और भावों से एक नवीन ज्योति मिल रही थी और शांति-स्थापन से अच्छा बल प्राप्त हो रहा था, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। इन कारणों के अतिरिक्त वैष्णव संप्रदायोंवाली तल्लीनता ने इस काल एक और भी नया बल पाया। श्रीस्वामी रामानंद का नया वैष्णव मत दक्षिण से दिनोदिन उत्तर की ओर बढ़ता आता था। उसने इस समय उत्तर में भी अच्छा बल प्राप्त कर लिया था और जैसे वल्लभाचार्य महाप्रभु द्वारा कृष्ण-भक्ति का प्रभाव हिंदी पर पड़ा था, वैसे ही इस मत द्वारा राम-भक्ति का बल हिंदी-कविता का सहायक हुआ। गोस्वामी तुलसीदास, केशवदास, एवं अन्य कविवरों ने इस समय श्रीरामचंद्र पर अच्छी कविताएँ कीं। उधर अकबरी दरबार का प्रभाव विविध विषयों द्वारा हिंदी को आभूषित कर रहा था। इस कारण हमारी भाषा ने तुलसी-काल में अनेकानेक विषयों के वर्णनों में भी संतोषदायक उन्नति दिखाई। भक्ति के अतिरिक्त अन्य विषयों में वीरता, शृंगार आदि प्रधान हैं। अकबरी काल में जातीयता की उन्नति भारत में नहीं हुई, सो शौर्य की ओर इस समय हमारे कवियों का ध्यान नहीं गया, जैसा कि आगे चलकर शिवाजी एवं छत्रसाल के समय हुआ। उधर फ़ारसी के नवागत भावों ने शृंगार की विशेष पुष्टि की और वल्लभीय मत से भक्त कवियों में इसका भक्ति-भाव से प्राधान्य था ही, सो अभक्त कवियों ने भी श्रीकृष्णचंद्र को शृंगारी नायक बनाकर भक्ति

की आड़ में नायिका-भेद द्वारा शृंगार-कविता में ही पूर्ण बल और ध्यान लगा दिया। इस नई भक्तिहीन शृंगारी कविता के पहले आचार्य केशवदास हुए, जिन्होंने रसिकप्रिया में सभी रसों के उदाहरण शृंगार में ही दिए। अतः राम-भक्ति के साथ शृंगार-कविता ने भी अच्छी उन्नति की। इस काल में कवि बहुत अधिक और बहुत उत्कृष्ट हुए हैं। उन सबके विषय में पृथक्-पृथक् कथन करने से ग्रंथ का आकार बहुत बढ़ जायगा, अतः हम इस अध्याय के अंत में एक चक्र दे देंगे, जिसमें इस समयवाले शेष कवियों के नाम, उनके समय, उनके ग्रंथ और उनकी कविता पर सूक्ष्मतया अनुमति प्रकाशित कर दी जायगी। यही ढंग अन्य अध्यायों के विषय में भी रहेगा। प्रधान-प्रधान कवियों की समालोचना भी यहाँ लिखी जाती है। कहीं-कहीं उत्तम कवियों की भी समालोचना उनके ग्रंथ न मिलने या अन्य कारणों से नहीं लिखी जा सकी, अतः यह न समझना चाहिए कि चक्र में लिखे हुए कवियों में प्रधान कवि नहीं हैं।

हिंदी-गद्य लिखने की भी प्रणाली प्रायः इसी समय से पुष्ट होती है। अवश्य ही इसके प्रथम महात्मा गोरखनाथजी ने गद्य-रचना की, परंतु इस काल के संवत् १६८० में जटमल ने गोरा-बादल की लड़ाई गद्य खड़ी बोली में लिखी। इसकी भी भाषा उत्तम नहीं है और न इस काल के कवि से यह आशा ही की जा सकती है, तथापि इसकी गणना गद्य कवियों में करनी चाहिए। अब तक गोरखनाथजी, विट्ठलनाथजी, गंग, गोकुलनाथजी और जटमल प्रधान गद्य-लेखक हुए, जिनमें गंग और जटमल कवि खड़ी बोली मिश्रित गद्य के लेखक थे।

चौदहवाँ अध्याय

सौर काल के शेष कविगण

(१५६१ से १६३० तक)

नाम—($\frac{६६}{१}$) नरवाहनजी भैगाँव निवासी।

जन्म-काल—१५३० के लगभग।

कविताकाल—१५६५ के लगभग।

विवरण—तोषश्रेणी। ये महाशय गोस्वामी श्रीहितहरिवंश के शिष्य थे।

नाम—($\frac{६६}{२}$) हित कृष्णचंद्र गोस्वामी।

ग्रंथ—(१) आशाशतक, (२) सारसंग्रह, (३) अर्थकौमुदी, (४) कर्णानंद, (५) राधानुनय-विनोद, (६) काव्य-अष्टपदी, (७) स्फुट पद।

जन्म-काल—१५४७।

कविताकाल—१५६७।

विवरण—गोस्वामी हितहरिवंश के द्वितीय पुत्र थे।

नाम—($\frac{६६}{३}$) श्रीगोपीनाथ प्रभु।

ग्रंथ—स्फुट पद।

जन्म-काल—१५४८।

रचनाकाल—१५६८।

विवरण—गोस्वामी हित हरिवंशजी के तृतीय पुत्र तथा ध्रुवदास-जी के गुरु थे।

नाम—($\frac{६६}{४}$) बीठलदासजी।

ग्रंथ—पद।

जन्म-काल—१५४० के लगभग।

विवरण—हिताचार्य महाप्रभु के शिष्य थे।

(६७) छीहल कवि ने संवत् १५७५ में पंचसहेली-नामक एक पुस्तक बनाई, जिसमें पाँच अबलाओं की विरह वेदना का वर्णन हुआ है और फिर उनके संयोग का भी कथन है। इनकी भाषा राजपूतानी पुराने ढर्रे की है और इनकी कविता में छंदोभंग भी हैं। इनकी रचना से जान पड़ता है कि ये मारवाड़ की तरफ़ के रहनेवाले थे, क्योंकि इन्होंने तालाबों इत्यादि का वर्णन बड़े प्रेम से किया है। कविता की दृष्टि से इनकी गणना हीन श्रेणी में ही हो सकती है। उदाहरण—

देख्या नगर सोहावना अधिक सुचंगा थानु ;
नाउँ चँदेरी परगटा जनु सुरलोक समानु।
ठाईं-ठाईं मंदिर सित्ति खिना सोने लहीया लेहे ;
दीहल तिन की ऊपमा कहत न आवै छेहे।
ठाईं-ठाईं सरवर पेषिइँ सूभर भरे निवांण ;
ठाईं-ठाईं कुवा बावरी सोहइ फटिक सिवांण।
पंद्रह सै पचहत्तरे पूनिम फागुण मास ;
पंचसहेली वर्णई कवि छीहल परगास।

नाम—(६७/१) गौरवदास जैन।

ग्रंथ—यशोधर चरित्र।

रचनाकाल—१५८०।

विवरण—फफोंदू ग्रामनिवासी।

नाम—(६७/२) ठकुरसी।

ग्रंथ—कृपणचरित्र।

रचनाकाल—१५८०।

विवरण—वेल्ह के पुत्र।

उदाहरण—

इसौ आषि सहु कोई मरम मूरख धन संच्यो ;

दान पुण्य उपगारि दिंत धणु किवैण संच्यो ।
मैं पंदरा सौ असइ पौष पाँचै जगि जाण्यौ ;
जिसौ कृपणु इक दीठु तिसौ गुणु तासु बखाण्यौ ।
कवि कहइ ठकुरसी घेल्ह तणु मैं परमत्थु बिचारियौ ;
खरचियौ त्याहं जीत्यौ जनमु जिह साँच्यौ तिह हारियौ ।

नाम—(६७/३) बालचंद जैन ।

ग्रंथ—राम सीता चरित्र ।

रचनाकाल—१५८० ।

नाम—(६८) लालचदास हलवाई रायबरेली ।

ग्रंथ—(१) भागवत दशम स्कंध की भाषा (१५८७),
(२) हरि-चरित्र (१५८५) ।

कविता-काल—१५८५ ।

विवरण—यह पुस्तक लाला भगवानदीनजी "दीन", अध्यापक हिंदी हिंदू-विश्वविद्यालय, काशी के पास है । उन्हीं से हमको इसकी सूचना मिली है । काव्य की दृष्टि से यह निम्न श्रेणी की है, परंतु पुरानी होने से संग्रह करने-योग्य है । उदाहरण लीजिए—

पंद्रह सौ सत्तासी जहियाँ ; समै बिलंबित बरनो तहियाँ ।
मास असाढ़ कथा अनुसारी ; हरि बासर रजनी उजियारी ।
सकल संत कहँ नावइँ माथा ; बलि-बलि जैहौं जादवनाथा ।
रायबरेली बरनि अवासा ; लालच रामनाम कै आसा ।

(६९) महापात्र नरहरि बंदीजन

इनका जन्म संवत् १५६२ में हुआ । कहते हैं कि इन्होंने १०५ वर्ष की अवस्था पाई । ये महाशय असनी-फ़तेहपूर के रहनेवाले थे और अकबर के दरबार में इनका अच्छा मान था । अकबर ने इन्हें महापात्र की उपाधि दी थी । इनके बनाए हुए रुक्मिणी-मंगल और

छप्पयनीति-नामक दो ग्रंथ सुने जाते हैं। खोज में इनका कवित्त-संग्रह-नामक ग्रंथ मिला है। इनकी गणना तोष कवि की श्रेणी में की जाती है।

उदाहरण—

अरिहु दंत तिनु धरै ताहि नहिं मारि सकत कोइ;
हम संतत तिन चरहिँ वचन उच्चरहिं दीन होइ।
अमृत पय नित स्रवहिँ बच्छ महि थंभन जावहिँ।
हिंदुहि मधुर न देहिँ कटुक तुरकहि न पियावहिँ।
कह कवि नरहरि अकबर सुनौ बिनवत गउ जोरे करन;
अपराध कौन मोहिं मारियत मुयहु चाम सेवइ चरन।

इनका कविता-काल १५६० से प्रारंभ होता है।

(७०) स्वामी निपटनिरंजन

ये महाशय भाषा के प्रकृष्ट कवि और सिद्ध मशहूर हो गए हैं। खोज में इनका समय १५६५ लिखा है। इनकी कविता बड़ी ज़ोरदार और यथार्थ कहनेवाली होती थी। संतसरसी और निरंजन-संग्रह-नामक इनके दो ग्रंथ मिले हैं। इन्होंने कबीरजी की भाँति साधारण बातों में भी ज्ञान कथन किया है। अन्योक्ति भी ये परम मनोहर कहते थे। इन्होंने खड़ी बोली की भी कविता कुछ-कुछ की। हम इनकी गणना तोष कवि की श्रेणी में करेंगे। सुना जाता है कि अकबर बादशाह ने इनसे भेंट की थी।

उदाहरण—

है जग मूत औ मूतहि को बन्यो मूत को भाजन मूत में पाग्यो;
खेत में मूत खतान में मूत औ मूतहि मूत दसौ दिसि जाग्यो।
भावै निरंजन अमृत मूत है मूत ही सों जग है अनुराग्यो;
तात को मूत औ मात को मूत तैं नारि को मूत लै चाटन लाग्यो।

छन मद छका आके छके ते अछक होत,
अछन छका है घूम घूमत घुमारी का ;
दिन निसि, निसि दिन जब सुधि आवति है,
तब उपजावै सुधि साहेब सुमारी का।
निपटनिरंजन अमर मरने का नहीं,
एक बार मारू नाम आवै ना दुबारी का ;
हौं तौ मतवाला ओछे मद का न लेनवाला,
पूर करु प्याला खोज रहै ना खुमारी का।

(७१) श्रीगोस्वामी विट्ठलनाथजी श्रीस्वामी वल्लभाचार्यजी महाप्रभु के शिष्य तथा पुत्र थे। इन्होंने ४ कवि अपने और चार अपने पिता के शिष्यों में से छाँटकर प्रसिद्ध अष्टछाप स्थिर की। इनके बनाए हुए स्फुट पद देखने में आते हैं, परंतु कुछ लोगों का मत है कि वे पद इसी नाम के अन्य कवि के हैं। जो हो, शृंगार-रस-मंडन-नामक एक गद्य-ग्रंथ साधारण व्रजभाषा में इन्होंने राधाकृष्ण-विहार-वर्णन में ५२ पृष्ठों का लिखा। इनके और इनके पिता श्रीमहाप्रभु के कारण भाषा-साहित्य की बहुत बड़ी उन्नति हुई। इनका जन्म चुनार में सं० १५७२ में हुआ और मृत्यु सं० १६४२ में। ये महाराज गद्य के द्वितीय लेखक हैं। तृतीय त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में इनके दो और ग्रंथों—यमुनाष्टक तथा नवरत्न सटीक—का पता चलता है।

उदाहरण—

प्रथम की सखी कहत है जो गोपीजन के चरण विषै सेवक की दासी करि जो इनके प्रेमामृत में डूबिके इनके मंद हास्य ने जीते हैं अमृतसमूह ता करि निकुंज विषै शृंगार रस श्रेष्ठ रचना कीनी सो पूर्ण होत भई, या कारन ते भाव बोध में साक्षी दामोदरदास हरसांनी चाचा हरिबंशजी राखी।

बिट्ठलजी के सात पुत्र हुए, अर्थात् गिरिधरजी, गोबिंदजी, बालकृष्णजी, गोकुलनाथजी, रघुनाथजी, यदुनाथजी और घनश्यामजी। वल्लभाचार्यजी के सात ठाकुरजी मुख्य सेव्य थे। ये एक-एक इन पुत्रों में बँट गए और इस प्रकार इस गोकुलस्थ संप्रदाय की सात गद्दियाँ स्थापित हुईं जो अब तक स्थिर हैं और जिनमें से प्रत्येक की वार्षिक आय पचास साठ हज़ार रुपए है। इनमें से तीन मेवाड़ राज्य में हैं, दो कामवन में, एक गोकुल में और एक कोटा-राज्य में।

(७२) नरोत्तमदास

बिसवाँ कविमंडल के भूतपूर्व मंत्री स्वर्गीय पंडित देवीदत्त त्रिपाठी ने लिखा था कि ये महाशय क़स्बा बाड़ी, ज़िला सीतापूर के रहनेवाले थे और संवत् १६०२ तक वहीं वर्तमान थे। उन्होंने यह भी लिखा था कि नरोत्तमदास ने संवत् १५८२ में सुदामा-चरित्र-नामक प्रसिद्ध ग्रंथ बनाया। खोज (१६००) में भी इसका पता चलता है। ये नरोत्तमदास-कृत ध्रुव-चरित्र-नामक एक द्वितीय ग्रंथ का भी नाम लिखते हैं। ठाकुर शिवसिंहजी ने भी इनका संवत् १६०२ लिखा है। जान पड़ता है कि नरोत्तमदास कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, क्योंकि सीतापूर में वही ब्राह्मण रहते हैं।

इनका सुदामा-चरित्र ३४ पृष्ठ का एक छोटा-सा, परंतु परम मनोहर ग्रंथ है। इनमें सुदामा की दरिद्रता और संपत्ति दोनों के बड़े बढ़िया वर्णन किए गए हैं। उनके संतोष और उच्च विचारों का भी इसमें अच्छा चित्र अंकित है। इस छोटे-से ग्रंथ में नायकों का शील-गुण ख़ूब रक्खा गया है। इनके स्फुट छंद बहुत कम देखने में आते हैं, परंतु इनका श्रृंगार-रस का भी एक उत्तम छंद हमारे पास है। इनकी भाषा व्रजभाषा और काव्य परम प्रशंसनीय है। इन्होंने हर विषय का प्रबल एवं स्वाभाविक वर्णन किया है। मित्र-भाव के

विचार से सुदामा का संकोच और दरिद्रता के कष्ट से स्त्री का हठ इस ग्रंथ के जीव हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी सुदामा को कुछ न देकर उनकी स्त्री को ही धन दिया, क्योंकि वही धन चाहती थी, न कि स्वयं सुदामा, जो केवल शुद्ध मित्रता के उत्सुक थे। हम इस कवि की गणना पद्माकर की श्रेणी में करते हैं। उदाहरणार्थ इनके कुछ छंद नीचे लिखते हैं—

कोदौ सवाँ जुरतो भरि पेट तौ चाहती ना दधि-दूध मठौती ;
सीत बितीत भयो सिसियातहि हौं हठती औ तुम्हैं न हठौती।
जो जनती न हितू हरि से तुम्हैं काहेक द्वारिकै पेलि पठौती ;
या घर तें कबहूँ न टरे पिय टूटो तवा अरु फूटी कठौती।
प्रीति मैं चूक नहीं उनके उठि मोको मिलैं हरि कंठ लगायकै ;
द्वार गए कछु देहैं पै देहैं वै द्वारिकानायक हैं सब लायकै।
बातन बीति गए पन द्वै अब तौ पहुँचो बिरधापन आयकै ;
जीवन केतिक जाके लिये हरि के अब होहुँ कनावड़ो जायकै।

तैं तौ कहै नीकी सुनु मोसों बात ही की यह,
रीति मित्रई की नित प्रति सरसाइए ;
चित के मिले तें वित चाहिए परसपर,
जेंइए जु मीत के तौ आपने जिमाइए।
वे हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप,
तहाँ यहि रूप जाय कहा सकुचाइए ;
दुखै सुखै अब तौ बनत दिन भरे भूलि,
बिपति परे तें द्वार मीत के न जाइए।

सीस पगा न झँगा तन मैं प्रभु जानै को आहि बसै केहि गामा ;
धोती फटी-सी लटी दुपटी अरु पायँ उपानह की नहि सामा।
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल एक रहो चकि सो बसुधा अभिरामा ;
पूछत दीनदयाल को धाम बतावत आपनो नाम सुदामा।

कैसे बिहाल बॅवाँइन सों भए कंटक-जाल गड़े पग जोए ;
हाय महादुख पाए सखा तुम आए इतै न किते दिन खोए।
देखि सुदामा कि दीन दसा करुना करिकै करुनानिधि रोए ;
पानी परात को हाथ छुयो नहिं नैनन के जल सों पग धोए।
काँपि उठी कमला जिय सोचत मोतें कहा हरि को मन रोंको ;
सिद्धि छपैं, नव निद्धि चपैं, बसु ऋद्धि कँपैं यह बाँभन धोंको।
सोर पर्यो सुरलोकहु में जब दूसरी बार लियो भरि झोंको ;
मेरु डरै बकसैं जनि मोहिं कुबेर चबात ही चावर चोंको।

मूठी तीसरि लेत ही रुकुमिनि पकरी बाँह ;
तुम्है कहा ऐसी भई संपति की अनचाह।
कह्यो रुकुमिनी कान मैं यह धौं कौन मिलापु ;
करत सुदामा आपु सम होत सुदामा आपु।

इनका एक तीसरा ग्रंथ विचारमाला सुन पड़ता है पर देखने में नहीं आया।

नाम—(७२/१) हरराज।

ग्रंथ—ढोला मारू बानी। चौपही। खोज १९००।

रचनाकाल—१६०७।

विवरण—यादवराज के आश्रित थे।

(७३) श्रीसेवकजी महात्मा हितहरिवंशजी के शिष्य थे। हित-हरिवंशजी का जन्म संवत् १५३० में हुआ था और १५६५ में वे वृंदावन चले गए थे। सेवकजी का जन्म-काल संवत् १५७० के लगभग जान पड़ता है। इनका कविता-काल संवत् १६१० समझना चाहिए। इन्होंने 'बानी'-नामक ग्रंथ रचा, जिसमें अपने गुरु का यश गान किया। अनन्य मत में ये महाशय बड़े महात्मा थे, परंतु कविता की दृष्टि से हम इन्हें साधारण श्रेणी में रक्खेंगे। इनका ग्रंथ छत्रपूर में है।

उदाहरण—

बैननि नित हरिबंस नाम छिन-छिन जु रटत नर ;
नित-नित रहत प्रसन्न जहाँ दंपति किसोर वर ।
जहँ हरि तहँ हरिबंस जहाँ हरिबंस तहाँ हरि ;
एक सबद हरिबंस सदा राख्यो समीप करि ।
हरिबंस नाम सुप्रसन्न हरि हरि प्रसन्न हरिबंस रति ;
हरिबंस चरन सेवक जिते सुनहु रसिक रस रीति गति ।

नाम—(७४) हरिबंसअली ।

ग्रंथ—१ हिताष्टक प्रथम व द्वितीय ।

कविताकाल—१६१० ।

विवरण—इन्होंने स्वामी हरिवंशजी के दो अष्टक सवैया व कवित्तों में रचे, जिनमें १८ छंद हैं। इनकी कविता साधारण श्रेणी की है । ये ग्रंथ हमने दरबार छत्रपूर में देखे थे । ये हरिवंशजी के समकालिक सुने जाते हैं ।

उदाहरण—

बिथुरी सुथरी अलकैं झलकैं बिच आनि कपोल परीं जु छली ;
मुसुकात जबै दसनावलि देखि लजात तबै तब कुंद-कली ।
अति चंचल नैन फिरैं चहुँधा नित पोखत लाल हैं भाँति भली ;
तिनके पदपंकज को मकरंद सुनित्य लहै हरिबंसअली ।

नाम—(७५) प्रपन्नगोसानंद वैष्णव ।

ग्रंथ—भक्तिभावनी ।

कविताकाल—१६११ ।

विवरण—ग्रंथ-संख्या ५८६ श्लोकों के बराबर ।

(७६) महाराजा टोडरमल खत्री संवत् १५८० में उत्पन्न हुए थे और इनकी मृत्यु संवत् १६४६ में हुई । ये महाशय शेरशाह सूर के समय में भी उच्च पदाधिकारी थे और अकबर-काल में तो भारत

के प्रधान अमात्य हो गए। मालगुज़ारी-विभाग में इनका विशेषतया बंदोबस्त था, पर एक बार बंगाल की गवर्नरी करके भी इन्होंने उसे ठीक कर दिया था और पठानों का बल चूर्ण करके विद्रोह शांत किया। भारत में सदैव से दफ़्तरों में नागरी अक्षरों का प्रचार था और वह मुसलमानों के काल में भी स्थिर रहा। इस प्रकार हिंदी-प्रचार से एक क्षति भी थी कि हिंदू लोग फ़ारसी नहीं पढ़ते थे, सो साधारण हिंदू सरकारी उच्च पद कम पाते थे। यह सोचकर टोडर-मल ने सरकारी दफ़्तरों से हिंदी उठाकर उनमें फ़ारसी का प्रचार कराया। इससे हिंदुओं को लाभ अवश्य पहुँचा, पर इतनी हानि भी हुई कि हिंदी का प्रचार सरकार से उठ गया। महाराजा टोडरमल हिंदी के कवि भी थे, पर इनकी कविता साधारण श्रेणी की है।

उदाहरण—

सोहै जिन सासन में आतमानुसासन सु,
जीके दुखहारी सुखकारी साँची सासना;
जाको गुन भद्रकार गुण भद्र जाको जानि,
भद्र गुनधारी भव्य करत उपासना।
ऐसे सार सास्त्र को प्रकास अर्थ जीवन को,
बनै उपकार नासै मिथ्या भ्रम वासना;
तातें देस भाषा अर्थ को प्रकास करु जातें,
मंद बुद्धि हू के हिय होवै अर्थ भासना।

(७७) बीरबल (ब्रह्म) महाराजा

महाराजा बीरबल का जन्म संवत् १५८५ में तिकवाँपूर ज़िला कानपूर में एक साधारण कान्यकुब्ज ब्राह्मण गंगादास के यहाँ हुआ था। इसका उल्लेख अशोकस्तंभ, प्रयाग में है। उस पर खुदा हुआ है—"संवत् १६३२ शाके १४६३ मार्ग बदी ५ सोमवार गंगादास सुत महाराज बीरबल श्रीतीरथराज प्रयाग की यात्रा सुफल लिखितं।"

इनके जन्म-स्थान के विषय में इतिहासज्ञों में कुछ मतभेद है, पर हमने उपर्युक्त कथन भूषण कवि के आधार पर किया है।

द्विज कनौज कुल कस्यपी रतनाकर-सुत धीर ;
बसत त्रिविक्रमपुर सदा तरनि-तनूजा-तीर ।

यथा—

बीर बीरबल से जहाँ उपजे कवि अरु भूप ;
देवबिहारीश्वर जहाँ विश्वेश्वर तद्रूप ।

(शिवराजभूषण)

महाराज बीरबल का बसाया हुआ गाँव अकबरपूर-बीरबल भी वहाँ से क़रीब दो मील पर है। एक साधारण दशा से अपने बुद्धिबल द्वारा उन्नति करते हुए ये महाशय अकबर शाह के नवरत्नों में हो गए और शाही दरबार से इन्होंने एक बड़ी जागीर तथा महाराजा की पदवी पाई। ये अकबर के सेना-नायकों में से थे और युद्ध में भी जाते थे, यहाँ तक कि इनका शरीरपात भी संवत् १६४० में रणक्षेत्र ही में हुआ। ये महाराज सदैव कविता के प्रेमी रहे और व्रजभाषा की बहुत अच्छी कविता करते थे। इन्होंने छंदों में उपमाएँ बहुत अनूठी कहीं, और प्रायः उपमाओं के लिये छंद कहे, अर्थात् एक अच्छी उपमा सोची और छंद में उसका सामान बाँधकर अंत में उसे कह दिया। इनकी कविता सानुप्रास, सालंकार, ललित और मनोहर होती थी। इनकी गणना तोष कवि की श्रेणी में है। कवि होने के अतिरिक्त ये महाशय हाज़िर-जवाब भी बड़े भारी थे। इनके मज़ाक़ बहुत मार्के के होते थे और वह प्रायः अकबर शाह से हुआ करते थे, जिसका सविस्तर वर्णन बीरबलविनोद-नामक ग्रंथ में है। इनकी हाज़िर-जवाबी का केवल एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है। कहते हैं कि इनके पिता मूर्ख थे, सो दरबारियों ने बादशाह द्वारा उन्हें एक बार दरबार में बुलाकर उनकी मूर्खताओं से बीरबल को झेंपाना चाहा। बीरबल

ने उन्हें सलाम करने तथा शाही आदाब के साथ उचित रीति से बैठने के नियम सिखा दिए, पर समझा दिया कि वे अन्य एक शब्द भी उच्चारण न करें और किसी के साधारण-से-साधारण प्रश्न तक का उत्तर न दें। उनके दरबार में जाने पर अकबर ने उनसे कई साधारण प्रश्न किए, पर वे एकदम मौन ही धारण किए रहे। इस पर बादशाह ने फ़रमाया कि बीरबल ! अगर बेवक़ूफ़ से साबिक़ा पड़े तो कोई क्या करे। बीरबल ने कहा, महाराज ख़ामोशी अख़्तियार करें। यह उत्तर "जवाबे जाहिलाँ बाशद ख़ामोशी" के आधार पर कहा गया था।

इनकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी, तथा उदारता बहुत ही बढ़ी-चढ़ी थी। ये कवियों के बहुत बड़े सहायक थे। केशवदास को इन्होंने एक बार एक छंद पर छः लाख मुद्रा दी तथा ओड़छा-नरेश पर एक कोटि का जुर्माना माफ़ करा दिया। अकबर शाह के यहाँ इनका बड़ा सम्मान था। स्थानाभाव से इनकी रचना में से केवल दो छंद यहाँ दिए जाते हैं—

एक समै हरि धेनु चरावत बेनु बजावत मंजु रसालहि ;
डीठि गई चखि मोहन की वृषभानुसुता उर मोतिन मालहि।
सो छबि ब्रह्म लपेटि हिए कर सों कर लै कर कंज सनालहि ;
ईस के सीस कुसुम्म की माल मनौ पहिरावति व्यालिनि व्यालहि।

उछरि-उछरि भेकी झपटै उरग पर,
उरग पै केकिन के लपटैं लहकिहै ;
केकिन के सुरति हिए की ना कछू है भए,
एकी करी केहरि न बोलत बहकिहै।
कहै कवि ब्रह्म बारि हेरत हरिन फिरैं,
बैहर बहत बड़े जोर सों जहकिहै ;
तरनि के तावन तवा-सो भई भूमि रही,
दसहू दिसान मैं दवारि-सी दहकिहै।

इनके रचित किसी ग्रंथ का पता नहीं मिल सका। पर पं० मया-

ांकरजी याज्ञिक के पास इनके कई सौ छंद मौजूद हैं। इनका कविता-काल संवत् १६१५ से प्रारंभ होता है। इनके मृत्यु पर अकबर शाह ने यह सोरठा कहा—

दीन देखि सब दीन एक न दीन्हो दुसह दुख ;
सो अब हम कहँ दीन कछु नहिं राख्यो बीरबल।

नाम—(७८) व्यासजी, ओड़छा, बुँदेलखंड।

ग्रंथ—१ बानी, २ रास के पद, ३ ब्रह्मज्ञान, ४ मंगलाचार पद, ५ पद (३०० पृष्ठ छोटे), ६ रागमाला। साखी।

कविताकाल—१६१५।

विवरण—इनके ग्रंथ नंबर २, ४ व ५ हमने छत्रपूर में देखे। इनकी कविता साधारण श्रेणी की थी।

उदाहरण—

जैसे गुरु तैसे गोपाल ;
हरि तौ तबहीं मिलिहैं जबहीं श्रीगुरु होयँ कृपाल।
गुरु रूठे गोपाल रूठिहैं बृथा जात है काल ;
एक पिता बिन गनिका-सुत को कौन करै प्रतिपाल।

(७९) बिट्ठल विपुल की बानी हमने छत्रपूर में देखी। वह प्रति संवत् १८७४ की लिखी हुई है। जाँच से इनकी कविता का संवत् १६१५ जान पड़ा। इनके ४० पद बानी में हैं। कविता इनकी साधारण श्रेणी की है। ये महाशय अपने भांजे स्वामी हरिदास के शिष्य थे और राजा मधुबन के यहाँ रहते थे। इनका जन्म संवत् १५८० खोज में लिखा है। कहते हैं कि ये अपने गुरु के ऐसे प्रेमी थे कि उनके मरने पर तुरंत इन्होंने अपनी आँखों में पट्टी बाँध ली।

उदाहरण—

सजनी नवल कुंज बन फूले ;
अलि-कुल संकुल करत कुलाहल सौरभ मनमथ मूले।

हरषि हिंडोरे रसिक रासबर जुगुल परस्पर झूले ;
बिट्ठल बिपुल बिनोद देखि नभ देव बिमानन भूले ।

कहते हैं कि इनकी आँखों की पट्टी स्वयं श्रीकृष्णचंद्र ने एक रास में खोली । स्वामी हरिदास के पीछे यही उनकी गद्दी के अधिकारी हुए । एक बार रास में ये ऐसे प्रेमोन्मत्त हुए कि वहीं इनका शरीर छूट गया ।

(८०) गंग

इनका नाम भाषा-साहित्य-प्रेमियों में बहुत प्रसिद्ध है और आपकी कविता भी लोग बहुत पसंद करते आए हैं, परंतु खेद का विषय है कि इनके चरित्र एवं काव्य दोनों ऐसे लुप्तप्राय हो गए हैं कि पता तक नहीं लगता । हर्ष की बात है कि पं० मयाशंकरजी याज्ञिक ने इनके कई सौ छंद परिश्रम से ढूँढ़कर एकत्रित किए हैं । आशा है, वे उनके प्रकाशित करने का भी प्रबंध करेंगे । इनकी जाति के विषय में भी संदेह है । बहुत लोग इन्हें ब्राह्मण कहते हैं, परंतु कुछ लोगों का यह भी मत है कि ये ब्रह्मभट्ट थे । जनश्रुतियों द्वारा प्रसिद्ध है कि ये महाशय बादशाही दरबारों में भी बड़ी निर्भयता से बातचीत करते थे । हमें इनके ब्राह्मण होने की बात यथार्थ जान पड़ती है । इनकी मौत के विषय में भी मतभेद है । बहुतों का विचार है कि ये महाशय किसी बड़े आदमी की आज्ञा से हाथी द्वारा चिरवा डाले गए थे । वे लोग अपने कथन के प्रमाण में एक गंग का दोहा और अन्य छंद पेश करते हैं । उनके मुख्यांश नीचे दिए जाते हैं—

कबहुँ न भँडुवा रन चढ़े कबहुँ न बाजी बंब ;
सकल सभाहि प्रनाम करि बिदा होत कबि गंग ।

× × ×

गंग ऐसे गुनी को गयंद सों चिराइए ।

× × ×

सब देवन को दरबार जुर्‌यो तहँ पिंगल छंद बनाय कै गायो ;
जब काहू ते अर्थ कह्यो न गयो तब नारद एक प्रसंग चलायो ।
मृतलोक में है नर एक गुनी कहि गंग को नाम सभा में बतायो ;
सुनि चाह भई परमेसुर को तब गंग को लेन गनेस पठायो ।

देव कवि ने भी "एक भए प्रेत एक मीजि मारे हाथी नै" कहकर गंग के हाथी द्वारा मारे जानेवाले कथन का समर्थन किया है । इतिहासवेत्ता स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादजी ने लिखा है कि गंग का अकबर या किसी अन्य मनुष्य की आज्ञा द्वारा चीरा जाना अशुद्ध है, क्योंकि गंग के छंद जहाँगीर की प्रशंसा में भी मिलते हैं । इतिहास से उनके चीरे जाने का हाल "साबित नहीं होता" और गंगजी औरंगज़ेब के समय तक जीवित रहे हैं । इन बातों के प्रमाण में वे निम्न-लिखित छंद लिखते हैं—

तिमिर लंग लइ मोल चली बब्बर के हलके ;
साह हमाऊँ साथ गई फिरि सहर बलक्के ।
अकबर करी अजाच भात जहँगीर खवाए ;
साहजहाँ सुलतान पीठि को भार छुड़ाए ।
उन छोड़ि दई उद्यान बन भ्रमी फिरत है स्यार डर ;
औरंगज़ेब बखसीस किय अब आई कबि गंग घर ।

यह छंद मुंशीजी ने दिसंबर सन् १९०७ ई० की सरस्वती में निकाला था । इसमें कई अशुद्धियाँ जान पड़ती हैं । 'हलके' का तुकांत 'बलक्के' बुरा है । दूसरे हथिनी का अजाच करना भी अयुक्त है । तीसरे जब हथिनी इतनी वृद्धा हो गई थी कि उससे रोट तक दाँतों से काटा नहीं कटता था और इस कारण जहाँगीर को उसे रोट के स्थान पर भात खिलाना पड़ा, क्या तब भी वह बोझा लादने के योग्य बनी ही रही कि दूसरी पुश्त में शाहजहाँ उसकी पीठ का भार छुड़ाते ? चौथे गंग को जिस समय वह हथिनी मिली, तब तो

उन्होंने कुछ भी न कहा, परंतु जब बुड्ढी होने के कारण जंगल में छोड़ना पड़ा तब यह भँड़ौवा बनाया। कविजन ऐसे अनुचित दान पाकर तत्काल भँड़ौवा बनाते हैं, न कि घर आकर सोच-विचारानंतर ऐसा करें। फिर गंग का-सा दबंग कवि तो ऐसा अवश्य करता। पाँचवें गंग अकबर के समय से मुग़लों में सम्मानित रहे, तब ऐसे वृद्ध और मानी कवि को औरंगज़ेब इतना बड़ा बादशाह होकर ऐसी वृद्धा हस्तिनी कैसे देता? यदि कहिए कि उसने मज़ाक़ में ऐसा किया होगा, तो गंग इतने मज़ाक़िए होकर ऐसी मूर्खता क्यों करते कि उसके मज़ाक़ को सच समझकर उसका भँड़ौवा बनाने लगते। यदि कहिए कि मज़ाक़ में भँड़ौवा भी बना होगा, तो हम कहेंगे कि इतने बड़े और संजीदा बादशाह से ऐसे विकराल भँड़ौवा द्वारा कोई मज़ाक़ नहीं कर सकता और बादशाह की चार पीढ़ियों का नमक खाकर एक वयोवृद्ध मनुष्य गंग इतनी कृतघ्नता कभी न करते कि एक अनुचित व्यवहार पर भी बादशाह का ऐसा भँड़ौवा बना डालते। इन विचारों से हमको निश्चय है कि यह छंद गंग का बनाया हुआ नहीं है। हमको यह छंद आठ-दस साल से कंठस्थ है और हमने मुंशीजीवाले इस लेख के छपने के प्रायः दो मास पूर्व सन् १९०७ के देवनागर के चतुर्थ अंक में यह छंद प्रकाशित भी करा दिया था। उसका पाठ मुंशीजी के पाठ से बहुत भिन्न है और उस पाठ में उपर्युक्त दूषण भी नहीं हैं। वह यों है—

तिमिर लंग लइ मोल चली बाबर के हलके;
रही हुमायूँ संग गई अकबर के दलके।
जहाँगीर जस लियो पीठि को भार हटायो;
साहिजहाँ करि न्याव ताहि पुनि माड़ चटायो।
बल रहित भई पौरुख थक्यो भगी फिरत बन स्यार डर;
औरंगज़ेब करिनी सोई लै दीन्ही कबिराज कर।

इसमें गंग का नाम नहीं है। यह किसी अन्य कवि का बनाया है। फिर हमारे मत में गंग का औरंगज़ेब के समय तक जीवित रहना भी असंगत है। गंग ने अकबर के पालक बैरमख़ाँ के (जिसको अकबर बैरम बाबा कहते थे) पुत्र अब्दुलरहीम ख़ानख़ाना की प्रशंसा में बहुत-से छंद बनाए हैं। इससे एवं जनश्रुतियों द्वारा समझ पड़ता है कि गंग अकबर की सभा में रहते थे। कोई नवयुवक कवि ख़ानख़ाना-ऐसे गुणी और सत्कवि को कविता द्वारा ऐसा प्रसन्न तो कर ही नहीं सकता था कि उनसे अच्छा सम्मान पाता, सो इस ऊँचे दर्जे पर पहुँचने के लिये गंग-ऐसे साधारण श्रेणी के मनुष्य को बहुत समय लगा होगा। इससे विचार होता है कि गंग अवस्था में यदि रहीम से बड़े नहीं, तो उनके बराबर अवश्य होंगे। रहीम का जन्म संवत् १६१० में हुआ था और उनकी मौत संवत् १६८२ में हुई। तब उसी समय संभवतः ७९ वर्ष के होकर गंग का संवत् १७१४ तक जीवित रहना (जब कि औरंगज़ेब गद्दी पर बैठा) प्रायः असंभव जान पड़ता है। उपर्युक्त तीनों छंदों की स्थिति और कथा के इतने प्रचार से हमें जान पड़ता है कि गंग कवि किसी की कठोर आज्ञा से हाथी द्वारा अवश्य चीरे गए थे और वे हाथी के केवल झपेट में आकर नहीं मरे, जैसा मुंशीजी अनुमान करते हैं, क्योंकि तीन में से दो छंद इस अनुमान के प्रतिकूल हैं। हमें समझ पड़ता है कि गंग का समय संवत् १५९० से १६७० तक का होगा। कोई उत्तम कवि किसी गप्पाष्टक के समर्थन करने को छंद क्यों बनाता? उपर्युक्त द्वितीय छंदांश से किसी सत्कवि का सच्चा क्रोध एवं आश्चर्य प्रकट होता है।

गंग यद्यपि बहुत बढ़िया कवि थे और उन्होंने हज़ारों छंद कहे होंगे, तथापि उनकी कविता ऐसी लुप्तप्राय हो गई है कि उनका एक भी ग्रंथ नहीं मिलता और बहुत ढूँढ़ने पर हमें उनके तीस-पैंतीस छंद से अधिक न मिल सके। दास-सदृश महाकवि ने गंग

को कवियों का सरदार माना है, यथा—"तुलसी गंग दुवौ भए सुकविन के सरदार ; इनके ग्रंथनि में मिली भाषा विविध प्रकार" इस दोहे के लिखते समय दास ने हिंदी के कई प्रसिद्ध कवियों के नाम लिखे, परंतु सूर, केशव, देव और बिहारी-ऐसे धुरंधर कवियों तक को छोड़ केवल गंग और तुलसी की स्तुति की। श्रीपति-ऐसे महाकवि ने भी गंग का 'रही न निसानी कहूँ महि में गरद की'-वाला पद उठाकर अपने शरद्-वर्णन के एक छंद में यथातथ्य रख दिया। इनका लोक में इतना आदर था कि सुना जाता है कि ये सदैव शाही दरबार में रहे और ख़ानख़ाना ने इन्हें एक ही छंद पर छत्तीस लाख रुपए दिए थे।

गंग की जो कुछ कविता मिलती है उससे विदित होता है कि ये बड़े ही धुरंधर कवि थे। तृ०त्रै०खो० से इनके ख़ानख़ाना कवित्त-नामक ग्रंथ का पता चलता है। इन्होंने व्रजभाषा को प्रधान रक्खा है, परंतु इनके काव्य में "मिली भाषा विविध प्रकार"। इन्होंने एक छंद फ़ारसी-मिश्रित कहा है, जैसा कि इनके आश्रयदाता ख़ानख़ाना किया करते थे। इस कवि में उद्दंडता की मात्रा विशेष है और एक स्थान पर इन्होंने अतिशयोक्ति की भी टाँग तोड़ दी है। ये हास्य-रस के आचार्य थे और इन्होंने युद्धकविता भी बड़ी ही उत्कृष्ट की है। इनकी समस्त रचना में कुछ ऐसा अनठापन देख पड़ता है कि ठाकुर आदि दो-चार कवियों को छोड़कर किसी में भी उसका पता नहीं लगता। उपर्युक्त कथनों के उदाहरणार्थ गंग के कुछ छंद हम नीचे लिखते हैं। गंग को हम सेनापति की श्रेणी का कवि समझते हैं।

बैठी ती सखिन संग पिय को गवन सुन्यो,
सुख के समूह में वियोग-आगि भरकी ;
गंग कहै त्रिविध सुगंध लै पवन बह्यो,
लागत ही ताके तन भई बिथा जर की।

प्यारी को परसि पौन गयो मानसर पहँ,
लागत ही औरै गति भई मानसर की ;
जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो,
जल जरि गयो पंक सूख्यो भूमि दरकी ।
नवल नवाब ख़ानख़ाना जू तिहारी त्रास,
भागे देसपती धुनि सुनत निसान की ;
गंग कहै तिनहूँ की रानी रजधानी छाँड़ि ,
फिरें बिललानी सुधि भूली खान-पान की ।
तेऊ मिलीं करिन हरिन मृग बानरन,
तिनहूँ की भली भई रच्छा तहाँ प्रान की ;
सची जानी करिन भवानी जानी केहरिन,
मृगन कलानिधि कपिन जानी जानकी ।
प्रबल प्रचंड बली बैरम के ख़ानख़ाना,
तेरी धाक दीपन दिसान दह-दहकी ;
कहै कवि गंग तहाँ भारी सूर बीरन के,
उमड़ि अखंड दल प्रलै पौन लहकी ।
मच्यो घमसान तहाँ तोप तीर बान चलैं ,
मंडि बलवान किरवान कोपि गहकी ;
तुंड काटि मुंड काटि जोसन जिरह काटि ,
नीमा जामा जीन काटि जिमीं आनि ठहकी ।
झुकत कृपान मयदान ज्यों उदोत भान,
एकन तें एक मनौ सुखमा जरद की ;
कहै कवि गंग तेरे बल की बयारि लगे,
फूटी गज-घटा घनघटा ज्यों सरद की ।
एते मान सोनित की नदियाँ उमड़ि चलीं,
रही न निसानी कहूँ महि में गरद की

गौरी गह्यो गिरिपति गनपति गह्यो गौरो,
गौरी पति गह्यो पूँछ लपकि बरद की।

नाम—(८१) तानसेन ग्वालियर।

ग्रंथ—संगीतसार (१६१७), रागमाला (१६१७), श्रीगणेश स्तोत्र।

कविताकाल—१६१७।

विवरण—ये महाशय प्रथम ग्वालियर के ब्राह्मण और स्वामी हरिदास के शिष्य थे, पर पीछे मुसलमान हो गए। ये अद्वितीय गानेवाले थे और कविता भी अच्छी करते थे।

उदाहरण—

किधौं सूर को सर लग्यो किधौं सूर की पीर;
किधौं सूर को पद लग्यो तन मन धुनत सरीर।

यह दोहा सूरदास की प्रशंसा में तानसेन ने कहा था। इस पर सूरदास ने इनकी प्रशंसा यों की—

बिधना यह जिय जानिकै सेसहि दिए न कान;
धरा मेरु सब डोलते तानसेन की तान।

तानसेन का नाम त्रिलोचन मिश्र था। इनके पितामह इनके साथ ग्वालियर-नरेश महाराजा रामनिरंजन के यहाँ जाते थे और इन्हीं महाराजा ने त्रिलोचनजी को तानसेन की उपाधि दी। तभी से ये तानसेन कहलाने लगे। गान-शास्त्र में पहले बैजू-बावरे इनके गुरु थे। पीछे से तानसेन शेख़ महम्मद ग़ौस ग्वालियरवाले के शिष्य हुए। कहते हैं कि शेख़जी ने तानसेन की जिह्वा में अपनी जिह्वा लगा दी। उसी दिन से तानसेन मुसलमान हो गए और अच्छे गायक भी हुए। जिह्वा लगाने से अच्छे गायक होने की कथा अशुद्ध समझनी चाहिए। यह भी कहते हैं कि शाही घराने की किसी कन्या से विवाह करने से तानसेन मुसलमान हुए। यह बात अधिक प्रामाणिक जान पड़ती है।

नाम—(८२) महाराजा पृथ्वीराज बीकानेर।

ग्रंथ—१ श्रीकृष्णदेव रुक्मिणी बेलि खोज (१६००), २ श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-चरित्र, ३ प्रेमदीपिका।

कविताकाल—१६१७।

विवरण—साधारण श्रेणी। ये महाराज अकबर शाह के दरबार में रहते थे। जिस समय महाराजा प्रतापसिंह अकबर की अधीनता क़बूल करनेवाले थे उस समय इन्होंने कुछ दोहे लिखकर उनको इस काम से रोका था। ये महाराज काव्य-रसिक और बड़े देश-भक्त भी थे।

उदाहरण—

प्रेम इकंगी नेम-प्रेम गोपिन को गायो;
बचनन बिरह बिलाप सखी ताकी छबि छायो।
ग्यान जोग बैराग मधुर उपदेसन भाख्यो;
भक्ति भाव अभिलाष मुख्य बनितन मनु राख्यो।
बहु बिधि बियोग संजोग-सुख सकल भाव समुझै भगत;
यह अद्भुत प्रेमप्रदीपिका कहि अनंत उदित जगत।

(८३) मनोहर कवि

ये महाराज मनोहरदास कछवाहा अकबर शाह के मुसाहब थे, जैसा कि इनकी कविता से ज़ाहिर होता है। सरोज में लिखा है कि ये संस्कृत तथा फ़ारसी-भाषा के बड़े विद्वान् थे। ये फ़ारसी-शायरी में अपना नाम "तोसनी" रखते थे। इनका समय सं० १६२० के लगभग है। इनकी कविता बड़ी ही उदार, मधुर, सानुप्रास, भाव-पूर्ण, सरस और प्रशंसनीय है। हम इनकी गणना तोष की श्रेणी में करते हैं। इन्होंने शतप्रश्नोत्तरी-नामक एक ग्रंथ भी बनाया है।

उदाहरण—

इंदु-बदन नरगिस-नयन संबुलवारे बार;

उर कुमकुम कोकिल-बयन जेहि लखि लाजत मार।
बिथुरे सुथरे चीकने घने बने घुँघुवार;
रसिकन को जंजीर-से बाला तेरे बार।
अकबर सों बर कौन नर नरपति-पति हिंदुवान;
करन चहत जेहि करन सों लेन दान सनमान।
अचरज मोहिं हिंदू तुरक बादि करत संग्राम;
यक दीपति सों दीपियत काबा काशी धाम।

(८४) गोस्वामी गोकुलनाथजी

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ के ये महाराज आत्मज थे। इनके दो गद्य-ग्रंथ चौरासी वैष्णवों की वार्ता और २५२ वैष्णवों की वार्ता प्रसिद्ध हैं और दोनों हमारे पुस्तकालय में वर्तमान हैं। महात्मा गोरखनाथजी के प्रायः २०० वर्ष पीछे गद्य-लेखन की ओर इन्हीं पिता-पुत्रों ने समुचित ध्यान दिया। इनकी लेख-प्रणाली प्रशंसनीय है और उसके अवलोकन से विदित होता है कि बीच में भी गद्य लिखने की प्रथा एकदम बंद नहीं हो गई थी। इन दोनों ग्रंथों का विषय इनके नाम ही से प्रकट होता है। इनसे तात्कालिक कई महात्माओं का समय स्थिर हो जाता है। इनका कविता-काल संवत् १६२५ से प्रारंभ होना प्रतीत होता है। गोस्वामीजी ने साहित्य का विचार छोड़कर साधारण व्रजभाषा में भक्तों के जीवन-चरित्र लिखे हैं।

उदाहरण—

श्रीगोसाईंजी के दर्शन करिके अच्युतदास की आँखन में सूँ आसून को प्रवाह चल्यो सो देखिके अच्युतदास कों श्रीगोसाईंजी ने अच्युतदास सों पूछी जो अच्युतदास तुमकों ऐसा दुक्ख कहा है।

(८५) श्रीदादूदयालजी

इन महाशय का जन्म संवत् १६०१ में हुआ था और संवत् १६६०

में ये पंचत्व को प्राप्त हुए। कुछ लोगों का विचार है कि ये महाशय जाति के मोची थे और इनका नाम महाबली था, पर शेष लोग इन्हें सारस्वत ब्राह्मण मानते हैं । यह दूसरा मत पुष्ट समझ पड़ता है। महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी ने लिखा है कि कमाल कबीरदास के शिष्य थे और दादूजी कमाल के शिष्य थे, पर कमाल का कबीरदास का निकम्मा पुत्र होना अधिक प्रसिद्ध है । दादूजी कभी क्रोध नहीं करते थे और सब पर दया रखते थे। इसी से इनका नाम दयाल पड़ गया। ये सबको दादा-दादा कहने के कारण दादू कहलाए। ये महाशय बहुत बड़े उपदेशक ऋषि हो गए हैं और इनका चलाया हुआ मत दादूपंथ कहलाता है। सुंदरदास, रज्जबजी, जनगोपाल, जगन्नाथ, मोहनदास, खेमदास आदि इनके शिष्य अच्छे कवि भी थे। दादूजी के बनाए हुए सबद और बानी हमारे पास हैं, जिनमें इन्होंने संसार की असारता और ईश्वर (राम)-भक्ति के उपदेश सबल छंदों द्वारा दिए हैं। इन्होंने भजन भी बहुत बनाए हैं । कविता की दृष्टि से भी इनकी रचना मनोहर और यथार्थभाषिणी है। वह साधारण श्रेणी में रखने के योग्य है। खोज १९०२ में इनके ३ ग्रंथ और लिखे हैं (१) दादूजी को अध्यात्म, (२) दादूदयाल को कृत्य और (३) समर्थई को अंग।

उदाहरण—

मन रे राम विना तन छीजइ ;
जब यह जाइ मिलइ माटी में तब कहु कइसहि कीजइ ।
पारस परस कँचन करि लीजइ सहज सुरत सुखदाई ;
माया बेलि विषै फल लागे तापर भूलु न भाई।
जब लगि प्रान पिंड है नीका तब लगि तू जिनि भूलइ ;
यह संसार सेमर के सुख ज्यों तापर तूँ जिनि फूलइ ।
औरउ यही आनि जग जीवन समझ देखि सच पावइ ;
अंग अनेक आन मति भूलइ दादू जिनि डहकावइ ।

अजहुँ न निकसे प्रान कठोर ;
दरसन बिना बहुत दिन बीते सुंदर प्रीतम मोर।
चार पहर चारहु जुग बीते रैन गँवाईं भोर ;
अवधि गए अजहूँ नाहिं आए कतहुँ रहे चितचोर।
कबहूँ नैन निरखि नहिं देखे मारग चितवत तोर ;
दादू अइसहि आतुरि बिरहिनि. जइसहि चंद चकोर।

(८६) गंग ब्रह्मभट्ट

गंग भट्ट ने संवत् १६२७ में "चंद छंद बरनन की महिमा"-नाम्नी पुस्तक खड़ी बोली गद्य में लिखी। इसमें केवल १६ पृष्ठ हैं। ग्रंथ में कहा गया है कि यह वर्णन गंग भट्ट ने बादशाह अकबर को १६२७ में सुनाया और विष्णुदास ने १६२१ में ग्रंथ लिखा। अब तक के ज्ञात कवियों में यह कवि खड़ी बोली गद्य का प्रथम लेखक है। यह लेखक प्रसिद्ध कवि गंग भी हो सकता है। इन दोनों कवियों की काव्य-प्रौढ़ता में बड़ा अंतर अवश्य है।

उदाहरण—

सिद्धि श्री श्री १०८ श्री श्री पातसाही जि श्री दलपति जी अकबर साहाजी आम काश में तखत ऊपर बिराजमान हो रहे। और आम काश भरने लगा हे जीसमें तमाम उमराव आय-आय कुरनश बजाय-बजाय जुहार करके अपनी-अपनी बैठक पर बैठ जाया करै अपनी-अपनी मिशल से जिनकी बैठक नहीं सो रेसम के रसे में रेसम कीलू में पकड़-पकड़ के घड़ ता बिन में रहै।

इतना सुन के पातशाहाजी श्रीअकबर शाहाजी आद सेर सोना नाहरदास चारन को दिया इनके डेड सेर सोना हो गया रास बंचना पूरन भया अमकास बरकास हुआ जीसका संवत् १६२७ का मेती मधुमास सुदी १२ गुरुवार के दिन पूरन भए।

(८७) श्रीभट्ट महाराज निंबार्क-संप्रदाय के वृंदावन-निवासी

वैष्णव थे। इनका कविता-काल जाँच से १६३० सं० के लगभग जान पड़ा है। इनका 'आदि वाणी'-नामक ग्रंथ ५० मँझोले पृष्ठों का हमने छत्रपूर में देखा है। इनकी रचना जी लोभावनी है। हम इन्हें साधारण श्रेणी में रखते हैं। इनका वर्णन नाभादास ने भक्त-माल में किया है। इनका जुगुलशत ग्रंथ खोज (१६००) (द्वि० त्रै० रि०) में लिखा है।

उदाहरण—

वने बन ललित तृभंग बिहारी ;
बंसी-धुनि मनु बंसी लाई आई गोपकुमारी।
अरप्यो चारु चरन पद ऊपर लकुट कच्छ तर धारी ;
श्रीभट मुकुट चटक लटकनि मैं अटकि रहे प्रिय प्यारी।

(८८) बिहारिनिदासजी महात्मा श्रीहरिदासजी के शिष्य थे। इनका कविता-काल संवत् १६३० है। इन्होंने 'साखी' बनाई, जिसकी एक भारी टीका किसी बाबाजी ने की। साखी में ६५० छंद हैं, जिनमें से कुछ छोड़कर शेष दोहे हैं। इसी ग्रंथ की टीका १०८६ बड़े पृष्ठों में हुई। इन्होंने ११६ पदों का एक दूसरा ग्रंथ रचा। ये ग्रंथ छत्रपूर में हैं। इनकी गणना साधारण श्रेणी में है। द्वितीय त्रैवार्षिक खोज में इनका १ ग्रंथ समय-प्रबंध मिला है।

उदाहरण—

कूकर चौक चटाइए चाकी चाटन जाय ;
श्रीहरिदासन पीठि दै जीवत जाचत धाय।
जाको सदका खाइए ताही की करि आस ;
जाके द्वारे जायगो ताके आस पचास।
साधन सबै प्रेम के तरु, हरि ;
निकसत उमँग प्रगट अंकुर बर पात पुराने परिहरि।
गुन सुनि भई दास की आसा दरस्यो परस्यो भावै ;

जब दरस्यो तब बोल्यो चाहै बोले हू हँसि आवै।

विट्ठल विपुल के पीछे ये हरिदास स्वामी की गद्दी के अधिकारी हुए।

नाम—(८९) नागरीदास श्रीहितवनचंद्र के शिष्य।

ग्रंथ—१ समय-प्रबंध, २ समय-प्रबंध।

कविताकाल—१६३०।

विवरण—इनके प्रथम ग्रंथ में सात समय की सेवा का वर्णन है, तथा अन्य महात्माओं के पद संगृहीत हैं। उसी में विशेषतया श्रीहितहरिवंशजी के पद हैं। इसका आकार रॉयल अठपेजी १२२ पृष्ठ का है। द्वितीय में स्वयं इनकी रचना है, जिसमें कुल ३३१ पद हैं। इनके ९३४ दोहे भी बड़े भाव-युक्त तथा गंभीर हैं। कविता इनकी प्रशंसनीय है। हम इन्हें तोष की श्रेणी का कवि मानते हैं। ये ग्रंथ हमने दरबार छत्रपूर में देखे हैं। ये हित-संप्रदाय में थे।

उदाहरण—

मेरो झूमत हथिया मद कौ;
पिय हिय हिलगि परी पग सों कर मैयत अपनी सदकौ।
सुरति नदी मरजादा ढाहत मन गुमान अनुराग उलद कौ;
नागरिदास बिनोद मोद मृदु आनँद बर बिहार बेहद कौ।
प्यारी जोरी कै तनु मोरत;
बंक बिसाल छबीले लोचन भ्रू बिलास चित चोरत।
कनक-लता-सी आगे ठाढ़ी मन अरु डीठि अगोरत;
उघटी बर कुच तटी पटी तैं छबि मरजादहिं फोरत।
अति रस बिबस पियहि उर लावत केलि कलोल झकोरत;
नागरिया ललितादि निरखि सुख लै बलाय तिन तोरत।

इस समय के अन्य कविगण

नाम—(९१) मुनि आनंद।

ग्रंथ—विक्रम वापर चरित ।

रचनाकाल—१५६२ ।

नाम—(८९/२) लावण्यसमय गणि ।

ग्रंथ—(१) विमल मंत्रीरास, (२) कर संवाद रासा ।
(१५६८) (१५७५)

रचनाकाल १५६८ ।

नाम—(८९/३) सहजसुंदर ।

ग्रंथ—गुण-रत्नाकर ।

रचनाकाल—१५७२ ।

विवरण—इस जैन कवि की संस्कृत तथा प्राकृत-मिश्रित हिंदी है ।

नाम—(९०) अमरदास ।

ग्रंथ—भगत-विरुदावली (प्र० त्रै० रि०) ।

रचनाकाल—१५७७ ।

विवरण—नानक महाराज के शिष्य हैं । कहीं-कहीं इनका समय १७३६ भी मिला है ।

नाम—(९०/१) सिद्धराम ।

ग्रंथ—(१) साखी, (२) शब्द, (३) बैराग को अंग, (४) योग ध्यान का अंग, (५) शब्द-बावनी (तृ० त्रै० रि०)

रचनाकाल—१५८२ ।

विवरण—चरणदास के शिष्य रामरूप के चेला थे ।

नाम—(९०/२) धर्मदास गणि ।

ग्रंथ—उपदेशमाला बालबोध ।

रचनाकाल—१५८५ ।

विवरण—गद्य-ग्रंथ ।

नाम—(९१) छेम बंदीजन डलमऊ ।

रचनाकाल—१५८७ ।

विवरण—हुमायूँ बादशाह के समय दिल्ली में थे। साधारण श्रेणी।

नाम—(६२) मोतीलाल बाँसी बस्ती।

ग्रंथ—गणेशपुराण भाषा।

रचनाकाल—१५६० (खोज १६०१)।

विवरण— साधारण श्रेणी।

नाम—(६३) सहजसुंदर।

ग्रंथ—रत्नसागर कुमारदास।

रचनाकाल—१५६२।

नाम—(६४) सूरदास संडीले के अमीन (मदनमोहन के शिष्य)।

ग्रंथ—स्फुट।

रचनाकाल—१५६५ के लगभग।

विवरण—इनका नाम बाबू राधाकृष्णदास ने ध्रुवदास-कृत भक्त-नामावली के नोट नं० १६ में लिखा है।

नाम—(६५) केशवदास व्रजवासी कश्मीर के रहनेवाले।

ग्रंथ—अमरबत्तीसी।

रचनाकाल— १५६८ (खोज १६०२)

विवरण—साधारण श्रेणी।

नाम—(६६) अजबेस प्राचीन भाट।

रचनाकाल—१६००।

विवरण—म० वीरभानुसिंह रीवाँ-नरेश के यहाँ थे। तोष कवि की श्रेणी। इन्होंने अकबर की बाल्यावस्था का वर्णन किया है जिससे सरोज का समय अशुद्ध मालूम होता है।

नाम—(६७) गंगा स्त्री।

ग्रंथ—स्फुट पद।

रचनाकाल—१६०० लगभग।

विवरण—इनका और (६८) का नाम ध्रुव-कृत भक्त नामावली में हैं। ये गोस्वामी श्रीहित हरिवंश की चेलियाँ थीं।

नाम—(६८) जमुना स्त्री।

ग्रंथ—स्फुट पद।

रचनाकाल—१६०० लगभग।

विवरण—देखिए नं० ६७।

नाम—(६६) गदाधर मिश्र व्रजवासी।

जन्म-संवत्—१५८०।

रचनाकाल—१६०५।

विवरण—इनके पद रागसागरोद्भव में हैं। इनकी कविता परमोत्तम है। तोष कवि की श्रेणी के कवि हैं।

नाम—(१००) दील्ह।

रचनाकाल—१६०५।

नाम—(१०१) माधवदास ब्राह्मण जगन्नाथपुरीवाले।

जन्म-संवत्—१५८०।

रचनाकाल—१६०५।

विवरण—हीन श्रेणी।

नाम—(१०२) आसकरनदास नरवरगढ़ ग्वालियर।

रचनाकाल—१६०६।

विवरण—पद बनाए हैं। साधारण श्रेणी के कवि हैं। नरवरगढ़ के राजा भीमसिंह के पुत्र थे।

नाम—(१०३) धरमदास।

ग्रंथ—आत्मबोध।

रचनाकाल—१६०७।

नाम—(१०४) फ़हीम।

ग्रंथ—स्फुट दोहे।

रचनाकाल—१६०७ ।

विवरण—शेख़ अबुलफ़ज़्ल के छोटे भाई थे ।

नाम—(१०५) रामदास बाबा गोपाचलवाले ।

रचनाकाल—१६०७ ।

विवरण—अकबर के यहाँ गाते थे ।

नाम—(१०६) हरिराय (वल्लभी) ।

ग्रंथ—(१) आचार्यजी महाप्रभून की द्वादस निजवार्ता, (२) श्रीआचार्यजी महाप्रभून के सेवक चौरासी वैष्णवों की वार्ता, (३) श्रीआचार्य महाप्रभून को निज वार्ता वा घरूवार्ता, (४) ढोलामारू की वार्ता, (५) भागवती के लक्षण, (६) द्विदलात्मक स्वरूप विचार, (७) गद्यार्थ भाषा, (८) गोसाईंजी के स्वरूप के चिंतन को भाव, (९) कृष्णावतार स्वरूप निर्णय, (१०) सातों स्वरूप की भावना, (११) वल्लभाचार्यजी के स्वरूप को चिंतन भाव, बरसोत्सव, यमुना जी के नाम ।

रचनाकाल—१६०७ ।

नाम—(१०७) इबराहीम आदिलशाह बीजापुर-नरेश ।

ग्रंथ—नौरस ।

रचनाकाल—१६०८ ।

विवरण—इन शाह बीजापुर ने रस और रागों पर नौरस-नामक ग्रंथ बनाया था, जिसकी तारीफ़ ज़हूरी ने की है ।

नाम—(१०८) गोविंदराम राजपूतानावाले ।

ग्रंथ—हाड़ावती ।

रचनाकाल—१६०९ ।

विवरण—निम्न श्रेणी ।

नाम—(१०९) ऊधोराम ।

रचनाकाल—१६१० ।

विवरण—साधारण श्रेणी ।

नाम—(११०) गोस्वामी वनचंद्रजी ।

ग्रंथ—स्फुट पद (तृ० त्रै० रि०) ।

रचनाकाल—१६१० ।

विवरण—हितहरिवंश के चौथे पुत्र । साधारण कवि । इनके वंशधर गिरिधरलाल झाँसी में हैं ।

नाम—(१११) मानराय बंदीजन असनीवाले ।

जन्म-संवत्—१५८० ।

रचनाकाल—१६१० ।

विवरण—अकबर शाह के यहाँ थे ।

नाम—(१११/१) लालदास स्वामी ।

ग्रंथ—(१) बानी, (२) मंगल, (३) चेतावनी, (४) स्फुट पद ।

रचनाकाल—१६१० ।

विवरण—देवहन ज़िला मथुरा-निवासी, गोस्वामी गोपीनाथ के शिष्य थे ।

नाम—(११२) गेसानंद ।

ग्रंथ—भक्तिभावती ।

रचनाकाल—१६११ (खोज १६०१) ।

नाम—(११३) विनयसमुद्र बीकानेर ।

ग्रंथ—सिंहासनबत्तीसी ।

रचनाकाल—१६११ (खोज १६०१)

नाम—(११४) ब्रह्मराय मल जैन ।

ग्रंथ—(१) हनुमत मोक्ष-कथा (१६१६), (२) श्रीपाल-रासो (१६३०) (खोज १६००) ।

रचनाकाल—१६१३ ।

नाम—(११५) गोप। इनका ठीक नं० ६$\frac{६}{१}$३ है।

ग्रंथ—रामालंकार।

जन्म-संवत्—१५९० ।

रचनाकाल—१६१५ ।

विवरण—महाराज पृथ्वीसिंह ओड़छा-नरेश के यहाँ थे।

नाम—(११६) जोध ।

जन्म-संवत्—१५९० ।

रचनाकाल—१६१५ ।

विवरण—अकबर शाह के यहाँ थे ।

नाम—(११७) पुरुषोत्तम बुँदेलखंडी ।

ग्रंथ—राजविवेक ।

रचना-संवत्—१६१५ ।

विवरण—फ़तेहचंद कायस्थ के यहाँ थे। खोज १९०३ में इनका रचनाकाल १७१५ लिखा है।

नाम—(११८) भगवानदास मथुरा-निवासी ।

जन्म-संवत्—१५९० ।

रचनाकाल—१६१५ ।

विवरण—इनके पद रागसागरोद्भव में हैं ।

नाम—(११९) बंदन ।

ग्रंथ—(१) गणेशव्रत कथा, (२) भगवानस्तुति (५२ छंद) ।

रचनाकाल—१६१६ ।

विवरण—छत्रपूर में देखे। हीन श्रेणी ।

नाम—(१२०) मोहनलाल मिश्र चूरामणि के पुत्र चरखारी।

ग्रंथ—शृंगारसागर ।

रचनाकाल—१६१६ (खोज १९०५)।

विवरण—रीति ग्रंथ कहा है। साधारण श्रेणी ।

नाम—(१२०) रायमल्ल पाँड़े ।

ग्रंथ—हनुमच्चरित्र ।

रचनाकाल—१६१६ ।

विवरण—भट्टारक अनंतकीर्ति के शिष्य थे ।

नाम—(१२१) गोपा ।

ग्रंथ—(१) रामभूषण, (२) अलंकारचंद्रिका ।

जन्म-संवत्—१५९० ।

रचनाकाल—१६२० ।

नाम—(१२२) गंगाप्रसाद ब्राह्मण यकनौर ज़ि० इटावा ।

जन्म-संवत्—१५९५ ।

रचनाकाल—१६२० ।

विवरण—अकबर शाह के दरबार में थे । एक रीतिग्रंथ बनाया है । निम्न श्रेणी ।

नाम—(१२३) जगदीश ।

जन्म-संवत्—१५८८ ।

रचनाकाल—१६२० ।

विवरण—ये अकबर शाह के यहाँ थे । इनकी कविता मनोहर है । इनकी गणना साधारण श्रेणी में है ।

नाम—(१२४) नरमिया उपनाम नरमी जूनागढ़ गुजरातवाले ।

जन्म-संवत—१५९० ।

रचनाकाल—१६२० ।

विवरण—निम्न श्रेणी ।

नाम—(१२५) प्रसिद्ध ।

जन्म-संवत्—१५९० ।

रचनाकाल—१६२० ।

विवरण—साधारण श्रेणी । ख़ानख़ाना के यहाँ थे ।

नाम—(१२६) रामचंद्र मिश्र ।

ग्रंथ—रामविनोद (द्वि० त्रै० रि०)।

रचनाकाल—१६२० ।

विवरण—सेहरा-ग्राम पंजाब-प्रांत में रहते थे। पिता का नाम केशवदास था ।

नाम— १२७) लक्ष्मणशरणदास ।

रचनाकाल—१६२० ।

विवरण—साधारण श्रेणी ।

नाम—(१२८) सर्वजीत ।

ग्रंथ—विष्णुपद (खोज १६०४)।

रचनाकाल—१६२० ।

विवरण—तोष-श्रेणी। इनका समय अज्ञात है पर इनकी कविता सौर काल की समझ पड़ती है ।

नाम—(१२८/१) गोपाल ।

ग्रंथ—समस्याचिमन (चमन)

रचनाकाल—१६२१ ।

विवरण—साधारण श्रेणी ।

नाम—(१२६) आनंद कायस्थ कोटहिसार के ।

ग्रंथ—'कोकसार' या 'कोक-मंजरी' ।

रचनाकाल—१६२२ ।

विवरण—स्यात् यह १७११वाले आनंद हों ।

नाम—(१३०) परबत ।

रचनाकाल—१६२४ ।

विवरण—साधारण श्रेणी ।

नाम—(१३१) अभयराम वृंदावन ।

जन्म-संवत्—१६११ ।

रचनाकाल—१६२५ ।

विवरण—साधारण श्रेणी ।

नाम—(१३१/२) कृष्णचंद्र गोस्वामी ।

ग्रंथ—(१) सिद्धांत के पद, (२) कृष्णदास के पद ।

कविता-काल—१६२६ (तृ० त्रै० रि०) ।

विवरण—हितहरिवंश के द्वितीय पुत्र ।

नाम—(१३२) जमाल ।

ग्रंथ—जमालपचीसी । भक्तमाल की टिप्पणी ।

जन्म-संवत्—१६०२ ।

रचनाकाल—१६२७ ।

विवरण—गूढ़काव्य बनाया है । साधारण श्रेणी ।

नाम—(१३३) भगवत रसिक वृंदावनवासी ।

ग्रंथ—(१) अनन्य निश्चयात्मक, (२) श्रीनित्यविहारी युगुलध्यान, (३) अनन्यरसिकाभरण, (४) निश्चयात्मक ग्रंथ उत्तरार्द्ध, (५) निर्बोध मनरंजन (खोज १६००) ।

रचनाकाल—१६२७ ।

विवरण—स्वामी हरिदास के शिष्य । काव्य साधारण श्रेणी का है ।

नाम—(१३३/२) गेहर गोपाल इन्होंने गोकुलनाथ की प्रशंसा में कविता की है ।

रचनाकाल—१६३० ।

नाम—(१३४) चतुरविहारी व्रजवासी ।

जन्म-संवत्—१६०५ ।

रचनाकाल—१६३० ।

विवरण—इनके पद रागसागरोद्भव में हैं । साधारण श्रेणी की कविता की है ।

नाम—(१३५) जैतराम ।

जन्म-संवत्—१६०१ ।

रचनाकाल—१६३० ।

ग्रंथ—टीका गीता की । सीखरासा ।

विवरण—ये अकबर शाह के दरबार में थे । साधारण श्रेणी ।

नाम—(१३६) नरसी महताजी जूनागढ़ ।

ग्रंथ—(१) स्फुट पद, (२) सामलदास का विवाह ।

रचनाकाल—१६३० ।

नाम—(१३७) नाथ व्रजवासी ।

जन्म-संवत्—१६०५ ।

रचनाकाल—१६३० ।

विवरण—निम्न श्रेणी ।

नाम—(१३८) सोनकुँवरि ।

ग्रंथ—सुवर्ण बेलि की कविता । (प्र० त्रै० रि०) ।

जन्म-संवत्—१६०१ ।

रचनाकाल—१६३० ।

विवरण—उपनाम सुवरनबेलि महाराजा जैपुर के वंश में राधा-
वल्लभी संप्रदाय ।

पंद्रहवाँ अध्याय

पूर्व तुलसी-काल

(१६३१–४५)

शेष कविगण

(१३६) अकबर शाह

आप जगत्प्रसिद्ध मुग़ल बादशाह थे । आपका जन्म संवत् १५९९ में अमरकंटक में हुआ था और संवत् १६१३ में आप सिंहासनारूढ़

हुए थे। आप बड़े विद्वान् न थे, परंतु विद्वानों का सत्संग रखते थे। आईनअकबरी-नामक प्रसिद्ध ग्रंथ आप ही के विचारों का संग्रह है। आपके दरबार में बहुत-से गुणी और मानी पुरुष एकत्र थे, जिनमें कई हिंदी-कवि भी थे। आपने संवत् १६६२ तक राज्य किया। आपके राजत्व-काल के आदि में बहुत गड़बड़ था, परंतु थोड़े वर्षों में आपने चतुरता एवं कौशल से उसे शांत कर दिया। आप हिंदी-कविता भी करते थे जो साधारण श्रेणी की होती थी। आपके आदि में विद्वान् न होने तथा राज्यारंभ के समय गड़बड़ में रहने से अनुमान होता है कि १६३१ के पूर्व आपने इतनी हिंदी न सीख पाई होगी कि उस भाषा में छंद-रचना करते। अतः आपका रचना-काल १६३१ से १६६२ तक समझ पड़ता है।

उदाहरण—

जाको जस है जगत मैं जगत सराहै आहि;
ताको जीवन सफल है कहत अकब्बर साहि।

साहि अकब्बर एक समै चले कान्ह बिनोद बिलोचन बालहिं;
आहट ते अबला निरख्यो चकि चौंकि चली करि आतुर चालहिं।
त्यों बलि बेनी सुधारि धरी सुभई छबि यों ललना अरु लालहिं;
चंपक चारु कमान चढ़ावत काम ज्यों हाथ लिए अहि बालहिं।
केलि करैं बिपरीत रमैं सु अकब्बर क्यों न इतो सुख पावै;
कामिनि की कटि किंकिन कान किधौं गनि पीतम के गुन गावै।
बिंदु प्रसेद को छूटो ललाट तें यों लट मैं लटको लगि आवै;
साहि मनोज मनो चित मैं छबि चंद लये चक डोरि खिलावै।

(१४०) भगवान हित

इन महाशय का बनाया हुआ कोई ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आया। ये श्रीहित-संप्रदाय के अनुयायी थे। इनके बनाए हुए दश भजन मुंशी नवलकिशोर सी०आई० ई० के प्रेस द्वारा मुद्रित सूरसागर

में मिले। उनसे जान पड़ता है कि ये महाशय अपना नाम जन भगवान और हित भगवान् करके लिखते थे और वल्लभाचार्य के पुत्र बिट्ठलनाथ को भी पूज्य मानते थे। इनके पदों से भक्ति टपकती है। इन्होंने नख-शिख भी अच्छे कहे हैं। भगवानदास-नामक एक महाशय का वर्णन हिंदी खोजवाली सन् १६०० की रिपोर्ट के ६२वें पृष्ठ पर भी है, परंतु वे संवत् १७५६ में हुए थे, अतः इनसे पृथक् थे। इनके पदों में अच्छी मधुरता पाई जाती है। इन्हें तोष कवि की श्रेणी में रक्खेंगे। इनका कविता-काल १६३१ के लगभग है।

उदाहरण—

जसुमति आँनदकंद नचावति ;
पुलकि-पुलकि हुलसाति देखि मुख अति सुख-पुंजहि पावति।
बाल जुवा बृद्धा किसोर मिलि चुटकी दै-दै गावति ;
नूपुर सुर मिश्रित धुनि उपजति सुर बिरंचि बिसमावति।
कुंचित ग्रंथित अलक मनोहर झपकि बदन पर आवति ;
जन भगवान मनहुँ घन बिधु मिलि चाँदनि मकर लजावति।

(१४१) रसिक

ये महाशय बिट्ठलनाथ के शिष्य थे। इनका कोई ग्रंथ देखने में नहीं आया, परंतु इनके बहुत-से स्फुट भजन हमारे पास हैं। इन्होंने पदों में श्रीकृष्ण-लीला का वर्णन किया है, और उसमें भी बाल-लीला एवं शृंगार-वर्णन का प्राधान्य रक्खा है। ये साधारण श्रेणी के कवि थे। इनका कविता-काल १६३१ संवत् के लगभग है। रसिकदास और रसिकराय-नामक दो और कवि ग्रंथकर्ता हुए हैं परंतु उनकी कविता इनकी से पृथक् है।

उदाहरण—

लटकत आवत कुंजभवन ते ;
ढरि-ढरि परत राधिका ऊपर जागर सिथिल गवन ते।

चौंकि परत कबहूँ मारग बिच चले सुगंध पवन-ते ;
भए उसास भरम राधा के सकुचत दुवौ श्रवन ते।
आलस बस न्यारे न होत हैं नेकहु प्यारी-तन ते ;
रसिक टरै जनि दसा स्याम की कबहूँ मेरे मन ते।

नाम—(१४२) अग्रदास गलता जयपूर।

ग्रंथ—(१) श्रीरामभजनमंजरी, (२) कुंडलिया, (३) हितोपदेश भाषा, (४) उपासना बावनी, (५) ध्यानमंजरी (६) पद।

कविताकाल—१६३२।

विवरण—ये महाशय नाभादास के गुरु थे। इनका प्रथम ग्रंथ हमने छत्रपूर में देखा है। ये तोष की श्रेणी में हैं। इनका समय नाभादास के विचार से रक्खा गया है। "राम चरित्र के पद"-नामक इनका एक और ग्रंथ मिला है।

उदाहरण—

कुंडल ललित कपोल जुगुल अस परम सुदेसा ;
तिनको निरखि प्रकाश लजत राकेस दिनेसा।
मेचक कुटिल बिसाल सरोरुह नैन सोहाए ;
मुख-पंकज के निकट मनो अलि-छौना आए।

(१४२/१) गदाधर भट्ट का ठीक समय सं० १६३२ सं० १६७६ के खोज में मिला है। पहले आपका नं० ४२७ तथा समय १७२२ ग़लती से माना गया था। आप चैतन्य महाप्रभुवाले गौड़-संप्रदाय के वैष्णव थे।* आपकी एक बानी (ग्रंथ) हमने छत्रपूर में देखी जिसकी रचना बड़ी सोहावनी है। हम इन्हें पद्माकर की श्रेणी में रखते हैं।

---

* त्रै० त्रै० खोज में इनका एक और ग्रंथ ध्यानलीला-नामक मिला है।

उदाहरण—

रक्त पीत सित असित लसत अंबुज बन सोभा ;
टोल-टोल मदलोल भ्रमत मधुकर मधु लोभा।
सारस अरु कलहंस कोक कोलाहलकारी ;
पुलिन पवित्र बिचित्र रचित सुंदर मनहारी।

नाम—(१४३) करनेस बंदीजन।

ग्रंथ—(१) करणाभरण, (२) श्रुतिभूषण, (३) भूपभूषण।

जन्मकाल—१६११।

कविताकाल—१६३७।

विवरण—ये अकबर शाह के दरबार में नरहरि के साथ जाते थे। इन्होंने खड़ी बोली में भी कविता की है। इनका काव्य साधारण श्रेणी का है।

उदाहरण—

खात हैं हराम दाम करत हराम काम,
धाम-धाम तिनहीं के अपजस छावैंगे ;
दोजख मैं जैहैं तब काटि-काटि कीड़े खैहैं,
खोपड़ी को गूद काक टोंटन उड़ावैंगे।
कहै करनेस अबै घूसि खात लाजैं नाहिं,
रोजा औ नेवाज अंत काम नाहिं आवैंगे ;
कबिन के मामिले में करैं जौन खामी तौन,
निमकहरामी मरे कफन न पावैंगे।

नाम—(१४४) श्रीहितरूपलाल गोस्वामी वृंदावन।

ग्रंथ—(१) बानी, (२) समयप्रबंध, (३) वृंदावन-रहस्य, (४) सर्वतत्त्व सारोद्धार, (५) गन-शिक्षाबत्तीसी, (६) सिद्धांत-सार, (७) वंशीयुक्त युगल ध्यान, (८) मानसिक सेवाप्रबंध।

विवरण—इसमें बानी, लीला, बधाई, वंसावली, उत्सव इत्यादि के वर्णन हैं। आकार रॉयल अठपेजी से बड़ा ३६६ पृष्ठों का है। यह हमें दरबार-पुस्तकालय छत्रपूर से देखने को मिली। गोस्वामी श्रीहितरूपलालजी ने 'समयप्रबंध'-नामक २४ पृष्ठों का एक १६९ पदों में भी ग्रंथ रचा। यह ग्रंथ छत्रपूर में है। इनका कविता-काल जाँच से संवत् १६४० जान पड़ता है तथा सांप्रदायिक इनका काल १७९० के लगभग होना कहते हैं। इनकी गणना साधारण श्रेणी में है।

ये महाशय राधावल्लभीय संप्रदाय के आचार्य तथा चाचा हित वृंदावनदास के गुरु थे।

उदाहरण—

दिन कैसे भरूँरी माई बिन देखे प्रानअधार;
ललित तृभंगी छैल छबीलो पीतम नंदकुमार।
सुनु री सखी कदम तर ठाढ़ो मुरली मंद बजावै;
गनि-गनि प्यारी गुनगन गावै चितवत चितहिं रिझावै।
जियरा धरत न धीरज सजनी कठिन लगन की पीर;
श्रीरूपलाल हित आगर नागर सागर सुख की सीर।
बैठे बिबि गरबहियाँ जोर;
रतनजटित सिंहासन आसन दंपति नित्य किसोर।
अगमगात भूषण तन दीपति प्रेमी चंद-चकोर;
श्रीहितरूप सिँगार उदधि की छिन छिन उठति झकोर।

(१४५) बलभद्र मिश्र

ये महाराज सनाढ्य ब्राह्मण ओड़छा-निवासी पंडित काशिनाथ के पुत्र और केशवदास के बड़े भाई थे। केशवदास ने अपनी कविप्रिया में इनका नाम लिखा है। केशवदास के वर्णन में हमने उनका जन्म-

काल संवत् १६०८ के इधर-उधर माना है, सो बलभद्रजी का जन्मकाल संवत् १६०० के लगभग मानना चाहिए। इनका केवल एक ग्रंथ नख-शिख हमने देखा है, और खोज में इनके भागवत भाष्य-नामक द्वितीय ग्रंथ का नाम लिखा है। नख शिख में ६५ घनाक्षरी छंद और एक छप्पय हैं। इसमें सन्-संवत् का कोई ब्यौरा नहीं दिया गया है। यह एक बड़ा ही प्रौढ़ ग्रंथ है। अतः अनुमान से यह कवि की कुछ बड़ी अवस्था में, संवत् १६४० या १६५० के लग-भग, बना होगा। इसके देखने से जान पड़ता है कि बलभद्रजी एक बड़े ही सुकवि थे। इसमें कवि आचार्यों की भाँति चला है और इसके छंद बड़े गंभीर तथा उत्तम हैं। इसकी भाषा परिपक्क शुद्ध व्रजभाषा है। इसमें उपमाएँ बहुत अच्छी दी गई हैं। नृप शंभु के अतिरिक्त बलभद्र का नख-शिख भाषा-साहित्य के समस्त नख-शिखों से बढ़कर है। इस एक ही छोटे-से ग्रंथ के रचयिता होने के कारण बलभद्र की गणना दास कवि की श्रेणी में होनी चाहिए। गोपाल कवि ने संवत् १८९१ में इस ग्रंथ की टीका रची। उसमें उन्होंने लिखा है कि बलभद्र कवि ने बलभद्री व्याकरण, हनुमन्नाटक टीका, गोवर्द्धनसतसई टीका आदि कई ग्रंथ रचे। द्वि० त्रै० खोज में दूषण-विचार (१७१४)-नामक एक और ग्रंथ मिला है जो संभवतः इन्हीं का रचा ज्ञात होता है। इनका केवल एक छंद हम नीचे लिखते हैं—

पाटल नयन कोकनद के-से दल दोऊ,
बलभद्र बासर उनीदी लखी बाल मैं;
सोभा के सरोवर में बाड़व की आभा किधौं,
देवधुनि भारती मिली है पुन्य काल मैं।
काम के बरज कैधौं नासिका उडुप बैठ्यो,
खेलत सिकार तरुनी के मुख-ताल मैं;

लोचन सितासित मैं लोहित लकीर मानो,
बाँधे जुग मीन लाल रेसम के जाल मैं।

नाम—(१४६) होलराय ब्रह्मभट्ट होलपुर ज़िला रायबरेली।
समय—१६४० ।
विवरण—यह अकबर शाह के समय में हरिवंशराय के यहाँ थे। इन्होंने अकबर शाह से कुछ ज़मीन पाई, जिसमें होलपुर बसाया। तुलसीदास से इनकी मुलाक़ात हुई थी।

यथा—

होल—लोटा तुलसीदास को लाख टका को मोल;
तुलसी—मोल-तोल कुछ है नहीं लेहु राय कवि होल।

कहते हैं कि यह लोटा होलपुर में अब तक पूजा जाता है। कविता इनकी साधारण श्रेणी की है।

दिल्ली तें न तख़्त ह्वै है बख़्त ना मुग़ल कैसो,
ह्वै है ना नगर बढ़ि आगरा नगर तें;
गंग तें न गुनी तानसेन तें न तानबाज़,
मान तें न राजा औ न दाता बीरबर तें।
खान ख़ानख़ाना तें न नर नरहरि तें न,
ह्वै है ना दिवान कोऊ बेडर टडर तें;
नओ खंड सात दीप सातहू समुद्र पार,
ह्वै है ना जलालुदीन शाह अकबर तें।

(१४७) (रहीम) अब्दुलरहीम ख़ानख़ाना

रहीम का जन्म संवत् १६१० में हुआ था। ये महाशय अकबर बादशाह के पालक बैरमख़ाँ के पुत्र थे। अकबर शाह के दरबारी नौरतन में ये भी थे और इनको अकबर बहुत मानता था। ये महाशय अकबर के समस्त दल के सेनापति एवं मंत्री थे और

इस पद पर जहाँगीर शाह के समय तक रहे। कहा जाता है कि इन्होंने अपनी ज़िंदगी-भर कभी किसी पर क्रोध नहीं किया। उमर-भर इन्होंने परोपकार ही के काम किए। एक बार अकबर और महाराजा प्रतापसिंह की सेनाओं से घोर युद्ध हो रहा था। उस समय इनकी स्त्री को रानाजी के सैनिकों ने किसी प्रकार क़ैद कर लिया। जब यह हाल रानाजी को विदित हुआ तब उन्होंने बड़े सम्मान-पूर्वक उनको ख़ानख़ाना के पास भेज दिया। कुछ समय के उपरांत रानाजी का राज्य अकबर ने छीन लिया और २४ वर्ष तक रानाजी पहाड़ों और जंगलों में घूमते फिरे। अंत में किसी प्रकार उन्होंने अकबर की सेना को जीतकर अपना देश फिर छीन लिया। जब अकबर को यह समाचार मिला तो उसने एक बृहत् सेना भेजने का फिर विचार किया। यदि यह चढ़ाई होती तो प्रतापसिंह को पहले की भाँति राज्य त्यागकर फिर भागना पड़ता। इस अवसर पर ख़ानख़ाना ने पुराना एहसान मानकर अकबर को समझा-बुझाकर हार की निंदा सहकर भी सेना न भेजने पर राज़ी किया। इन्होंने यावज्जीवन सुपात्रों को बड़े-बड़े दान दिए। ये महाशय कवि और गुणियों के कल्पतरु थे। कहा जाता है कि गंग कवि को एक ही छंद के बनाने पर ३६ लाख रुपए का इन्होंने दान दिया था। इनको श्रीकृष्ण भगवान् का इष्ट था। एक समय कारण-वश ये जहाँगीर बादशाह के द्रोही होकर बंदी हो गए और छुटने के पीछे भी कुछ काल तक अपमानित रहे। ऐसी अवस्था में भी अर्थी लोग इनको घेरते थे और अपने में दान-शक्ति न होने के कारण इनको क्लेश होता था, यहाँ तक कि इन्होंने सोचा कि इस प्रकार दान देने के अयोग्य रहकर जीना वृथा है। निम्न-लिखित दोहे इस बात के साक्षीस्वरूप हैं।

वे रहीम नर धन्य हैं पर उपकारी अंग ;

बाँटनवारे को लगै ज्यों मेंहँदी को रंग।
तबहीं लौ जीबो भलो दीबो होय न धीम ;
जग में रहिबो कुचित गति उचित न होय रहीम।
ए रहीम दर-दर फिरैं माँगि मधुकरी खाहिं ;
यारो यारी छाँड़िए वे रहीम अब नाहिं।

कहते हैं कि फिर भी एक याचक के कारण विवश होकर रहीम ने रीवाँ-नरेश से १ लक्ष मुद्रा माँगकर उसे दिलवाए। इस अवसर पर इन्होंने यह दोहा बनाकर रीवाँ-नरेश को सुनाया था—

चित्रकूट में रमि रहे रहिमन अवध-नरेश ;
जा पर बिपदा परति है सो आवत यहि देश।

इनका शरीरपात संवत् १६८४ में हुआ।

ये महाशय अरबी, फ़ारसी, हिंदी और संस्कृत के पूर्ण विद्वान् थे और इनकी गुणज्ञता के कारण कवि, पंडित आदि सदैव इनकी सभा में प्रस्तुत रहते थे। गंग पर इनकी विशेष कृपा रहती थी और वे भी इनकी सभा के भूषण थे। पंडित नकछेदी तिवारी ने लिखा है कि इन्होंने रहीम-सतसई, बरवै नायिका-भेद, रासपंचाध्यायी, मदनाष्टक, दीवान फ़ारसी और वाक़यात बाबरी का फ़ारसी-अनुवाद, ये छः ग्रंथ बनाए। इनमें से द्वितीय मुद्रित और प्रथम के हस्त-लिखित दो सौ बारह दोहे हमारे पुस्तकालय में वर्तमान हैं। शेष ग्रंथ हमने नहीं देखे। शिवसिंहसरोज में इनका शृंगार-सोरठा-नामक एक और ग्रंथ लिखा है और मदनाष्टक के इनके ये छंद लिखे हैं जिनकी भाषा खड़ी बोली है—

कलित ललित माला, वा जवाहिर जड़ा था ;
चपल चखनवाला, चाँदनी में खड़ा था।
कटि-तट बिच मेला, पीत सेला नवेला ;
अलिबन अलबेला, यार मेरा अकेला।

'माधुरी' में एक लेख लिखकर याज्ञिकत्रय ने इनके संबंध में बहुत-सी नई जानने-योग्य बातों को प्रकट किया है। उनके पास उनके बहुत-से छंद भी संगृहीत हैं तथैव इनके नगर-शोभा वर्णन नामक एक नए ग्रंथ का भी पता चला है।

"बरवै नायिका-भेद" में ६४ छंद हैं। इसमें कवि ने लक्षण न देकर उदाहरण-मात्र दिए हैं। यह ग्रंथ पूर्वी भाषा में है, और इसकी कविता परम प्रशंसनीय है। रहीम की कविता में सचमुच अलौकिक आनंद आता है। इस ग्रंथ में प्रायः सभी बरवै मनोहर हैं, परंतु उदाहरणार्थ केवल तीन यहाँ पर लिखते हैं।

खीन मलिन विष भैया औगुन तीन ;
पिय कह चंद-बदनियाँ अति मतिहीन।
ढीलि आँखि जल अँचवनि तरुनि सुगानि ;
धरि खसकाय घइलना मुरि मुसकानि।
बालम अस मनु मिलयउँ जस पय पानि ;
हंसिनि भई सवतिया लइ बिलगानि।

रहीम की काव्य-प्रौढ़ता उनकी 'सतसई' पर विशेषतया अवलंबित है। इस ग्रंथ में किसी नियम पर न चलकर रहीम ने स्वच्छंदता-पूर्वक अपने प्रिय विषयों पर रचना की है ; सुतरां यह ग्रंथ बड़ा ही उत्तम और रोचक बना है। हमारे पास के केवल २१२ दोहों में ही रहीम के विचार एवं उनकी आत्मीयता कूट-कूटकर भरी है। इनका प्रत्येक दोहा एक अपूर्व आनंद देता है। ये महाशय वास्तव में महापुरुष थे और इनका महत्त्व इनके छंदों से भली भाँति प्रकट होता है। इनके विचारों का कुछ उल्लेख नीचे किया जाता है—

इनको मान सबसे अधिक प्रिय था—

रहिमन मोहिं न सोहाय, अमी पियावै मान बिन ;

बरु बिख देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो ।

रहिमन रहिला की भली, जो परसै चितु लाय ;
परसत मन मैला करै, सो मैदा जरि जाय

इनको बड़ों की ख़ुशामद इतनी अप्रिय थी कि ये उनकी अयोग्य प्रशंसा को सहन नहीं कर सकते थे—

थोरो किए बड़ेन की बड़ी बड़ाई होय ;
ज्यों रहीम हनुमंत को गिरिधर कहै न कोय ।

इनके विचारों की ऊँचाई और गंभीरता निम्न दोहों से विदित होती है—

कोउ रहीम जनि काहु के द्वार गए पछिताय ;
संपति के सब जात हैं बिपति सबै लै जाय ।

संप्रति संपतिवान को सब कोऊ वसु देत ;
दीनबंधु बिन दीन की को रहीम सुधि लेत ।

काम न काहू आवई मोल रहीम न लेइ ;
बाजू टूटे बाज को, साहेब चारा देइ ।

भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप ;
रहिमन गिरि तें भूमि लौं, लखौ तो एकै रूप ।

दान लेना भी रहीम निंद्य समझते थे—

रहिमन माँगत बड़ेन की लघुता होत अनूप ;
बलि-मख माँगन हरि गए धरि बावन को रूप ।

इन्होंने बहुत स्थानों पर ऐसे यथार्थ चोज निकालकर रख दिए हैं, जिनकी यथार्थता में भी एक निराला ही आनंद आता है—

खैर खून खाँसी खुसी बैर प्रीति मधुपान ;
रहिमन दाबे ना दबैं जानत सकल जहान ।

रहिमन बहरी बाज़ गगन चढ़ै फिरि क्यों तिरै ;
पेट अधम के काज फेरि आइ बंधन परै ।

इनका पूर्वोक्त गुण इनकी पैनी दृष्टि का एक उदाहरण है। इसी प्रकार इनकी दृष्टि सभी स्थानों पर रहती है; इन्होंने यों ही बहुत स्थानों पर सच्ची-सच्ची बातें सीधी रीति पर कह दी हैं, जो उसी प्रकार भली मालूम पड़ती हैं—

सबको सब कोऊ करै कै सलाम कै राम;
हित रहीम तब जानिए जब कछु अटकै काम।
धन दारा अरु सुतन सों लगो रहै नित चित्त;
नहिं रहीम कोऊ लख्यो गाढ़े दिन को मित्त।
काज परे कछु और है काज सरे कछु और;
रहिमन भवँरी के भए नदी सेरावत मौर।
रहिमन चाक कुम्हार को माँगे दिया न देइ;
छेद मैं डंडा डारिकै चहै नाँद लइ लेइ।

इस कवि का तजरुबा बहुत ही बढ़ा हुआ था और अपने अनुभव के फल-स्वरूप इसने यह दोहा कहा—

अब रहीम मुसकिल परी गाढ़े दोऊ काम;
साँचे से तौ जग नहीं झूठे मिलैं न राम।

इन्होंने इतनी यथार्थ बातें कही हैं कि इनके बहुतेरे कथन कहावतों के स्वरूप में परिणत हो गए हैं—

जे गरीब को आदरैं ते रहीम बड़ लोग;
कहा सुदामा बापुरो कृष्ण-मिताई-जोग।
जो रहीम करिबे हुतो ब्रज को यहै हवाल;
तौ काहे कर पर धर्‍यो गोबरधन गोपाल।
मुकता कर करपूर कर चातक तृष हर सोय;
एतो बड़ो रहीम जल कुथल परे विष होय।

ये महाशय मुसलमान होने पर भी कृष्ण और राम के पूरे भक्त थे। इनको ईश्वर पर पूर्ण विश्वास था।

तैं रहीम मन आपनो कीनो चारु चकोर ;
निसि बासर लाग्यो रहै कृष्णचंद्र की ओर।
रहिमन को कोउ का करै ज्वारी चोर लबार ;
जो पति राखनहार है माखन चाखनहार।
माँगे मुकुरि न को गयो केहि न त्यागियो साथ ;
माँगत आगे सुख लह्यो तें रहीम रघुनाथ।

इन्होंने नीति के भी बहुत ही उत्तम चुनिंदे दोहे लिखे हैं और संसार ने उन्हें इतना पसंद किया कि प्रायः वे सभी किंवदंतियों के रूप में कहे जाते हैं—

फरजी साह न ह्वै सकै गति टेढ़ी तासीर ;
रहिमन सूधी चालु तें प्यादो होत वजीर।
छिमा बड़ेन को चाहिए छोटेन को उतपात ;
का रहीम हरि को घट्यो जो भृगु मारी लात।
रहिमन बिगरी आदि की बनै न खरचे दाम ;
हरि बाढ़े आकाश लौं छुटो न बावन नाम।

विपत्ति के विषय में इनका यह मत था—

रहिमन बिपदा हू भली जो थोरे दिन होय ;
हित अनहित या जगत में जानि परत सब कोय।

सत्संग और कुसंग पर भी इन्होंने बहुत ज़ोर दिया है—

कदली सीप भुजंग मुख स्वाँति एक गुन तीन ;
जैसी संगति बैठिए तैसोई फल दीन।
रहिमन नीच प्रसंग सों लगत कलंक न काहि ;
दूध कलारी कर गहे मदहि कहैं सब ताहि।

नीति आदि पर विशेष ध्यान रखने पर भी इन्होंने काव्यांगों को हाथ से जाने नहीं दिया है। इनकी रचना में यत्र-तत्र चित्र-काव्य भी मिलता है, परंतु उसमें भी इन्होंने उपदेश नहीं छोड़े हैं—

जो रहिमन गति दीप की कुल कपूत की सोय ;
बारे उजियारो करै बढ़े अँधेरो होय।
गुन ते लेत रहीम कहि सलिल कूप ते काढ़ि ;
काहू को मन होयगो कहा कूप ते बाढ़ि।
कमला थिर न रहीम,कहि यह जानत सब कोय ;
पुरुष-पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय।

इन्होंने उपमाएँ, दृष्टांत, उत्प्रेक्षा आदि भी बहुत बढ़िया खोज-खोजकर कही हैं—

नैन सलोने, अधर मधु कहि रहीम घटि कौन ;
मीठो भावै लोन पर मीठे हू पर लौन।
बड़े पेट के भरन को है रहीम दुख बाढ़ि ;
याते हाथी हहरि कै रह्यो दाँत द्वै काढ़ि।
हरि रहीम ऐसी करी ज्यों कमान सर पूर ;
खैंचि आपनी ओर को डारि दियो पुनि दूर।

इस महानुभाव के काव्य की सभी लोगों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है और वास्तव में वह सब प्रकार से प्रशंसनीय है। इन्होंने शुद्ध व्रजभाषा में कविता की है और फ़ारसी एवं संस्कृत के पूर्ण विद्वान् होने पर भी ग्राम्य-भाषा तक का उत्तम प्रयोग करने में ये कृतकार्य हुए हैं। इन्होंने शब्दों के बाह्याडंबर का तिरस्कार करके केवल भाव को प्रधान रक्खा है और फिर भी इनकी कविता व भाषा दोनों मनोमोहिनी हैं। इनकी रचना बिलकुल सच्ची है और उसमें हर स्थान पर इनकी आत्मीयता झलकती है। उत्तम छंदों के उदाहरण में इनका पूरा ग्रंथ ही रक्खा जा सकता है। हम इनको सेनापति की श्रेणी में समझते हैं।

(१४८) लालचंद

संवत् १६४३ में लालचंद ने इतिहास-भाषा-नामक एक ग्रंथ

रचा। इसका नाम खोज में लिखा है, पर इसके अतिरिक्त इनके विषय में कुछ ज्ञात नहीं पड़ा।

नाम—(१४९) लालदास (वल्द ऊधौदास) बनिया, आगरा।

ग्रंथ—(१) महाभारत इतिहाससार (१६४३) [खोज १९०२], (२) बलि-बावन की कथा (प्र० त्रै० रि०)।

समय—१६४३।

विवरण—महाभारत की कथा का सार।

(१५०) अनंतदास साधु

महाराज अनंतदासजी ने संवत् १६४५ के लगभग कविता की। इन्होंने नामदेव आदि की परची-संग्रह, पीपाजी की परची, रायदासजी री परची, रंका बंका की परची, कबीरजी की परची, सिवारी बाई की परची, समनसेउजी री परची और त्रिलोचनदासजी की परची-नामक आठ ग्रंथ बनाए, जिनमें भक्तों के वर्णन किए। इनमें से प्रथम और द्वितीय ग्रंथ १६४५ और १६५७ में बने थे। इनकी रचना साधारण श्रेणी की है।

उदाहरण—

अंतरजामी बरनउँ तोही; साधू संग सदा दे मोही।
माँगों भक्ति जु ब्रह्म गियाना; जो-जो चितऊँ सो परमाना।
संवत सोला सै पैताला; बाणी बोला बचन रसाला।
अंतरजामी आज्ञा दीन्ही; दास अनंत कथा करि कीन्ही।

(१५१) रसखान

इनको बहुत लोग सैयद इब्राहीम पिहानीवाले समझते हैं, परंतु वास्तव में ये महाशय दिल्ली के पठान थे, जैसा कि २५२ वैष्णवों की वार्ता में लिखा है। इन्होंने 'प्रेमवाटिका' ग्रंथ संवत् १६७१ में बनाया था। इसमें थोड़े ही दोहे हैं, परंतु ग्रंथ परमोत्तम

है। रसखान ने अपना समय अनुचित व्यवहारों में भी व्यय किया था, अतः इनकी कविता का आदि-काल भी २५ वर्ष की अवस्था के प्रथम होना अनुमान-सिद्ध नहीं है। विट्ठलेशजी का मरणकाल १६४३ है, सो इनका १६४० के लगभग उनका शिष्य होना जान पड़ता है। अतः इनका जन्म-काल हम १६१५ वि० के लगभग समझते हैं और इनकी अवस्था ७० वर्ष की मानने से इनका मरण-काल संवत् १६८५ मानना पड़ेगा। इन्होंने लिखा है कि ये महाशय बादशाह-वंश के पठान थे। २५२ वैष्णवों की वार्ता में लिखा है कि रसखानजी पहले एक बनिए के लड़के पर बहुत आसक्त थे। ये सदा उसी के पीछे-पीछे फिरा करते और उसका जूठा खाया करते थे। इनकी हँसी भी हुआ करती थी, परंतु ये कुछ न मानते थे। एक बार चार वैष्णवों ने आपस में बातचीत करते-करते कहा कि ईश्वर में ऐसा ध्यान लगावे जैसा कि रसखान ने साहूकार के लड़के में लगाया। इस पर रसखान के यह वार्ता पूछने पर उन वैष्णवों ने इसे फिर कह दिया। तब रसखान ने कहा कि परमेश्वर का रूप देखें तो विश्वास आवे। इस पर उन वैष्णवों ने श्रीनाथजी का चित्र इन्हें दिखाया। चित्र को देखते ही इनका चित्त लड़के से उचटकर विष्णुभगवान् में लग गया और ये वेष बदलकर श्रीनाथजी के मंदिर में जाने लगे, परंतु पौरिया ने न जाने दिया। तब ये तीन दिन तक गोविंदकुंड पर विना कुछ खाए-पिए पड़े रहे। इस पर गोस्वामी बिट्ठलनाथजी को दया आई और उन्होंने रसखान के शुद्ध होने में ईश्वरादेश समझ मुसलमान होने पर भी इन्हें शिष्य कर लिया। उस समय से इनकी पदवी इतनी बढ़ी कि इनकी गणना गोसाईंजी के २२५ मुख्य शिष्यों में होने लगी और इनको श्रेष्ठ वैष्णव समझकर गोस्वामीजी के पुत्र गोकुलनाथजी ने २५२ वैष्णवों की वार्ता में २१८वें नंबर पर इनका चरित्र लिखा।

इस बात से वैष्णवों का धर्म-संबंधी औदार्य प्रकट होता है। वार्ता में यह भी लिखा है कि रसखान ने अनेक कीर्तन और कवित्त-दोहे बनाए। इनके भजन हमारे देखने में नहीं आए। भारतेंदुजी ने भी उत्तर भक्तमाल में इनका यश गान किया है। पं० राधाचरण गोस्वामी ने भी 'नव भक्तमाल' में इनकी प्रशंसा इस प्रकार की है—

दिल्ली नगर निवास बादसा बंस बिभाकर;
चित्र देखि मन हरो भरो पन प्रेम सुधाकर।
श्रीगोबर्द्धन आय जबै दरशन नहिं पाए;
टेढ़े-बेढ़े बचन रचन निर्भय ह्वै गाए।
तब आप आय सु मनाय कर सुश्रूषा महमान की;
कबि कौन मिताई कहि सकै (श्री) नाथ साथ रसखान की।

इनके 'प्रेमवाटिका' और 'सुजान रसखान'-नामक दो ग्रंथों को गोस्वामी किशोरीलालजी ने प्रकाशित किया है, जो हमारे पास वर्तमान हैं। प्रथम में केवल ५२ दोहे एवं सोरठे हैं, जिनमें शुद्ध प्रेम का बड़ा ही उत्तम रूप दिखाया गया है। उसमें आपने अपने वंश के विषय में भी कुछ लिखा है।

बिधु सागर रस इंदु सुभ बरस सरस रस खानि;
प्रेम-वाटिका रचि रुचिर चिर हिय हरष बखानि।
अति पतरो अति दूर प्रेम कठिन सब ते सदा;
नित इकरस भरपूर जग में सब जान्यो परै।
दंपति सुख अरु विषय रस पूजा निष्ठा ध्यान;
इनते परे बखानिए शुद्ध प्रेम रसखान।
मित्र कलत्र सुबंधु सुत इनमें सहज सनेह;
शुद्ध प्रेम इनमें नहीं अकथ कथा सविसेह।
इकअंगी बिनु कारनहि इकरस सदा समान;

गनै प्रियहि सरबस्व जो सोई प्रेम प्रमान।
डरै सदा चाहै न कछु सहै सबै जो होय;
रहै एकरस चाहिकै प्रेम बखानौ सोय।
देखि गदर, हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान;
छिनहिं बादसा-बंस की ठसक छोड़ि रसखान।
प्रेम-निकेतन श्रीबनहि आय गोबरधन धाम;
लह्यो सरन चित चाहिकै जुगल सरूप ललाम।

सुजानरसखान में १२९ छंद हैं, जिनमें से प्रायः १० दोहे-सोरठादि, और शेष सवैया एवं घनाक्षरी हैं। इन्होंने प्रेम का बड़ा मनोहर चित्र खींचा है, जिससे इनकी पूर्ण भक्ति भी प्रकट होती है। इनकी भक्ति उसी प्रकार की थी जैसी कि सूरदासजी की। इसीलिये अतुल भक्ति रखते हुए भी इन्होंने श्रीकृष्ण-संबंधी शृंगार-रस को भी ख़ूब लिखा है। इनकी कविता में उत्तम छंद बहुत-से हैं और वह हर स्थान पर कृष्णानंद से भरी है। छंदों में अपना नाम लिखने में ये महाशय कभी-कभी दो अक्षर अधिक लिख जाते थे। इन्होंने शुद्ध व्रजभाषा में कविता की और अपने शब्दों में मिलित वर्ण बहुत कम आने दिए। अनुप्रास का इन्होंने बहुतायत से प्रयोग नहीं किया। कहीं-कहीं केवल स्वल्प रीति से कर दिया। पूरे भक्त होने पर भी ये शृंगार-रस की भी उत्कृष्ट कविता कर सकते थे। कविजन इनकी कविता को बहुत पसंद करते हैं और हम भी उनकी इस अनुमति से सहमत हैं। हम इनकी गणना दासजी की श्रेणी में करते हैं।

उदाहरण—

मानुस हौं तौ वही रसखानि बसौं व्रज गोकुल गाँव के ग्वारन;
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो चरौं नित नंद कि धेनु मँझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो भयो व्रज-छत्र पुरंदर कारन;

जो खग हौं तौ बसेरो करौं उन कालिँदी-कूल कदंब कि डारन ।
या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहू पुर को तजि डारौं ;
आठहू सिद्धि नवो निधि को सुख नंद की गाय चराय बिसारौं ।
कोटिन ए कलधौत के धाम करीर के कुंजन ऊपर वारौं ;
रसखानि सदा इन नैनन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं ।
अँखियाँ अँखियाँ सों सकाय मिलाय हिलाय रिझाय हियो भरिबो ;
बतियाँ चित चोरन चेटक-सी रस चारु चरित्रन ऊचरिबो ।
रसखानि के प्रान सुधा भरिबो अधरान पै त्यों अधरा धरिबो ;
इतने सब मैन के मोहन जंत्र पै मंत्र बसीकर सी करिबो ।

इस समय के अन्य कविगण

नाम—(१५२) कल्यानदास ब्रजवासी ।
कविताकाल—१६३२ ।
विवरण—इनके पद रागसागरोद्भव में हैं । साधारण श्रेणी ।

नाम—(१५३) केवलराम ब्रजवासी ।
कविताकाल—१६३२ ।
विवरण—साधारण श्रेणी ।

नाम—(१५४) गदाधरदास वैष्णव वृंदावन ।
ग्रंथ—बानी ।
कविताकाल—१६३२ ।
विवरण—कृष्णदास के शिष्य थे ।

नाम—(१५५) जगामग ।
कविताकाल—१६३२ ।
विवरण—ये अकबर शाह के दरबार में थे ।

नाम—(१५६) देवा उदैपुर राजपूताना ।
कविताकाल—१६३२ ।
विवरण—साधारण श्रेणी ।

नाम—(१५७) पद्मनाभ व्रजवासी ।

कविताकाल—१६३२ ।

विवरण—साधारण श्रेणी । कृष्णदास गलतावाले के शिष्य थे।

नाम—(१५८) जीवन ।

जन्मकाल—१६०८ ।

कविताकाल—१६३३ ।

विवरण—निम्न श्रेणी ।

नाम—(१५९) केहरी ।

जन्मकाल—१६१० ।

कविताकाल—१६३५ ।

विवरण—बुरहानपुरवाले रत्नसिंह के यहाँ थे ।

नाम—(१६०) गंग उपनाम गंग ग्वाल ।

कविताकाल—१६३५ लगभग ।

विवरण—इनका नाम ध्रुवदास की भक्त-नामावली एवं भक्तमाल में है ।

नाम—(१६०/१) मुनिलाल ।

ग्रंथ—रामप्रकाश ।

समय—१६३७ ।

विवरण—साधारण श्रेणी । इनका समय पहले अज्ञात होने से नंबर १६३६ था (प्र० त्रै० रि०) ।

नाम—(१६१) चंदसखी व्रजवासी ।

कविताकाल—१६३८ ।

विवरण—इनके पद रागसागरोद्भव में हैं । राधावल्लभीय संप्रदाय के अनुयायी थे । साधारण श्रेणी ।

नाम—(१६२) तख़्तमल्ल ।

ग्रंथ—श्रीकरकुंड की चौपाई ।

कविताकाल—१६३६ ।

नाम—(१६३) गणेशजी मिश्र ।

जन्मकाल—१६१५ ।

ग्रंथ—विक्रमविलास ।

कविताकाल—१६४० ।

नाम—(१६४) गोविंददास ।

जन्मकाल—१६१५ ।

कविताकाल—१६४० ।

ग्रंथ—एकत्र पद ।

विवरण—इनकी रचना रागसागरोद्भव में है । निम्न श्रेणी ।

नाम—(१६५) जलालुद्दीन ।

जन्मकाल—१६१५ ।

कविताकाल—१६४० ।

विवरण—इनके कवित्त हज़ारा में हैं । साधारण श्रेणी ।

नाम—(१६६) नरवाहनजी भौगाँव-निवासी ।

इनका ठीक नं० (६६/१) है ।

जन्मकाल—१६१७ ।

कविताकाल—१६४० ।

विवरण— तोष श्रेणी । ये महाशय गोस्वामी हितहरिवंश के शिष्य थे ।

नाम—(१६८) नारायणदास पंडित ।

ग्रंथ—हितोपदेश भाषा । खोज (१६०४)

जन्म-काल— १६१५ ।

कविताकाल—१६४० ।

विवरण—साधारण श्रेणी ।

नाम—(१६८) नंदलाल ।

जन्म-काल—१६११ ।
कविताकाल—१६४० ।
विवरण—साधारण श्रेणी ।

नाम—(१६९) मानिकचंद ।
जन्म-काल—१६०८ ।
कविताकाल—१६४० ।
विवरण—साधारण श्रेणी । भक्त । भजन कर्ता कवि ।

नाम—(१७०) अमृतराय ।
ग्रंथ—महाभारत भाषा ।
कविताकाल—१६४१ ।
विवरण—ये अकबर शाह के यहाँ थे । साधारण श्रेणी । संवत् १९१९ के लगभग एक और अमृतराय हुए हैं (२१०६/१) । संभव है कि दोनों एक ही हों ।

नाम—(१७१) चेतनचंद्र ।
ग्रंथ—अश्वविनोद शालिहोत्र ।
जन्म-काल—१६१६ ।
कविताकाल—१६४१ ।
विवरण—राजा कुशलसिंह सेंगर की आज्ञा से ग्रंथ बनाया । खोज में इनका संवत् १८१० निकलता है [द्वि० त्रै० रि०]।

नाम—(१७२) हरिशंकर द्विज ।
ग्रंथ—श्रीगणेशजी की कथा चारि युग की [प्र० त्रै० रि०] ।
कविताकाल—१६४१ ।
विवरण—राजा बरजोरसिंह इनके आश्रयदाता थे ।

नाम—(१७३) उदैसिंह महाराजा माड़वार ।
ग्रंथ—ख्यात ।
कविताकाल—१६४२ ।

विवरण—यह इतिहास-ग्रंथ किसी कवि ने इनके नाम बनाया।

नाम—(१७४) मुन्नीलाल।

ग्रंथ—रामप्रकाश।

कविताकाल—१६४२।

नाम—(१७४/१) पांडे जिनदास।

ग्रंथ—(१) जंबूचरित्र, (२) ज्ञान सूर्योदय, (३) स्फुट कवित्त।

रचनाकाल—१६४२।

नाम—(१७४/२) कल्याण देव जैन।

ग्रंथ—देवराज बच्छराज चउपई।

रचनाकाल—१६४३।

विवरण—श्वेतांबर साधु जिन चंद्र सूरि के शिष्य थे।

उदाहरण—

जिणवर चरण कमल नमी सुह गुरु हीय धरेसि;
समस्या सवि सुख संपजइ भाजइ सयल कलेसि।
बुद्धइ धण सुख पाइए बुद्धइ लहिए राज;
बुद्धइ अति गरु अउ पणउ बुद्धि सरइ सवि काज।
बिद्याधर कुल ऊपनी सुर बेगा अभिधान;
राजा नी अति मानिता बनिता माँहि प्रधान।
संवत् सोल त्रयाला बरसिइ; एह प्रबंध कियउ मन हरसिहि।
विक्रम नयरइ रिषभ जिणेसा; जसु समरण सवि टलइ कलेसा।

सोलहवाँ अध्याय

माध्यमिक तुलसी-काल (१६४६-७०)

शेष कविगण

नाम—(१७५) दुरसा (जी) चारण आठा मारवाड़।

ग्रंथ—प्रताप-चौहत्तरी ।

कविताकाल—१६५० । मरण १६६६ ।

विवरण—महाराना प्रताप का यश और अकबर की निंदा । श्लोक सं० ८० के बराबर ।

नाम—(१७६) नागरीदास वृंदावन । विहारिनिदास के शिष्य थे ।

ग्रंथ—(१) समयप्रबंधसंग्रह । अष्टक, बानी, दोहा, पद ।

कविताकाल—१६५० ।

विवरण—इन्होंने हितहरिवंश, हितध्रुव, व्यास, कृष्णदास, गोपीनाथ हित, रूपलाल हित तथा नरवाहन इत्यादि महात्माओं के और अपने भी पदों का संग्रह ६० पृष्ठों में किया । यह ग्रंथ हमने दरबार छत्रपूर में देखा । काव्य इसका साधारण श्रेणी का है ।

...७) प्रवीणराय वेश्या महाराज इंद्रजीतसिंह ओरछा-वाले के पास थी । इसी के वास्ते केशवदास ने कविप्रिया बनाई । यह वेश्या होकर भी अपने को पतिव्रता समझती थी । एक बार अकबर शाह ने इसे अपने यहाँ बुलाया, पर इंद्रजीत-सिंह को छोड़कर इसने वहाँ रहना पसंद न किया । यह कविता भी साधारण श्रेणी की अच्छी बनाती थी । इसका समय १६५० के लगभग है ।

उदाहरण—

आई हौं बूझन मंत्र तुम्हैं निज स्वासन सों सिगरी मति गोई ;
देह तजों कि तजों कुल कानि हिए न लजौं लजिहै सब कोई ।
स्वारथ औ परमारथ को गथ चित्त विचारि कहौ तुम सोई ;
जामैं रहै प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भंग न होई ।

यह छंद इसने उसी समय इंद्रजीतसिंह को सुनाया जब अकबर ने इसे बुलाया था ।

(१७८) लालनदास

ये महाशय डलमऊ में संवत् १६५२ के लगभग थे । इन्होंने शांत-रस तथा स्फुट विषयों के छंद बनाए । इनकी कविता सानुप्रास और विशद होती थी । हम इन्हें तोष कवि की श्रेणी में रक्खेंगे ।

उदाहरण—

दालव ऋषि की दलमऊ सुरसरि तीर निवास ;
तहाँ दास लालन बसे करि अकास की आस ।
दीप कैसी जाकी जोति जगरमगर होति ,
गुलाबास बादर में दामिनी अलूदा है ;
जाफरानी फूलन में जैसे हेमलता लसै ,
तामैं उग्यो चंद लेन रूप अजमूदा है ।
लालन जू लालन के रंग सी निचौरि रँगी ,
सुरँग मजीठ ही के रंगन जमूदा है ;
बकिन बहूदा लखि छबिन को तूदा ओप ,
अतर अलूदा अंगना के अंग ऊदा है ।

(१७९) नाभादासजी व प्रियादासजी

नाभादासजी एक बड़े ही प्रसिद्ध भक्त और महात्मा हो गए हैं । उन्होंने भक्तमाल-नामक ग्रंथ में क़रीब २०० भक्तों के वर्णन किए हैं । बाबू राधाकृष्णदासजी ने ध्रुवदास की भक्त-नामावली में सप्रमाण सिद्ध किया है कि भक्तमाल संवत् १६४२ के पीछे और १६८० के पहले बनी । भक्तमाल में लिखा है कि—

बिट्ठलेश नंदन सुभंग जग कोऊ नहिं ता समान ;
श्रीवल्लभजू के बंश में सुरतरु गिरिधर आजमान ।

तुलसीदासजी के विषय में भक्त माल कहती है कि—

रामचरण रस मत्त रहत अहनिशि व्रत धारी ।

तुलसीदास संबंधी वर्तमान काल के कथन से प्रकट है कि भक्त-माल उनके समय में बनी, सो इसका समय उनके मरण-काल १६८० के पूर्व है। उधर विट्ठलेश का देहांत संवत् १६४२ में हुआ और तब गिरिधरजी गद्दी पर बैठे । भक्तमाल इस समय के पीछे बनी। नाभाजी के शिष्य प्रियादास ने संवत् १७६६ में भक्तमाल की टीका बनाई । इससे नाभादास का संवत् १७२० के लगभग शरीरांत होना अनुमान-सिद्ध माना जा सकता है । नाभादास को नारायणदास भी कहते हैं। उन्होंने यह भी लिखा है कि नाभा-दासजी का समय संवत् १७०० तक है । ये महाशय अग्रदासजी के शिष्य थे। इनकी जाति के विषय में बहुतों का मत है कि ये डोम थे, क्योंकि भक्तमाल में इनके प्रसिद्ध समकालीन टीकाकार ने इन्हें हनुमानवंशी लिखा है और माड़वारी भाषा में डोम-शब्द का प्रयोजन हनुमान है। एक टीकाकार ने इनके विषय में यह भी लिखा है कि वैष्णवों की जाति-पाँति वक्तव्य नहीं है । इन्हीं की आज्ञा से इनके शिष्य प्रियादासजी ने भक्तमाल की टीका संवत् १७६६ में लिखी। जान पड़ता है कि इन्होंने आज्ञा पहले दे रक्खी थी और टीका पीछे तैयार हुई। भक्तमाल के मूल में ३१६ छंद और टीका में ६२४ छंद हैं, जिनमें प्रायः सभी घनाक्षरी हैं। टीका में प्रियादासजी ने अर्थ न लिखकर जिन भक्तों का वर्णन मूल में सूक्ष्मतया हुआ है, उन्हीं का विस्तार-पूर्वक कथन किया है और उनके विषय में बहुत-सी नवीन बातें लिखी हैं। अतः मूल से टीका अधिक उपयोगी है। जिन भक्तों के नाम लिखे गए हैं उनमें से अधिक-तर तीन-चार सौ वर्षों के भीतर के ही हैं और इस ग्रंथ से प्रायः किसी भी विख्यात भक्त का नाम छूट नहीं रहा है। अतः वल्लभीय संप्रदाय तथा और ऐसे-ही-ऐसे संप्रदायों और पंथों के हाल स्थिर रखने में यह ग्रंथ बड़ा ही उपकारी है । इसमें सूरदास-तुलसी-

दास, वल्लभाचार्य, कबीरदास, हितहरिवंश आदि सभी प्रसिद्ध एवं अप्रसिद्ध भक्तों के नाम आ गए हैं। खेद केवल इतना है कि सन्-संवत् का कुछ भी ब्योरा नहीं दिया हुआ है। फिर भी भक्त-माल की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इसकी कविता भी मनोहर है। नाभादासजी ने प्रायः एक-एक छप्पय द्वारा प्रत्येक भक्त का वर्णन किया है, परंतु कहीं-कहीं एक ही छप्पय में कई मनुष्यों का एवं कई छंदों में एक ही भक्त का हाल भी कहा है। प्रियादासजी ने प्रायः सभी स्थानों पर विस्तार-पूर्वक वर्णन किए हैं और जो जितना बड़ा भक्त है उसका उतना ही अधिक वर्णन है। इन दोनों महात्माओं के महत्त्व की प्रशंसा कोई कहाँ तक कर सकता है? इन महाशयों ने जाति-पाँति का बंधन बहुत कुछ ढीला कर दिया था और किसी के वैष्णव हो जाने पर ये उसके महत्त्व की जाँच जाति से न करके भक्ति की मात्रा से करते थे। इन्होंने 'जाति-पाँति पूछै ना कोय; हरि का भजै सो हरि का होय।' को यथार्थ कर दिखाया और अपने निर्मल चरित्रों से संसार को पवित्र किया। कविता के अनुसार हम इन्हें पद्माकर कवि की श्रेणी में रक्खेंगे। खोज में प्रियादासजी-कृत भागवत भाषा भी लिखी है जो बुँदेल-खंडी भाषा में बनी है। उदाहरण लीजिए—

नाभादासजी

श्रीभट्ट सुभट प्रगट्यो अघट रस रसिकन मन मोद घन।
मधुर भाव सम्मिलित ललित लीला सुवलित छबि;
निरखत हरषत हृदय प्रेम बरषत सुकलित कबि।
भव निस्तारन हेत देत दृढ़ भक्ति सबन नित;
जासु सुजस-ससि उदै हरत अति तम भ्रम श्रम चित।
आनंद कंद श्रीनंद सुत श्री वृषभानुसुता भजन;
श्रीभट्ट सुभट प्रगट्यो अघट रस रसिकन मन मोद घन।

प्रियादासजी

वृंदावन ब्रज भूमि जानत न कोऊ प्रिया,
दई दरसाई जैसी सुक मुख गाई है;
रीति हू उपासना की भागवत अनुसार,
लियो रस सार सो रसिक सुखदाई है।
आज्ञा प्रभु पाय पुनि गोपेश्वर लगे आय;
किए ग्रंथ भाव भक्ति भाँति सब पाई है;
एक-एक बात मैं समात मन बुद्धि जब,
पुलकित गात दृग झरी-सी लगाई है।

ये दोनों महात्मा भक्तशिरोमणि होने के अतिरिक्त सुकवि भी थे; इनके छंदों में कहीं-कहीं छंदोभंग जान पड़ता है, परंतु यह छापनेवालों की अल्पज्ञता का फल है, न कि इनकी कविता का। भक्तमाल के बराबर पुण्यद ग्रंथ हिंदी में बहुत कम हैं। इसको पढ़ने से मनुष्य के विचार ठीक हो सकते हैं। यह बड़ा ही उत्तम ग्रंथ है। इस ग्रंथ की बहुत-सी अन्य टीकाएँ हुई हैं और दो अन्य टीकाओं के नाम शिवसिंहसरोज में भी लिखे हैं। संसार ने इस ग्रंथ का जितना आदर किया है उसके यह योग्य भी है। नाभा-दासजी ने दो अष्टयाम भी बनाए जो हमने छत्रपूर में देखे हैं। इनमें से एक गद्य ब्रजभाषा में है और दूसरा छंदोबद्ध, विशेषतया दोहा-चौपाइयों में। गद्य-ग्रंथ ५६ बड़े पृष्ठों का है और पद्यवाला ५० बड़े पृष्ठों का। इनका राम-चरित्र के पद-नामक एक और ग्रंथ द्वितीय त्रैवार्षिक खोज में मिला है।

उदाहरण—

तब श्री महाराज कुमार प्रथम वाशिष्ठ महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भये फिरि अपर वृद्ध समाज तिनको प्रनाम करत

भये। फिरि श्रीराजाधिराज जू को जोहार करिकै श्रीमहेंद्रनाथ दशरथ जू के निकट बैठत भये।

अवधपुरी की सोभा जैसी ; कहि नहिं सकहिं शेष श्रुति तैसी।
रचित कोट कलधौत सोहावन ; बिबिध रंग मति अति मनभावन।
चहुँदिसि बिपिनि प्रमोद अनूपा ; चतुरबीस जोजन रस रूपा।
सुदिसि नगर सरजू सरि पावनि ; मनिमय तीरथ परम सोहावनि।
बिकसे अलज भृंग रस भूले ; गुंजत अल-समूह दोउ फूले।
बरषत त्रिविधि सुधा सम बारी ; बिकसे बिबिधि कंज मन हारी।

परिखा प्रति चहुँदिसि लसत कंचन कोट प्रकास ;
बिबिधि भाँति नग जगमगत प्रति गोपुर पुर पास।
दिव्य फटिक मै कोट की शोभा कहि न सिराय ;
चहुँदिसि अद्भुत जोति मैं जगमगात सुखदाय।

(१८०) कादिरबक्स

ये महाशय पिहानी, ज़िला हरदोई के रहनेवाले संवत् १६३५ में उत्पन्न हुए थे। ये सैयद इब्राहीम के शिष्य थे और कविता आदरणीय करते थे। इनके किसी ग्रंथ का नाम ज्ञात नहीं हुआ है पर इनका स्फुट काव्य परम मनोहर देखने में आया है। इनका कविता-काल संवत् १६६० समझना चाहिए। हम इन्हें तोष कवि की श्रेणी में रक्खेंगे।

उदाहरण—

गुन को न पूछै कोऊ, औगुन की बात पूछै,
कहा भयो दई, कलियुग यों खरानो है ;
पोथी औ पुरान ज्ञान, ठटठन में डारि देत,
चुगुल चवाइन को मान ठहरानो है।
कादिर कहत यासों कछू कहिबे की नाहिं,
जगत की रीति देखि चुप मन मानो है।

खोलि देखौ हियो सब ओरन सों भाँति-भाँति,
गुन ना हिरानो गुन-गाहक हेरानो है।

नाम—(१८१) अमरेश।

जन्म-काल—१६३५।

कविताकाल—१६६०।

विवरण—इनके छंद कालिदास हज़ारा में मिलते हैं; पर कोई ग्रंथ नहीं मिलता। इनकी कविता मनोहर है। इनको तोष कवि की श्रेणी में हम रखते हैं।

उदाहरण—

कसि कुच कंचुकी मै, बिरचु बिमल हार,
मालती के सुमन धरेई कुम्हिलाइगे;
गोरी गारु चंदन बगारु घनसारु अब,
दीपक उज्यारु तम, छिति पर छाइगे।
बारु धूप अगर अगारु धूप बैठी कहा,
अमरेस तेरे आजु भूलि-से सुभाइगे;
सरद सुहाई साँझ आई सेज साजु अस,
कहत सुआ के आँसु, वाके नैन आइगे।

नाम—(१८२) मुक्तामणिदास।

कविताकाल—१६६०।

विवरण—इनका काव्य गोसाईं तुलसीदासजी ने पसंद किया था।

(१८३) राघवदास कुंभनदास के पौत्र थे। आपका कविता-काल संवत् १६६० के लगभग समझना चाहिए। आपकी कविता उत्तम होती थी, पर वह हमारे देखने में नहीं आई।

नाम—(१८४) प्रवीन।

ग्रंथ—सारसंग्रह।

कविताकाल—लगभग १६६०।

वरण—इन्होंने गोस्वामी बनचंद्र, श्रीगोस्वामी हितहरिवंश के पुत्र, की आज्ञा से सारसंग्रह-नामक पुस्तक संगृहीत की थी; अतः इनका कविता-समय १६६० के लगभग निश्चय किया गया। इस पुस्तक में १५० कवियों की कविता संगृहीत है। यह पुस्तक हमारे पुस्तकालय में प्रस्तुत है।

(१८५) मुबारक

सैयद मुबारक अली बिलग्रामी का जन्म-संवत् १६४० में हुआ। महाशय अरबी, फ़ारसी तथा संस्कृत के बड़े विद्वान् और भाषा अच्छे कवि थे। सुना जाता है कि इन्होंने १० अंगों पर सौ-सौ हे बनाए जिनमें से तिलशतक व अलकशतक प्रकाशित हो चुके और हमारे पुस्तकालय में मौजूद हैं। इनके अलावा और कोई थ इनका देखने में नहीं आया, परंतु स्फुट छंद बहुत देख पड़ते । इनकी कविता सरस और मनमोहनी है। हम इनको पद्माकर ो श्रेणी में समझते हैं। आपने रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अच्छी ही हैं।

उदाहरण—

ह की बाँकी चितौनि चुभी झुकि, काल्हि ही झाँकी है, ग्वालि गवाछनि;
ो है नोखी-सी चोखी-सी कोरनि ओछे फिरैं उभरैं, चित जा छनि।
ोई जाति निहारे मुबारक, ये सहजै कजरारे मृगाछनि;
क लै काजर दे री गवाँरिनि, आँगुरी तेरी कटैंगी कटाछनि॥ १॥

बाजत नगारे मेघ ताल देत नदी नारे,
झींगुरन झाँझ भेरी बिहँग बजाई है;
नीलग्रीव नाचकारी कोकिल अलापचारी,
पौन बीनधारी चाटी चातक लगाई है।
मनिमाल-जुगुनू मुबारक तिमिर थार,
चौमुख चिराक चारु चपला चलाई है;

बालम, बिदेस नए दुख को जनमु भयो,
पावस हमारे लाई विरह बधाई है ॥ २ ॥
अलक मुबारक तिय बदन लटकि परी यों साफ़ ;
ख़ुसनवीस मुनसी मदन, लिख्यो काँच पर क़ाफ़ ॥ ३ ॥
सब जग पेरत तिलन को, थक्यो चित्त यह हेरि :
तव कपोल को एक तिल, सब जग डार्यो पेरि ॥ ४ ॥

(१८६) बनारसीदास

ये महाशय खरगसेन जैन के पुत्र संवत् १६४३ में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने १६९८ पर्यंत अपना बृहत् जीवन-चरित्र ६७३ दोहा-चौपाइयों के अर्द्धकथानक-नामक अपने ग्रंथ में दिया है। उसके पीछे नहीं ज्ञात है कि इनकी जीवनयात्रा कब तक स्थिर रही। ये जौहरी थे और जौनपूर तथा आगरे में रहा करते थे। इनका जन्म-स्थान जौनपूर था। युवावस्था में इन महाशय के आचरण बहुत बिगड़ गए थे और इन्हें कुष्ट-रोग का दुःख भी झेलना पड़ा, पर पीछे से इन्हें ज्ञान हो गया और इन्होंने शृंगार-रस का अपना ग्रंथ गोमती नदी में फेंक दिया। बनारसीविलास, नाटक समयसार, नाममाला, अर्द्धकथानक, तथा बनारसी पद्धति-नामक इनके पाँच ग्रंथ हैं, जिनमें से प्रथम दो हमारे पास वर्तमान हैं। खोज में इन्हीं बनारसीदास के मोक्षपदी-ध्रुव-वंदना तथा कल्याण-मंदिर भाषा-नामक ग्रंथ भी मिले हैं। चतुर्थ त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट में इनके दो ग्रंथ वेदनिर्णयपंचाशिका तथा मारगन विद्या-नामक मिले हैं [खोज १९००]। बनारसी-विलास २९२ पृष्ठों का ग्रंथ इनकी स्फुट कविता का संग्रह है, जिसमें घनाक्षरी, सवैया, छप्पय, दोहा, चौपाई आदि बहुत-से छंदों में कविता की गई है और कई पृष्ठों तक व्रजभाषा का गद्य भी है। नाटक समयसार नाटक-ग्रंथ नहीं है वरन् एक उत्तम उपदेश-ग्रंथ महात्मा कुंदकुंदाचार्य-कृत इसी नाम के एक ग्रंथ के

आश्रय पर बना है। इसमें १२० पृष्ठ हैं। नाममाला एक प्रकार का कोष-ग्रंथ है। बनारसी-पद्धति का अधिक हाल ज्ञात नहीं हो सका। बनारसीदास की कविता धर्मोपदेशों से भरी है और पूर्ण-रूपेण प्रशंसनीय है। इनकी भाषा साधारण व्रजभाषा है। इनके कई भजनों में भी अच्छी कविता की गई है। बहुत लोगों का मत है कि इनकी कविता नवरत्नवाले कवियों तक से समानता कर सकती है, पर हमारा मत इस कथन से नहीं मिलता। फिर भी बनारसीदासजी को हम एक अच्छा कवि तोष कवि की श्रेणी का समझते हैं।

उदाहरण—

भौंदू समझ सबद यह मेरा ;
जो तू देखै इन आँखिन सों तामें कछू न तेरा।
पराधीन बल इन आँखिन को बिनु परकास न सूझै ;
सो परकास अगिनि रवि ससि को तू अपनो करि बूझै।
तेरे दृग मुद्रित घट अंतर अंध रूप तू डोलै ;
कै तो सहज खुलैं वे आँखैं कै गुरु संगति खोलै।
भौंदू ते हिरदै की आँखैं ;
जे करखैं अपनी सुख संपति भ्रम की संपति नाखैं।
जिन आँखिन सों निरखि भेद गुन ज्ञानी ज्ञान बिचारैं ;
जिन आँखिन सों लखि सरूप मुनि ध्यान धारना धारैं।

गद्य यथा

सम्यग्दृष्टी कहा सो सुनो। संशय, विमोह, विभ्रम ये तीन भाव जामैं नाहीं सो सम्यग्दृष्टी। संशय, विमोह, विभ्रम कहा ताको स्वरूप दृष्टांत करि दिखाइयतु है सो सुनो।

काया से बिचारि प्रीति माया ही में हार-जीति,
लिए हठ रीति जैसे हारिल की लकरी ;

चंगुल के जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि,
त्यों हीं पायँ गाड़ै पै न छाड़ै टेक पकरी।
मोह की मरोर सों भरम कों न ठौर पावैं,
धावै चहुँ ओर ज्यों बढ़ावै जाल मकरी;
ऐसी दुरबुद्धि भूलि झूठ के झरोखे झूलि,
फूली फिरै ममता जँजीरन सों जकरी।

निरभय करन परम परधान; भवसमुद्र जलतारन यान।
शिव मंदिर अघ हरण अनिंद; बंदहुँ पास चरन अरबिंद।
कमठ मान भंजन बर बीर; गरिमा सागर गुन गंभीर।
सुर गुरु पार लहै नाहिं जास; मैं अजान जंपू जस तास।

(१८७) उसमान

ये महाशय शेख़ हसन ग़ाज़ीपुर-निवासी के पुत्र जहाँगीर शाह के समय में हुए थे। इन्होंने संवत् १६७० में चित्रावली-नामक एक प्रेमकहानी दोहा-चौपाइयों में जायसी की रचना के ढंग पर बनाई। इनकी रचना सबल और मनोहर है। हम इनको साधारण श्रेणी में रखते हैं। यदि इनका समग्र ग्रंथ हमारे देखने में आता, तो इनकी कविता के विषय में हम अधिक निश्चय के साथ अनुमति दे सकते।

उदाहरण—

आदि बखानौं सोइ चितेरा; यह जग चित्र कीन्ह जेहि फेरा।
कीन्हेसि चित्र पुरुष अउ नारी; को जल पर अस सकइ सँवारी।
कीन्हेसि जोति सूर-ससि-तारा; को असि जोति लिखइ को पारा।
कीन्हेसि बयन बेद जेहि सीखा; को अस चित्र पवन पर लीखा।
अइस चित्र लिखि जानइ सोई; वोहि बिनु मेटि सकइ नाहिं कोई।
कीन्हेसि रंग स्याम अउ सेता; राता पीत अउर जग जेता।
यह सब बरन कीन्ह जहँ ताईं; आपु अबर्न अरूप गोसाईं।

कीन्हा अगिनी पौन पर भाँति भाँति संसार ;
आपुन सब महँ मिलि रहा को निगरावइ पार ।

इस समय के अन्य कविगण

नाम—(१८८) ओलीराम ।

जन्मकाल—१६२१ ।

रचनाकाल—१६४६ ।

विवरण—हीन श्रेणी ।

नाम—(१८९) मोहनदास कपूर मिश्र के पुत्र ।

ग्रंथ—(१) भावचंद्रिका (गीतगोविंद का प्रतिबिंब), (२) रामाश्वमेध—१०३५ ।

रचनाकाल—१६४८ । इनका ठीक नं० १०३५/१ है ।

विवरण—साधारण श्रेणी । उड़छा-नरेश महाराजा मधुकर शाह के यहां थे ।

नाम—(१९०) नैनसुख पंजाबी केशवदास के पुत्र ।

ग्रंथ—वैद्यमनोत्सव पृ० ११० ।

रचनाकाल—१६४९ ।

विवरण—साधारण श्रेणी [खोज १९०० तथा १९०३]

नाम—(१९१) अगर ।

जन्मकाल—१६२६ ।

रचनाकाल—१६५० ।

विवरण—शांतरस की कविता की है जो साधारण श्रेणी की है ।

नाम—(१९१/१) कुंजलालजी गोस्वामी ।

ग्रंथ—स्फुट पद ।

रचनाकाल—१६५० के लगभग ।

विवरण—राधावल्लभ संप्रदाय के आचार्य ।

नाम—(१९२) जमालुद्दीन पिहानी ।

जन्मकाल—१६२५ ।

रचनाकाल—१६५० ।

नाम—(१६२) झूंठा स्वामी ।

ग्रंथ—पद्यावली ।

रचनाकाल—१६५० ।

विवरण—राधावल्लभी ।

नाम—(१६३) दामोदरचंद्र गोस्वामी व्रजवासी ।

ग्रंथ—समयप्रबंध । हस्तामलक, स्फुट पद ।

जन्मकाल—१६२२ ।

रचनाकाल—१६५० ।

विवरण—इनके पद रागसागरोद्भव में हैं । साधारण श्रेणी ।

नाम—(१६४) नारायण भट्ट स्वामी ऊँचगाँव, बरसाना ।

जन्मकाल—१६२० ।

रचनाकाल—१६५० ।

विवरण—रामलीला का चलन इन्हीं महाशय ने चलाया । साधारण कवि थे ।

नाम—(१६५) नंदन ।

जन्मकाल—१६२५ ।

रचनाकाल—१६५० ।

नाम—(१६५) हित बिट्ठलजी ।

ग्रंथ—स्फुट पद ।

रचनाकाल—१६५० ।

जन्मकाल—१६२५ ।

विवरण—हित-हरिवंश के वंशज नागरवर गोस्वामी के शिष्य ।

नाम—(१६६) इब्राहीम सैयद पिहानी हरदोई ।

रचनाकाल—१६५१ ।

विवरण—ये महाशय कादिर कवि के गुरु थे।

नाम—(१६७) रानी रारधरीजी राठूरिन, सिरोही।

रचनाकाल—१६५१।

नाम—(१६७/१) हरिराम।

ग्रंथ—(१) छंदरत्नावली (१६५१), (२) जानकीरामचरित्र नाटक (द्वि० त्रै० रि०)।

रचनाकाल—१६५१।

विवरण—लल्लूलाल के वंशज।

नाम—(१६७/२) मालदेव जैन।

ग्रंथ—पुरंदरकुमार चउपइ, (२) भोजप्रबंध।

रचनाकाल—१६५२।

विवरण—बड़गच्छीय भावदेव सूरि के शिष्य थे।

उदाहरण—

नर नारी जे रसिक ते सुणियहु सब चित लाइ;
ढूँढन कबहि घुमाइयहिं विना सरस तरु नाइ।
सरस कथा जइ होइ तौ सुखइ सबिहि मन लाइ;
जिहाँ सुवास होवहिं कुसुम सरस मधुप तिहाँ जाइ।
भावदेव सूरि गुणनिलउ बडगछ कमल दिणंद;
तासु सु सीस शिष्य कहइ मालदेव आनंद।

नाम—(१६८) खेमजी व्रजवासी।

ग्रंथ—खेमजी की चिंतवनी।

जन्मकाल—१६३०।

रचनाकाल—१६५५।

विवरण—साधारण श्रेणी।

नाम—(१६६) खेमदास बुँदेलखंडी।

ग्रंथ—सुखसंवाद।

जन्मकाल—१६३० ।

रचनाकाल—१६५१ ।

विवरण—साधारण श्रेणी (खोज १६०१-१६०२)

नाम—(२००) धीरज नरिंद (इंद्रजीतसिंह) ओड़छा ।

जन्मकाल—१६३७ ।

रचनाकाल—१६५५ ।

विवरण—राजकुमार इंद्रजीतसिंह ओड़छावाले बड़े गुणग्राही और गुणी थे । इन्हीं के दरबार में केशवदास तथा प्रवीण-राय पातुरी थीं । कविता भी इन्होंने की है जो साधारण श्रेणी की है ।

नाम—(२०१) पद्मचारिणी बीकानेर ।

रचनाकाल—१६५५ ।

विवरण—मलाजी संदू की पुत्री ।

नाम—(२०२) नज़ीर आगरावाले ।

रचनाकाल—१६५७ के पूर्व ।

विवरण—हिंदी से मिलती हुई उर्दू-कविता इस कवि की है ।

नाम—(२०३) अनंतदास ।

ग्रंथ—(१) राजदासपरिचय, (२) नामदेव आदि की परची-संग्रह, (३) पीपाजी (खोज १६०२) (१६५७) की परची, (४) रैदासजी की (प्र० त्रै० रि०) परची इत्यादि ।

नाम—(२०४) कान्हरदास चौबे व्रजवासी ।

रचनाकाल—१६५७ ।

नाम—(२०५) काशीनाथ ।

रचनाकाल—१६५७ ।

विवरण—साधारण श्रेणी । खोज में लिखा है कि ये महाशय बलभद्र के पुत्र और केशवदास के भतीजे थे, पर

केशवदास के पिता का भी नाम काशीनाथ था, इससे हमें यह संबंध अशुद्ध जँचता है।

नाम—(२०६) कृष्णजीवन लच्छीराम।

ग्रंथ—(१) योगसुधानिधि, (२) करुणाभरण नाटक खोज १९००।

रचनाकाल—१६५७।

विवरण—पिता का नाम कृष्णजीवन कल्याण।

नाम—(२०७) जनगोपाल।

ग्रंथ—(१) ध्रुवचरित्र, (२) भरतरीचरित्र [खोज १९००]

रचनाकाल—१६५७।

विवरण—महात्मा दादूदयाल के शिष्य।

नाम—(२०८) निधि।

रचनाकाल—१६५७।

नाम—(२०९) नीलकंठ मिश्र अंतरवेदी।

रचनाकाल—१६५७।

विवरण—तोष श्रेणी।

नाम—(२१०) नीलाधर।

रचनाकाल—१६५७।

नाम—(२११) बालकृष्ण त्रिपाठी।

ग्रंथ—रसचंद्रिका (पिंगल)।

जन्म-संवत—१६३२।

रचनाकाल—१६५७।

विवरण—बलभद्र केप पुत्र। ये केशवदास के भतीजे नहीं हो सकते क्योंकि वे मिश्र थे। साधारण श्रेणी के कवि थे।

नाम—(२१२) बेनीमाधवदास पस्का ज़ि० गोंडा।

ग्रंथ—गोसाईं चरित्र।

जन्म-संवत्—१६२९ । मृ० का० १६६६ ।

रचनाकाल—१६५७ ।

विवरण—गोस्वामी तुलसीदास के शिष्य थे ।

नाम—(२१३) विजयदेव सूरि ।

ग्रंथ—श्री शीलरास ।

रचनाकाल—१६५७ ।

विवरण—नेमनाथ के पुत्र शीलजैन का इतिहास [खोज १९००]

नाम—(२१४) लक्ष्मीनारायण मैथिल ।

ग्रंथ—द्वि०त्रै०रि० प्रेमतरंगिणी हनुमानजी का तमाचा ।

रचनाकाल—१६५७ ।

विवरण—ख़ानख़ाना के यहाँ थे ।

नाम—(२१५) माधव ।

ग्रंथ—विनोदसागर ।

रचनाकाल—१६५९ [१८०५] ।

विवरण—अकबर शाह के समय में थे । कृष्ण का यश वर्णन किया है । मधुसूदनदास की श्रेणी ।

नाम—(२१६) अभिराम ।

रचनाकाल—१६६० के पूर्व ।

विवरण—इनकी रचना सारसंग्रह में है ।

नाम—(२१७) उदयराय ।

रचनाकाल—(१६६०) के पूर्व ।

विवरण—इनकी कविता सारसंग्रह में है ।

नाम—(२१८) केशव पुत्रबधू ।

रचनाकाल—१६६० के पूर्व ।

विवरण—इनकी कविता सारसंग्रह में है ।

नाम—(२१९) खेम ।

रचनाकाल—१६६० से पूर्व।

विवरण—ये दादूदयाल के शिष्य थे और इन्होंने 'रंभाशुक-संवाद' ग्रंथ बनाया है।

नाम—(२१६) द्विजेश।

रचनाकाल—१६६० के पूर्व।

नाम—(२२०) धनुराय।

रचनाकाल—१६६० के पूर्व।

नाम—(२२१) ब्रजचंद।

रचनाकाल—१६६० के पूर्व।

विवरण—इनकी कविता सारसंग्रह में है।

नाम—(२२२) ब्रजजीवन राधावल्लभी।

रचनाकाल—१६६० के पूर्व।

विवरण—इनकी कविता सारसंग्रह में है। हीन श्रेणी।

नाम—(२२३) मनोभव।

रचनाकाल—१६६६ के पूर्व।

विवरण—इनकी कविता सारसंग्रह में है।

नाम—(२२४) रसरास।

रचनाकाल—१६६० के पूर्व।

विवरण—इनकी कविता सारसंग्रह में है। साधारण श्रेणी।

नाम—(२२५) लालमनि।

रचनाकाल—१६६० से पूर्व।

विवरण—इनकी रचना सारसंग्रह में है।

नाम—(२२६) हरिनाम।

रचनाकाल—१६६० के पूर्व।

विवरण—इनकी कविता सारसंग्रह में है।

नाम—(२२७) उदयराज जैनजती बीकानेर।

ग्रंथ—फुटकर दोहे तथा 'गुणमासा' तथा 'रगेज दीन महताब'

रचनाकाल—१६६० के लगभग।

विवरण—उपदेश राजनीति-विषय में। आश्रयदाता महाराजा राय-सिंहजी, जिन्होंने सं० १६३० से १६८८ तक राज्य किया।

नाम—(२२८) गदाधरजी।

ग्रंथ—स्फुट पद।

रचनाकाल—१६६०।

विवरण—साधारण श्रेणी।

नाम—(२२९) घनश्याम शुक्ल।

ग्रंथ—(१) साँझी, (२) मानसपुरपक्षावली। द्वि० त्रै० रि०।

जन्म-संवत्—१६३५।

रचनाकाल—१६६०।

नाम—(२३०) निहाल।

जन्मकाल—१६३५।

रचनाकाल—१६६०।

नाम—(२३१) पीतांबरदासजी स्वामी।

ग्रंथ—बानी।

रचनाकाल—१६६० के क़रीब। [खोज १९०५]

विवरण—स्वामी हरिदासजी के पुत्र थे। मधुसूदनदास की श्रेणी।

नाम—(२३२) महाराजा मुकुंदसिंह हाड़ा कोटानरेश।

जन्मकाल—१६३५।

रचनाकाल—१६६०।

विवरण—ये महाशय संवत् १७१६ में उज्जैन की लड़ाई में शाह-जहाँ की ओर से लड़कर औरंगज़ेब द्वारा मारे गए थे।

नाम—(२३३) हरिरामदास प्राचीन।

ग्रंथ—हरिरामदासजी की बानी।

जन्मकाल—१६३१।

रचनाकाल—१६६०।

विवरण—राजपूतानी भाषा में।

नाम—(२३४) चूरामणि।

रचनाकाल—१६६१।

विवरण—इनकी कविता बहुत उत्तम और सरस है।

नाम—(२३४/१) ऋषभदास जैन।

ग्रंथ—(१) श्रेणिक रास, (१६६२) (२) कुमारपाल रास, (१६७०) (३) रोहिणेय रास।

रचनाकाल—१६६२।

नाम—(२३४/२) धर्मदास।

ग्रंथ—महाभारत। पं० त्रै० रि०।

रचनाकाल—१६६४।

विवरण—चं० त्रै० रि० में समय १७११ लिखा है।

नाम—(२३४/३) रायमल्ल ब्रह्मचारी।

ग्रंथ—(१) भविष्यदत्त चरित्र, (२) सीता चरित्र।

रचनाकाल—१६६४।

विवरण—सकल चंद्रभट्टारक के शिष्य थे।

नाम—(२३४/४) कुँवरपाल।

ग्रंथ—स्फुट पद्य।

रचनाकाल—१६६९।

विवरण—बनारसीदास के मित्र थे।

नाम—(२३५) मोहन माथुर।

ग्रंथ—अष्टावक्र।

रचनाकाल—१६६५।

विवरण—तोष श्रेणी [खोज १६०३]।

नाम—(२३६) कल्यानी स्त्री।

ग्रंथ—स्फुट भजन।

रचनाकाल—१६६६ लगभग।

विवरण—भक्त कवि। ध्रुवभक्तनामावली में नाम है।

नाम—(२३७) गिरिधर स्वामी वृंदावनवासी।

ग्रंथ—स्फुट भजन।

रचनाकाल—१६६६ लगभग।

विवरण—ध्रुवभक्तनामावली में नाम है। भक्तमाल में उदार भक्त कहे गए हैं।

नाम—(२३८) नवल स्त्री।

ग्रंथ—स्फुट भजन।

रचनाकाल—१६३६ लगभग।

विवरण—ध्रुवनामावली में।

नाम—(२३९) नाथ भट्ट राधारमन की गद्दी के महंत गोपाल भट्ट के पुत्र थे।

ग्रंथ—स्फुट भजन।

जन्मकाल—१६४१।

रचनाकाल—१६६६ लगभग।

विवरण—ध्रुवभक्तनामावली में इनका नाम है।

नाम—(२४०) रघुनाथ ब्राह्मण। पहली त्रैवार्षिक खोज में इनका एक ग्रंथ रघुनाथविलास-नामक मिला है।

रचनाकाल—१६६६ लगभग।

विवरण—ध्रुवभक्तनामावली में नाम है।

नाम—(२४०/१) रूपचंद आगरावासी।

ग्रंथ—(१) परमार्थी दोहा शतक, (२) गीत परमार्थी।

रचनाकाल—१६६६ के लगभग।

विवरण—बनारसीदास के समसामयिक तथा जैन-धर्म के मर्मज्ञ पंडित थे।

उदाहरण—

चेतन चित परिचय बिना जप तप सबै निरत्थ ;
कन बिन तुस जिमि फटक तैं आवै कछू न हत्थ।
चेतन सों परिचय नहीं कहा भये व्रत धारि :
सालि विहूनें खेत की वृथा बनावत वारि।
बिना तत्त्व परिचय लगत अपर भाव अभिराम ;
लाभ और रस रुचत हैं अमृत न चाख्यौ जाम।
भ्रम तें भूल्यो अपनपौ खोजत किन घट माँहि ;
बिसरी वस्तु न कर चढ़ै जो देखै घर चाहि।

नाम—(२४१) श्रीविष्णुविचित्र।

रचनाकाल—१६६६ लगभग।

विवरण—इनका नाम ध्रुवभक्तनामावली में है। ध्रुवदास इन्हें सुकवि कहते हैं।

नाम—(२४२) हरखचंद।

ग्रंथ—पुण्यसार।

रचनाकाल—१६६६।

नाम—(२४२/१) हेमविजय।

ग्रंथ—स्फुट पद्य।

रचनाकाल—१६६६ के लगभग।

विवरण—हरि विजय सूरि के शिष्य तथा संस्कृत के मार्मिक विद्वान् तथा कवि थे।

उदाहरण—

घन घोर घटा उनई जु नई इततें उततें चमकी बिजली :

पियुरे पियुरे पपिहा बिललाति जु मोर किंगार करंति मिली ।
बिच बिंदु परे दृग आँसु झरें दुनि धार अपार इसी निकली ;
मुनि हेम के साहिब देखन कूँ उग्र सेन लली सु अकेली चली ।
कहि राजि मती सुमती सखियान कूँ एक खिनेक खरी रहु रे ;
सखि री सगरी अँगुरी मुहि वाहि करति (?) बहुत इसे निहुरे ।
अबही तबही कबही जबही यदुराय को जाय इसो कहु रे ;
मुनि हेम के साहिब नेम जी हो अब तो रन तें तुम क्यों बहुरे ।

नाम—(२४३) प्राणचंद्र ।

ग्रंथ—रामायणमहानाटक । उपनाम महानाटक भाषा ।

रचनाकाल—१६६७ [खोज १६०३] ।

नाम—(२४४) भूपति ।

ग्रंथ—कविता श्री हजूराँ री ।

रचनाकाल—१६६७ ।

नाम—($\frac{२४४}{१}$) मोहन उपनाम सहज सनेही ।

ग्रंथ—अष्टावक्र । खो० रि० १६०३ ।

रचनाकाल—१६६७ ।

विवरण—रिपुवार के साथ यह ग्रंथ बनाया ।

नाम—(२४५) रघुनाथ, ब्राह्मण ।

ग्रंथ—रघुनाथविलास ।

रचनाकाल—१६६७ ।

विवरण—बादशाह जहाँगीर के समय में थे ।

नाम—(२४६) पद्म भगत ।

ग्रंथ—रुक्मिणी जी को ब्याह लो [खोज १६००] ।

रचनाकाल—१६६६ के पूर्व ।

नाम—(२४७) विद्याकमल ।

ग्रंथ—भगवती गीत ।

रचनाकाल—१६६६ के पूर्व [खोज १६००]।

विवरण—जैनमतानुसार (सरस्वती-स्तुति)

नाम—(२४८) मुनि लावण्य।

ग्रंथ—रावण-मंदोदरी-संवाद।

रचनाकाल—१६६६ के पूर्व [खोज १६००]।

नाम—(२४९) विहारीबल्लभ, ब्रज के निवासी।

ग्रंथ—भगवत रसिकजू की कथा [प्र० त्रै० रि०]।

रचनाकाल—१६७०।

विवरण—भगवत रसिक के अनुयायी। खोज-रिपोर्ट से इनका समय १६३२ निकलता है।

नाम—(२५०) वृंदावनदास ब्रजवासी।

जन्म-काल—१६४५।

रचनाकाल—१६७०।

विवरण—निम्न श्रेणी।

सत्रहवाँ अध्याय

अंतिम तुलसीकाल (१६७१ से संवत् १६८० तक) के शेष कविगण

(२५१) लीलाधर

इनके तीन छंद हमारे देखने में आए हैं। ये संवत् १६७६ के लगभग जोधपूर के महाराजा गजसिंह के यहाँ थे। इनकी कविता अच्छी है। यमक का ध्यान इन्हें अधिक रहता था। हम इन्हें साधारण श्रेणी का कवि मानते हैं। सूदन कवि ने इनका नाम लिखा है, और दास ने भी काव्यनिर्णय में इनका नाम दिया है।

उदाहरण—

पावै जो परस ताको होत है सरस भाग,
पावन दरस जाकी जानो अनुसार है;
रमनीय वेखन की लीलाधर पेखन की,
ललित सुरेखन की प्रगटी पसार है।
बहिक्रम बूढ़ी करि चिंता चित गूढ़ी करि,
रचनाऊ ढूँढ़ी विधि बिबिध बिचार है;
कथन कथेरी लोक चौदहो मथेरी,
पर तेरी या हथेरी की न पाई अनुहार है।

जान पड़ता है कि इन्होंने कोई नख-शिख बनाया है, जिसका यह छंद है।

(२५२) श्रीसुंदरदासजी दादूपंथी

नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज में पाँच सुंदरदास लिखे हैं और सरोज में तीन सुंदरदास हैं। खोज में पाँच सुंदरदासों में से तीन का पता दिया है और दो का नाम यों ही लिखा है। पाँच मनुष्यों में एक का कविताकाल संवत् १८२७ से १८६६ तक है और शेष का १६५७ से १७१० तक। अतः इन चार नामों का समय भी ऐसा मिलता है कि इनके विषय में कुछ निश्चय होना कठिन है। हमारे विचार में इन चार में से केवल दो कवि थे और शेष दो नाम दोहराकर आए हैं। एक तो सुंदरदास शाहजहाँ के यहाँ थे, जिन्होंने सुंदर-शृंगार और सिंहासनबत्तीसी-नामक ग्रंथ १६८८ के लगभग बनाए और द्वितीय सुंदरदास प्रसिद्धकवि दादूपंथी ढूसर बनिया थे, जो जयपूर के निकट दौसा में उत्पन्न हुए थे और जिनका कविताकाल १६७७ से १७४६ तक समझ पड़ता है। इन्होंने निम्न-लिखित ग्रंथ बनाए हैं—

हरिबोल चितावणी, साखी, सुंदरदासजी की सवैया (१६७७),

सुंदर सांख्य (१६७७), सवैया, तर्क-चिंतामणि, विवेकचिंतामणि (१६१०), पंच इंद्री निर्णय ग्रंथ (१६६१), बानी, ज्ञानसमुद्र (१७१०), ज्ञानविलास, सुंदर-विलास, सुंदर काव्य, [प्र० त्रै० रि०] सवैया, सुंदराष्टक, कुल १३ अष्टकें, सर्वांग योग, सुखसमाधि, स्वप्नबोध, वेद विचार, उक्त अनूप, सुंदर बावनी, सहजानंद, गृह वैराग-बोध, त्रिविध—अंतःकरण भेद और पद प्र० तथा द्वि० त्रै० खोज में रुक्मांगद की एकादशी कथा, ज्ञानसागर, विवेकचेतावनी, सुंदरगीता और विचारमाला भी लिखे हैं (१७०७) । इनके छंद यत्र-तत्र देखने में बहुत आए हैं, जिनसे जान पड़ता है कि भारी भक्त होने के अतिरिक्त ये महाशय उत्कृष्ट कवि भी थे और साहित्य पर इनका प्रगाढ़ अधिकार था । हम इन्हें तोष की श्रेणी में रक्खेंगे । इनका ज्ञानसमुद्र हमने छत्रपूर में देखा है । उसमें गुरु-शिष्य-संवाद है ।

उदाहरण—

मौज करी गुरु देव दयाकर शब्द सुनाय कह्यो हरि नेरो ;
ज्यों रबि के प्रगटे निसि जात सुदूरि कियो भ्रम भानि अँधेरो ।
काइक बाचक मानस हू करि है गुरु देव ही मंगल मेरो ;
सुंदरदास कहै करजोरि जु दादूदयाल को हौं नित चेरो ।
सेवक सेव्य मिले रस पीवत भिन्न नहीं अरु भिन्न सदाहीं ;
ज्यों जल बीच धर्यो जलपिंड सु पिंडहु नीर जुदे कछु नाहीं ।
ज्यों दृग में पुतरी दृग एक नहीं कछु भिन्न न भिन्न देखाहीं ;
सुंदर सेवक भाव सदा यह भक्ति परा परमेश्वर माहीं ।

कैधों पेट चूल्हो कैधों भाठी कैधों भार आहि,
जोई कछु झोंकियत सोई जरिजात है ;
कैधों पेट कूप कैधों बापी कैधों सागर है,
जेतो जल परै तेतो सकल समात है ।
कैधों पेट भूत कैधों प्रेत कैधों राकस है,

खावँ खावँ करै कहूँ नेक ना अवात है ;
सुंदर कहत प्रभु कौन पाप पायो पेट,
जब तें जनम लीन्हों तब ही तें खात है।

ये महाशय बड़े प्रसिद्ध साधु तथा योगी फ़ारसी, संस्कृत तथा भाषा के सुबोध पंडित और वेदांत एवं योग-विषय के अच्छे विद्वान् थे। इन्होंनें ज्ञान और नीति के भी दोहे उत्कृष्ट कहे हैं। इनकी कविता में व्रजभाषा, खड़ी बोली और पंजाबी का मिश्रण है। इनके कई छपे ग्रंथ हमने छत्रपूर में देखे हैं। शाहजहाँ के सुंदरदास भी उत्तम कवि थे और उनकी भी गणना तोष की श्रेणी में है। उनका हाल समयानुसार उचित स्थान पर लिखा जायगा। पंडित चंद्रिका-प्रसाद तिवारी नें दादूपंथी कवियों के विषय में विशेष श्रम किया है। आपनें निम्न छंदों से यह उचित निष्कर्ष निकाला है कि सुंदर-दास दादूपंथी संवत् १६५३ में उत्पन्न हुए और १७४६ में पंचत्व को प्राप्त हुए।

सात बरस सौ में घटै इतने दिन की देह ;
सुंदर आतम अमर है देह खेह की खेह।
संवत सत्रह सै छीयाला ;
कातिक की अष्टमी उजाला।
तीजे पहर बृहस्पति बार ;
सुंदर मिलिया सुंदर सार।
इकती ती तीराणवे इतनें बरस रहंत ;
स्वामी सुंदरदास को कोउ न पायो अंत।

ये महाशय ११ वर्ष की अवस्था में फ़क़ीर हो गए थे। इनका कविताकाल संवत् १६७७ से १७४६ पर्यंत समझना चाहिए। सुंदरदासजी समय-समय पर दादू द्वारे, नराणे, लाहौर, अमृतसर, शेखावाटी, जयपूर, फ़तेहपूर आदि में रहे हैं।

उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त तिवारीजी ने इनके निम्न अन्य ग्रंथों के नाम लिखे हैं—

अद्भुत उपदेश, पंचप्रभाव, गुरुसंप्रदाय, उत्पत्तिनिशानी, सतगुरुमहिमा, बारहमासे दो, आयुर्बलभेदविचार, गूढ़ अर्थ, नौ सिद्ध, अष्ट सिद्ध, सप्त वाद, बारहराशी, छत्रबंद छंद, कमलबंद छंद, आदि अक्षर दोहा छंद, मध्य अक्षरी, निगड़छंद, सिंहावलोकनी, प्रतिलोम, अनुलोम और वृक्षबंद दोहा।

चौथे त्रैवार्षिक खोज में इनका सुंदर गीतावैराग्यपरिकरण ग्रंथ मिला है।

(२५३) ताहिर आगरा-निवासी

इन्होंने संवत् १६७८ में एक कोकसार अच्छे छंदों में (द्वि० त्रै० रि०) बनाया। आपने अपने ग्रंथ में स्त्रीजाति, सामुद्रिक लक्षण, आसन, वाजीकरण इत्यादि कहे हैं। इनकी कविता ललित, शांत और गंभीर है। हम इनको साधारण श्रेणी में रक्खेंगे।

उदाहरण—

पदुम जाति तन पदुमिनि रानी,
कंज सुबास दुवादस बानी;
कंचन बरन कमल कइ बासा,
लोइन भँवर न छाँड़त पासा।
अलप अहार अलप मुख बानी,
अलप काम अति चतुर सयानी;
सेत बसन औ सेत सिँगारा,
सेत पुहुप मोतिन के हारा।
झीन बसन महँ झलकइ काया,
जनु दरपन महँ दीपक छाया;

खोज (प्र० त्रै० रि०) में 'गुणसागर'-नामक इनका एक ग्रंथ और मिला है।

(२५४) घासीराम मल्लावाँ ज़िला हरदोई के ब्राह्मण

इन्होंने (द्वि० त्रै० रि०) पक्षीविलास-नामक अन्योक्ति का एक बड़ा उत्तम अपूर्व ग्रंथ बनाया है। इनका समय संवत् १६८० के लगभग है, क्योंकि इनके छंद हज़ारा में भी उद्धृत हैं। इनका काव्य बहुत ही ललित और चित्ताकर्षक है। इनकी गणना कवि पद्माकर की श्रेणी में है। इन्होंने प्रेम, नीति और विविध विषयों के वर्णन सफलता-पूर्वक किए हैं। कुछ लोगों का ख़याल है कि अकबर के समयवाले घासीराम मल्लवाँवाले घासीराम से भिन्न हैं।

> कहाँ पाई माई झूठे मोती में सचाई नहिं,
>   दुरत दुराई गति पाँडव गयंद की;
> बड़ेन बड़ाई लघुताई छोटे नरन की,
>   जानी जाति ऐसे ज्यौं परिच्छा सूक चंद की।
> आन्यौं मैं अहीर को है हीर को है पीर को है,
>   हीर को न पीर को मिठाई बिष कंद की;
> घासीराम कंठ जब कूबरी लगाई तब,
>   आई री उघरि सुघराई नँदनंद की।

स्याम लिखे गुनि प्यारी को आखर, जोग चिठी वह जो सुनि पैहै;
देखत ही उड़ि जायँगे प्रान, कपूर लौं फेरि न हाथन ऐहै।
ऊधौ चुपाहु सुनी खबरैं, बृषभानुलली तन क्यों बिष बैहै;
कौल कली सम राधे हमारो, सु वा कुबजा की खवासिनि ह्वैहै।

इन्होंने खड़ी बोली में भी कई छंद बनाए हैं—

"ऐ बाज़ अहाज़िम क्या लाज़िम चिड़ियों पर बार ख़्वार करते"।

इत्यादि।

(२५५) जटमल

इस कवि ने संवत् १६८० में गोरा बादल की कथा गद्य में कही और इस भाषा में खड़ी बोली का प्राधान्य है। अतः खड़ी बोली प्रधान गद्य का गंग भाट के पीछे सबसे प्रथम रचयिता यही जटमल कवि है [खोज १९०१]।

उदाहरण—

"गोरा बादल की कथा गुरू के बस सरस्वती के महरबानगी से पूरन भई तिस वास्तें गुरू कू व सरस्वती कू नमस्कार करता हूं। ये कथा सोल से आसी के साल में फागुन सुदी पुनम के रोज बनाई। ये कथा में दोर सेह बीरा रस वसी नगार रस हें सों कया। मोर छड़ो नाव गाँव का रहनेवाला कवेसर जगहा उस गाँव के लोग भोहोत (बहुत) सुकी हे, घर-घर में आनंद होता है, कोई घर में फ़कीर दीखता नहीं। धरम सी नाव का बेत लोन का बेटा जटमल नाव कवेसर ने ये कथा सवलगाँव में पूरण करी।"

इस समय के अन्य कविगण।

नाम—(२५६) वंशीधर मिश्र संदीले ज़ि० हरदोईवाले।

कविताकाल—१६७२।

विवरण—निम्न श्रेणी।

नाम—(२५७) मुकुंददास।

ग्रंथ—कोक भाषा [द्वि० त्रै० रि०]।

कविताकाल—१६७३।

नाम—(२५८) बान कवि पाठक।

ग्रंथ—कलिचरित्र।

कविताकाल—१६७४ [प्र० त्रै० रि०]।

विवरण—दिल्ली के समीप रहते थे। इन्हें बादशाह अकबर ने अरद नाम की जागीर लगा दी।

नाम—(२५६) माधवदास चारण।
ग्रंथ—(१) गुणराम रासो, (२) स्फुट पद।
कविताकाल—१६६४ [खोज १६०१]।
नाम—(२६०) दिलदार।
जन्म-काल—१६५० ।
कविताकाल—१६७५ ।
विवरण—हज़ारा में इनका काव्य है। निम्न श्रेणी।
नाम—(२६१) विदुष व्रजवासी (विद्यादास)।
जन्म-काल—१६५० ।
कविता-काल—१६७५ ।
विवरण—श्रीकृष्णजी की लीला का वर्णन किया।
नाम—(२६२) महाराजा मानसिंह ।
ग्रंथ—मानचरित्र ।
जन्म-काल—१५६२ ।
कविताकाल—१६७५ तक।
विवरण—ये महाराज जयपुरनरेश अकबर के प्रसिद्ध सेनापति थे। इन्होंने कवियों द्वारा 'मानचरित्र'-नामक अपने जीवन-चरित्र का उत्तम ग्रंथ बनवाया। ये स्वयं भी कवि और कवियों के आश्रयदाता थे।
नाम—(२६३) गुणिसूरि जैनी ।
ग्रंथ—ढोलासागर ।
कविताकाल—१६७६ ।
नाम—(२६४) चतुर्भुजसहाय सिरोहिया उदैपूर ।
ग्रंथ—स्फुट ।
कविताकाल—१६७७ ।
विवरण—ये राणा जगतसिंह के यहाँ जागीरदार थे। साधारण श्रेणी।

नाम—(२६५) दयालदास ।

ग्रंथ—(१) राणा रासो, [खोज १९००], (२) अकल को अंग, (३) रासो को अंग ।

कविताकाल—१६७७ के पूर्व ।

विवरण—मेवाड़ राजपूताना के कवि हैं ।

नाम—(२६६) बूटा उपनाम बृखराय ।

ग्रंथ—स्फुट छंद ।

कविताकाल—१६७७ ।

विवरण—यह कवि जहाँगीर शाह का कृपापात्र था ।

नाम—(२६७) रतनेस बुँदेलखंडी ।

कविताकाल—१६७८ ।

विवरण—साधारण श्रेणी । प्रतापसाह के पिता ।

नाम—(२६८) काशीराम ।

ग्रंथ—कनकमंजरी । खोज १९०३ ।

कविताकाल—१६८० और १८३४ के बीच ।

विवरण—राजकुमार लक्ष्मीचंद के यहाँ थे ।

नाम—(२६९) जगन ।

जन्म-काल—१६५२ ।

कविताकाल—१६८० ।

विवरण—साधारण श्रेणी ।

नाम—(२७०) तुलसीदास ।

ग्रंथ—बाह सर्वांग (१६८० के पूर्व), बृहस्पति कांड (१६८० के पूर्व), दोहावली (१६८० के पूर्व) [खोज १९०३] प्रथम त्रैवार्षिक खोज में इनके भगवद्गीता भाषा और ज्ञान दीपिका (१५७४ ई०) ग्रंथ मिले हैं ।

कविताकाल—१६८० लगभग ।

विवरण—गोस्वामीजी से इतर कवि।

नाम—(२७१) दौलत।

जन्म-काल—१६५१।

कविताकाल—१६८०।

नाम—(२७२) दारक।

जन्म-काल—१६५५।

कविताकाल—१६८०।

नाम—(२७३) विश्वनाथ प्राचीन।

जन्म-काल—१६५५।

कविताकाल—१६८०।

विवरण—साधारण श्रेणी।

नाम—(२७४) ब्रजपति भट्ट।

जन्म-काल—१६६०।

कविताकाल—१६८०।

विवरण—इनकी रचना रागसागरोद्भव में है। साधारण श्रेणी। तृतीय त्रै०खो० में इनका रंग भाव माधुरी-नामक ग्रंथ मिला है, जिसमें नवरस नायिका भेद, नखशिख, आभूषण, षट्ऋतु आदि का वर्णन है।

नाम—(२७५) शेख़ नबी।

ग्रंथ—ज्ञानदीप (१६७६)।

कविताकाल—१६८० [खोज १६०२]।

नाम—(२७५/१) समय सुंदर उपाध्याय।

ग्रंथ—(१) शत्रुंजयरास, (२) सांब प्रद्युम्नरास, (३) प्रियमेलक चौपाई, (४) पोषहविधि चौपाई, (५) जिन दत्तर्षि कथा, (६) प्रत्येक बुद्ध चौपाई, (७) करकंडू चौपाई, (८) नल-दमयंती चौपाई, (९) वल्कल चीरी चौपाई।

रचनाकाल—१६८० के लगभग।

नाम—(२७६) संतदास व्रजवासी।

ग्रंथ—शब्दावली। बारहखड़ी।

कविताकाल—१६८०।

विवरण—हीन श्रेणी।

नाम—(२७७) हृदयराम (पंजाबी)।

ग्रंथ—हनुमन्नाटक भाषा। बालिचरित्र।

कविताकाल—१६८०। [खोज १६०४]।

विवरण—ये कृष्णदासजी के पुत्र थे। जहाँगीर शाह के समय में ये थे।

कवि-नामावली

नाम	पृष्ठ
अकरम फ़ैज़	६२
अक्षर (अनन्य)	१२५,१२६
अनीस	१३४
अयोध्याप्रसाद खत्री	१३६,१४२
अक्षयवट मिश्र	१४५
अमीर ख़ुसरो	२०८,६५,१५७
अलि भगवान	२२७,६७
अनन्यदास	२०३
अनंतदास	२२८
अजबेस भट्ट	२४४
अमरदास	३१३
अजबेस प्राचीन	३१४,१०२,
अभयराम	३२०
अकबरशाह	३२२,१०१,१०२
	१०५,१०८,११५
अग्रदास	३२५,१०६
अनंत साधु	३३७
अमृतराय	३४४
अमरेश	३५२,१०७
अनन्य शीलमणि	११२,११३
अजीतसिंह महाराजा	११६,
	११६,१६८
आसकरन	३१५
आनंद कायस्थ	३२०
आलम	१०१
अंबदेव जैन	२०८
अंगददास	२८६
अंबिकादत्त व्यास	१३६
अंबिकाप्रसाद वाजपेयी	१४५
इबराहीम आदिलशाह	३१६
ईश्वर सूरि जैन	२४२
ईश्वरीप्रसाद मिश्र	१४५
उमापति	२२०,६६
उदयसिंह महाराजा	३४४
उसमान	१०७
उमादास	१३४,१३५
उमादत्त	१४०
उमा नेहरू	१४५
उग्र	१४५
ऊधोराम	३१६

नाम	पृष्ठ
औघ	१३७
कबीरदास	२२०,६६,१५८
कमाल	२२४,६७
करनेस	१४३,१०६
कल्यानदास	३४१
कल्याणदेव	३४५
कवींद्राचार्य	११०,१११
कवींद्र	११५,११६,११६,१६७
कविराज सुखदेव मिश्र	१२१, ११३,११५,१६५
कलानिधि	१२७
करन	१२६
कादिरबख़्श	३५१,१०७
कालिदास	१६५,११५,१२२, ११४
कासिमशाह	१३४
कार्त्तिकप्रसाद	१३६
काशीप्रसाद जायसवाल	१४६
किशोर	१२५,१२६
किशोरीलाल गोस्वामी	१४५
कुतुबअली	६२
कुमारपालचरित्र	२०३
कुंभकर्ण महाराणा	२१७, ६६, १०१
कुतबन सेख	२२६,६८,१५६

नाम	पृष्ठ
कुंभनदास	२४५,१००
कुलपति मिश्र	११६,११३,११५, १२१,१६५
कुमारमणि	१२३
कृष्णदास	२४२,१००,१६०
कृष्णदास	१२८
कृपाराम	२५४,१०१,१६०
कृष्णचंद गोस्वामी	३२१
कृष्णानंद व्यास	१३४,१३५
कृष्ण	११६,१२०
कृष्णकांत मालवीय	१४५
कृष्णविहारी मिश्र	१४५
कृष्णदत्त पालीवाल	१४५
केदार	१६४,६४
केशवदास	२७४,१०६,१०७, १२१,१२२,१६२
केशवदास ब्रजवासी	३१४
केवलराम	३४१
केहरी	३४२
केशवराम	१३६
खुमानरासा	१६१
खुमान	१२६
गणेश	१२५,१२६
गणेशप्रसाद	१३४,१३५

नाम	पृष्ठ
गदाधर भट्ट	१३७
गदाधरसिंह बाबू	१३९
गदाधरसिंह ठाकुर	१४५,१४६
गदाधर मिश्र	२१५
गदाधर	१४५
गणेशशंकर विद्यार्थी	१४५
गदाधर	१४५
गदाधर भट्ट	२२५,१०६
गदाधरदास	३४१
गणेशजी मिश्र	३४३
ग्वाल	१२३,१३०,१३१,१७३
गिरिधर	१२३,१२४,१७०
गिरिधरदास	१३४,११४,१२५
ग्रियर्सन	१३९
गुरुदत्तसिंह	१२३,१६९
गुमान	१२३,१२४
गुरदीन पांड़े	१२९
गुरदत्त	१३०,१३१
गुलाबसिंह	१३४,१३६
गुरु गोविंदसिंह	९७,११६,११८
गुलाब	१४५
गेसानंद	३१७
गेहर गोपाल	३२१
गोकुलनाथ	१२६
गोपीनाथ	.१२६

नाम	पृष्ठ
गोविंद गिल्लाभाई	१३९,१४१
गोविंद	१३९
गोविंद नारायण	१३९,१४३
गोपाल राम	१४४
गोरखनाथ	२१०,९५,१५०, १५७
गोविंद स्वामी	२४३,१००
गोपीनाथ प्रभु	२८७
गोकुलनाथ गोस्वामी	३०८, १०८,१५०
गोविंदराम	३१६
गोप	३१८
गोपा	३१९
गोपाल	३२०
गोविंददास	३४३
गोपालदेवी	१४५
गौरीदत्त	१३९,१४१
गौरीशंकर-हीराचंद ओझा	१४०, १४४
गौरवदास	२८८
गंगा भाट	१०२,१०८,१५०
गंजन	११९,१२०,१६८,१२१
गंगाप्रसाद अग्निहोत्री	१४५
गंगानाथ झा	१४५
गंग	३००,१०२,१६१

नाम	पृष्ठ
गंग दूसरे	३१०
गंगा स्त्री	३१४
गंगाप्रसाद	३१६
गंग ग्वाल	३४२
घनश्याम	११४,११५,१२१
घनानंद	११६,१२१,१६८
घासीराम	१०७,१०८
चरणदास	२२६,६७
चतुर्भुजदास	२४६,१००
चतुरविहारी	३२१
चारणदास	२२६,६७
चिंतामणि	११०,१११, ११६,१२१
चेतनचंद्र	३४४
चंद	२६०,१०१,११६
चंद	६३,१६५
चंदन	१२७,१२८
चंद सखी	३४२
चंपा	१०१
चंद्रशेखर वाजपेयी	१३०, १३१,१७३
चंडीदान	१३६
चंद्रकला बाई	१४५
चंद्रमनोहर मिश्र	१४५
चंद्रमौलि शुक्र	१४५

नाम	पृष्ठ
छत्रसाल महाराजा	११५
छत्र	११६,११८,१६७
छीत स्वामी	२४७,१००
छीहल	२८८,१०१
छेम बंदीजन	३१३
छेमकरण	१२६
जन गोपाल	१२७
जसवंतसिंह राजा तिरवा	१२६
जयसिंह महाराजा	१२६
जगमोहन सिंह	१३६,१४१
जगदीशलाल गोस्वामी	१३६
जगन्नाथप्रसाद भानु	१४३
जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी	१४५
जगद्विहारी सेठ	१४५
जयशंकरप्रसाद	१४५
जगनिक	६४,१६४
जल्हन	१६६,६४,६३
जयदेव	२१८,६६
जयसागर	२२३
जनगिरिधारी	२२५
जमुना	३१५
जगदीश	३१६
जमाल	३२१
जगामग	३४१
जलालुद्दीन	३४३

नाम	पृष्ठ
जटमल	१०७,१०८,१५०
जसवंतसिंह महाराजा	११०, ११२,१६४
ज्वालाप्रसाद मिश्र	१४०,१४३
जानकीप्रसाद द्विवेदी	१४५
जायसी	२५५,१०१,१६०
जिनवल्लभ सूरि	१६२
जिनपद्म सूरि	२१०
जिनदास पांडे	३४५
जीवनलाल	१३४,१३५
जीवन	१३६
जीवनशंकर याज्ञिक	१४५
जीवन	३४२
जुगुलानन्यशरण	१३०,१३२
जुगुलकिशोर मिश्र	१४४.१४०
जैन वैद्य	१४५,१४६
जैतराम	३२१
जोधराज	११६,१२०
जोध	३१८
जोयसी	११०,१११
टोडरमल महाराजा	२६५, १०२,१०६
ठकुरसी	२८८
ठाकुर	१२१,१२३, १२४,१३२,१७०

नाम	पृष्ठ
तख़्तमल्ल	३४३
ताज	११०
तानसेन	३०६,१०२
ताहिर	१०७
तीर्थराज	१२५,१२६
तुलसीदास गोस्वामी	२६८, ९९,१०२,१०३,१०६,१०८, ११६,१२०,१२१,१२४,१३३, १३८,१६०,१६१
तोताराम	१३९,१४१
थान	१२७,१२८,१७२
दयासागर सूरि	२२४
दलपति राय	१२३
दत्त	१२३,१२५
दयानंद स्वामी	१२७,१५३
दयाशंकर दुबे	१४५
दामोदर पंडित	६४
दामो	२२५,६७
दादूदयाल	३०८,१०२,१०३, १०७
दामोदर	११२,११३
दास	१०२,११२,१२३,१२४ १५०,१६९
द्विज कवि	१३०,१३१
द्विज गंग	१४५

नाम	पृष्ठ
दील्ह	३१५
दीनदयाल गिरि	१३०,१३१
दीनदयाल शर्मा	१४०,१४३
दुरसाजी	३४५
दुर्गाप्रसाद मिश्र	१३६,१४३
दुलारेलाल भार्गव	१४५
दूलह	११५,१२१,१२३,१२५, १७०
देवा	३४१
देव	६६,११०,११२,११६, ११७,११८,११६,१५०
देवीदत्त	१२५
देवकीनंदन	१२७,१२८,१३०
देवकाष्ठ जिह्वा	१३४,१३५,१५३
देवीप्रसाद मुंशी	१३६,१४१
देवीप्रसाद पूर्ण	१४५
देवीप्रसाद शुक्ल	१४५
देवीदत्त शुक्ल	१४५
देवकीनंदन खत्री	१४५
धर्मपाल सूरि	२०३
धना भगत	२१६
धरमदास	२२६
धर्मदास	३१३,६७
धरमदास	३१५
ध्रुवदास	११०

नाम	पृष्ठ
धनीराम	१२६
नवीन	१३४,१३५
नवलदास	२०४
नरपति नाल्ह	६८,२०६,६५, १५७
नल्लसिंह	२०७,६५,१५७
नरवाहन	२८७
नरहरि	२८६,१०१,१०२
नरोत्तमदास	२६६,१०१,१६०
नरसिया (नरसी)	१६८,३१६
नरसी	३२२,६६
नरहरिदास	११२,११३
नवीनचंद्र राय	१३६,१४१
नकछेदी तेवारी	१३६
नारायणदास पंडित	३४३
नाथ	१२५
नाथूराम शंकर शर्मा	१४३,१३६
नारायणदेव	२१७,६६
नामदेव	२२२,६५,६७,१५८
नानकजी	२२७,६७,१५६
नागरीदास	३१२,१०२,१६८
नाथ ब्रजवासी	३२२
नागरीदास	३४६
नाभादास	३४७,१०७,११६, १५०

नाम	पृष्ठ
नागरीदास महाराजा	११९, १२०,१२१
निपट निरंजन	२६०,१०१
निराला	१४५
निहाल	१३४
नील सखी	१२७,१२८
नूर मुहम्मद	१२३,१२४,१७०
नेवाज	११४,११६
नंदराजा	१६२
नंददास	२४७,१००
नंदलाल	३४३
नंदराम	१३६
परमानंददास	२४४,१००
प्रपन्नगोसानंद	२६५
प्रवीन	३५२
परताप	१२२,१७४
पद्माकर	१२३,१३०,१३२, १३६,१३७,१७२,
प्रतापसाह	१३०,१३१
प्रसिद्ध	३१६
परबत	३२०
पद्मनाभ	३४२
प्रवीणराय	३४६,१०७
प्रतापनारायण मिश्र	१४०, १४३,१७५
पद्मसिंह शर्मा	१४५
पदुमलाल पुन्नालाल	१४५
प्राणनाथ	११२,११३
प्यारेलाल मिश्र	१४६
पृथ्वीराज महाराजा	३०७
प्रियादास	३५०,११६,११९
पीपाजी	२१६
प्रीतम	११६,१२०
पुंड या पुष्य	१८६,८६
पुखी	१२५
पुरुषोत्तम	३१८
प्रेमचंद	१४५
प्रेमसखी	१३०
पोहकर	११०,१०१
पंडित प्रवीण	१३४
फ़हीम	३१५
फेरन	१३७
फ्रेडरिक पिनकाट	१४३,१३६
बलवीर	२६८
ब्रह्मरायमल	३१७
बलभद्र मिश्र	३२७,१०६
बनारसीदास	१०७,१०८
बनवारी	११०,१११,१२८
बलवानसिंह महाराजा	१३०, १३१

नाम	पृष्ठ
बलदेवसिंह	१३४
बलदेव	१३७
बलदेवदास	१३९
बदरीनारायण चौधरी	१३९, १४२
बलदेवप्रसाद मिश्र	१४५
बदरीनाथ भट्ट	१४५
बारदर बेणा	१९४
बालचंद्र जैन	२८१
बालकृष्ण भट्ट	१३९,१४१
बालदत्त मिश्र पूर्ण	१३९
बालमुकुंद गुप्त	१४५,१४६
बाबूराव पराड़कर	१४५
बिट्ठलनाथ गोस्वामी	२९१, १५०,१००,१०८
बिट्ठल बिपुल	२९९
बिहारिनिदास	३११,१०२
बिहारीलाल	१०२,११०,११२ ११५,१२०,१२१,१२२,१६४
बिशाल	१४०,१४३
बीठलदास	२८७
बीरबल महाराजा	२९६,१०२
बेनी	११०,१११,१२८
बेनी प्रवीण	१२२,१२९,१३४, १७२

नाम	पृष्ठ
बैताल	११६,१२१,१६७
बैरीसाल	१२५,१२६,१७१
बोधा	१२५,१२१,१७१
बंदन	३१८
ब्रंद	११४,११६,१२१,१६७
बंसीधर	१२३
भगवानदीन	१४५
भवानीशंकर	१४५
भवानंद	२१९,९६
भगोदास	२२२,९७
भगवान हित	३२३,१०२,१२३
भगवानदास	३१८
भगवंत रसिक	३२१
भगवंतराय खीची	१२३,१२५
भरमी	११२
भगवानदीन मिश्र	१३५
भानुदास	९६
भानु	१४०,३२३,१०२,१२३
भीष्म	११२,११३
भीमसेन	१२९
भुवाल	९२,१८९,१२६
भुवनेश मिश्र	१४५,१३९
भूपति	२०६
भूषण	९९,११०,१११,११५,११३, ११४,११८,११९,१२१,१६५

नाम	पृष्ठ
भूधरदास	११६,१२०
भौन	१२७
भंजन	१२६
मसऊद	६२,६४
मनोहर	२०७
मलूकदास	११०
मतिराम	१११,११२,११३, ११६,१२१,१६६
महबूब	११६,१२०
मनीराम	१२५
मनबोधझा	१२५,१२६
मनीराम	१२५,१२६
मनभावन	१२५,१२६
मणिदेव	१२६
मधुसूदनदास	१२७
महावीरप्रसाद द्विवेदी	१४०, १४३,१७५
मदनमोहन मालवीय	१४४
मथुराप्रसाद मिश्र	१४५
मनियार	१२७
मधुसूदनदास	१२८
महाराज	१३०
महेश	१४०
मन्नन द्विवेदी	१४५,१५४
मयाशंकर याज्ञिक	१४५
महेशचरणसिंह	१४५,१४६
मथुराप्रसाद	१४५,१२६
माधव	१३४,१३५
मानसिंह महाराजा (द्विजराज)	१२६,१३४,१३६,१७४
माधवराव सप्रे	१४४,१४५
माधवदास	३१५
मानराय	३१७
मानसिंह	१०२
मानिकचंद	३४४
माधुरीदास	११०
माणिक्यचंद्र जैन	१४५,१४६
मीराबाई	२६२,६६,१०१,१६०
मुरारिदान	१३७,१४५,१४६
मुल्ला दाऊद	२१०,६५
मुनि सुंदर जैन	२१८
मुनि आनंद	३१२
मुक्ताबाई	६५
मुनिलाल	३४२
मुन्नीलाल	३४५
मुक्तामणिदास	३५२,१०७
मुबारक	१०७,१६३
मून	१२६
मैथिलीशरण गुप्त	१४१, १४६,१७६

नाम	पृष्ठ
मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या	१३६
मोहनलाल	२०२,१९७
मोतीलाल	३१४
मोहनलाल मिश्र	३१८
मंचित	१२७,१२८
मंडन	११२,११३
रसलीन	१२४
रतन	१२५,१२६
रघुराजसिंह महाराजा	१३४
रघुनाथदास	१३४
रसिकेश	१३६,१४१
रघुनाथप्रसाद	१४५
रघुनाथ	१२३,१२४,१६६
रसिक	३१४,१०२
रहीम (खानखाना)	३२६, १०२,१०६,१६२
रसखान	३३७,१०६,१६२
रसलीन	१२३
रामचंद्र पंडित	१२७,१२८, १७१
रामसिंह महाराजा	१२७
रामसहायदास	१३४
रामसनेही	१३६
रामपालसिंह राजा	१४१

नाम	पृष्ठ
राधाचरण गोस्वामी	१३६
रामकृष्ण खत्री	१३६
रामनाथ	१४०
राधाकृष्णदास	१४५
रामजीलाल शर्मा	१४५
रामानंदजी	२१८,६८,२२२
रासचंद्र सूरि	२२८
रामदास	३१६
रायमल्ल पांडे	३१६
रामचंद्र मिश्र	३२०
राघवदास	३५२
रामजी	११४,११५
रामेश्वरी	१४५
रामचंद्र शुक्ल	१४५
रामचंद्र वर्मा	१४५
रामशंकर त्रिपाठी	१४५
रूपलाल गोस्वामी	३२६
रूपनारायण पांडे	१४५
रैदास भगत	२१६,६७
लक्ष्मणसिंह	१३७,१५३
लछिराम	१३७
लखनेस	१३७
लक्ष्मणशरणदास	३२०
लल्लूलाल	१२६,१२३,१५२, १३७

नाम	पृष्ठ
ललितकिशोरी	१२३,१२४,१३४,१३५,१५०
ललितमोहिनी	१२३,१२४,१३५,१५०
ललकदास	१२६
ललित	१३१
लक्ष्मणनारायण गर्दे	१४५
लालचदास	२८६,१०१
लावण्य समय गणि	२१२
लालदास	३१७,१०७
लालचंद	३२६,१०६
लालदास	३३७
लाल	११६,११८,१६७,११६,१२१,१२८
लालबिहारी मिश्र	१४०,१४३
लीलाधर	१०७
लेखराज	१२४,१३६
लोचनप्रसाद पांडेय	१४५,१४६
वल्लभाचार्य	२२८,६८,१००
वनचंद्र	२१७
व्रजवासीदास	१८५,१२६
व्रजनंदनसहाय	१४५,१४६
वचनेश	१४५
व्रजरत्नदास	१४५
व्यासजी	२६६,११०
विनयप्रभु जैन	२१२
विद्धण जैन	२१३
विद्यापति ठाकुर	२१५,६६,६८,१५८
विजयसेन सूरि	२०४
विनयचंद्र सूरि	२०५
विद्याविलास रास	२२४
विष्णुदास	२२४
विनयसमुद्र	३१७
वृंदावन	१२२
वृंदावन हित (चाचा)	१२३,१२४,१६६
विश्वनाथ	१२७
वृंदावन जैन	१३०,१३१
वृषभानु कुँअरि महरानी	१२६,१४१
वियोगी हरि	१४५
विश्वंभरनाथ कौशिक	१४५
शरच्चंद्रसोम	१४१
शशिभाल	१७५
शाह मोहम्मद	१०१
श्यामसुंदरदास	१४५,१४६,१५४
शिवनारायण	१२३
शिव	१२३

नाम	पृष्ठ
शिवसहाय	१२३,१२४
शिवनाथ दुबे	१२५,१२६
शिवप्रसाद राजा	१३४,१३६, १३७,१५१
शिरोमणि	११०
शिवाजी	११५
शिव	१३६
शिवसिंह	१३६
शिवनंदनसहाय	१४०,१४३
शिवप्रसाद गुप्त	१४५
शिवपूजनसहाय	१४५
शिरमौर	१७५
श्रीपति	११६,१२१
श्रीधर	१३०,१४४
श्रीभट्ट	३१०,१०२
श्रीज्ञानेश्वर	६५
श्रीधर	११६
श्रीधर पाठक	१४०,१७५
श्रीप्रकाश	१४५
श्रुतिगोपाल	२२२,६७
शेखर	११८,१२२
शंकर	१३७
शंभुनाथ सोलंकी	११२,१२१, १६४
सरजूराम	१२३,१२४
सहजोबाई	१२५,१२६
सदल मिश्र	१२६,१५०
सरदार	१३४,१३६,१५२
सहजराम	१३६,१४१
सप्त क्षत्रिरास सर्वज्ञ भूप	६२, २०५
सहज सुंदर	३१३,३१४
सर्वजीत	३२०
सदानंद	११०
सबलसिंह	११२,११३,१६५
सरसदास	११२,११३
सत्यदेव	१४५
सनेही	१४५
सागर	१२६
सारंगधर	२०८,६५,१५७
साँईदान चारण	६२
साधुशरणप्रसाद	१४५
सिद्धसूरि जैन	२१३
सिद्धराम	३१३
सीतल	११६,१२८,१६८
सीताराम लाला	१४०,१४३
सुंदरि कुँअरि	१२६
सुबंस	१२६
सुंदरसिंह महाराजा	१२६
सुंदरदास	१०३,१०७

नाम	पृष्ठ
सुंदर ब्राह्मण	११०,१११
सुखदेव कविराज	११२,११५,१६५,१२१
सुधाकर द्विवेदी	१४०,१४३
सुजान	१४५
सुदर्शनाचार्य	१४५
सूदन	१२१,१२६
सूरदासजी	२३७,९८,९९,१००,१०१,११६,१२१,१२४,१३३,१५९
सूरदास दूसरे	३१४
सूरति मिश्र	११६,११९,१५७
सेवक	१३४,१३५,१७४
सेन	२१६,२२९,१५९
सेवकजी	२९४
सेनापति	११०,१११,१२१,१२८,१६४
सोमनाथ	१२३
सोमेश्वर	९२
सोमसुंदर सूरि	२१७
सोनकुँअरि	३२२
संवेग सुंदर	२२८
हरिचरणदास	११९,१२०
हरिश्चंद्र भारतेंदु	११९,१३९,१४४,१४०,१५३,१७५
हठी	१२८
हरिसेवक मुनि	२१२
हरि व्यास देव	२२५
हरिदास स्वामी	२६६,१०२,१६१
हरराज	२९४
हरिवंश अली	२९५
हरिराय	३१६
हरिशंकर	३४४
हरिकेश	११४,११५,११८,११९,१२१
हनुमान	१३९,१४१
हरिपालसिंह	१४५
हितहरिवंश स्वामी	२५०,१००,१२१,१२४,१५९
हितकृष्णचंद्र	२८७
हीरानंद सूरि	२१३
हृदयनिवास	१२७
होलराय	३२९,१०६
हंसराज	१२५,१२६
ज्ञानसागर जैन	२२६

शुद्धाशुद्ध-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९	६	१७१०	१८१०
१२	२२	७०	७००
३१	९	तीन	लीन
४१	३	दोप	दोष
४९	१	सुर	स्वर
५१	९	वे	के
५१	२५	विभाव	विभाव के
५१	२६	ोहि	जेहि
६२	२	नक	नाक
१६७	२१	एड़	ऐंड़
१७०	२६	जान	जनि
१७१	२३	दसानोधिप	दसार्नोधिप
१७२	२०	रँग मासा	ठगमासी
१७३	१८	तरंग	तुरंग
८५	६	जो भी	तो भी
१८६	१५	मुण	गुण
२१७	१८	टाकी	टीका
२३३	१९	लिखी गई थी	लिखा गया था
२४६	१८	१५२	२५२

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२६०	८	न्देहिं	न देहिं
३४३	२१	(१६८)	(१६७)

सुकवि-माधुरी-माला का प्रथम पुष्प

बिहारी-रत्नाकर

(बिहारी-सतसई पर रत्नाकरी टीका)

[प्रणेता—व्रजभाषा के आचार्य, काव्य-मर्मज्ञ बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' बी० ए०]

जिस बिहारी-रत्नाकर के लिये साहित्य-संसार वर्षों से लालायित हो रहा था, वह प्रकाशित हो गया। यों तो बिहारी-सतसई पर आज तक अनेक टीकाएँ तैयार हुई हैं। उनमें कुछ प्रकाशित और कितनी ही अप्रकाशित पड़ी हैं। अपने ढंग की निराली होने के कारण, सतसई पढ़ी भी खूब गई। हिंदी के धुरंधर काव्य-मर्मज्ञों ने अपनी-अपनी बुद्धि और रुचि के अनुसार इस पर टीका-टिप्पणी भी खूब की। पर उनमें कोई भी टीका ऐसी नहीं नजर आती, जिसे सर्वांग-पूर्ण कह सकें। जिसे जो पाठ और अर्थ ठीक जँचा, उसने वही लिख मारा। नए पाठक और काव्य-प्रेमी प्रायः विभिन्न पाठ और अर्थ देखकर बड़ी दुविधा में पड़ जाते हैं कि किसे प्रमाणित और ठीक मानें, और किसे नहीं। हिंदी के ऐसे विश्व-विदित कवि की ऐसी दुर्दशा हमसे नहीं देखी

गई। हमने अपने मित्र 'रत्नाकरजी' से प्रार्थना की कि वह हिंदी-साहित्य-रत्नाकर को मथकर एक ऐसा अनमोल रत्न निकालें, जो विहारी-सतसई का शुद्ध, सप्रमाण, सुंदर, सटीक, सटिप्पण एवं सरल संस्करण हो। बिहारी के वह अनन्य भक्त तो थे ही। उनको यह बात जँच गई। फिर क्या था। बड़ा परिश्रम और धन व्यय करके बिहारी की सभी टीकाएँ, प्रकाशित और अप्रकाशित, एकत्रित की गईं। लगातार कई वर्षों के घोर परिश्रम और अपनी प्रखर प्रतिभा के फल-स्वरूप उन्होंने यह बिहारी-रत्नाकर तैयार किया है।

ऐसे धुरंधर विद्वान् द्वारा इतने परिश्रम से लिखी होने के कारण इसका पाठ शुद्ध और प्रामाणिक तथा टीका सुंदर और सरल होने में तो कोई शंका ही नहीं रही।

पुस्तक के अंत में कई परिशिष्ट भी हैं, जिससे बिहारी के संबंध में भी अनेक बातें विदित होती हैं।

बड़ी खोज, परिश्रम और धन-व्यय करके बिहारी का ख़ास चित्र भी प्राप्त किया और इसमें दिया गया है। और भी कई रंगीन और सादे चित्र हैं। ऐंटिक काग़ज़ पर छपे हुए इस ग्रंथ-रत्न की निछावर केवल ५)

सुकवि-माधुरी-माला का द्वितीय पुष्प

मतिराम-ग्रंथावली

[संपादक—हिंदी-साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान् और काव्य-मर्मज्ञ पं० कृष्णबिहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०

हिंदी-संसार में एक-से-एक बढ़कर, अपूर्व और धुरंधर कवि हो गए हैं । महाकवि मतिराम का स्थान उनमें किसी से कम नहीं । यह भी हिंदी के नवरत्नों में एक हैं । काव्य-प्रेमियों की इनकी भाव-पूर्ण, सुंदर और कमनीय कविताओं का रसास्वादन करने की लालसा अभी तक पूरी नहीं हुई थी । कारण, एक तो इनके प्राप्य ग्रंथों के सुंदर और शुद्ध संस्करण मिलते ही नहीं थे, और दूसरे अभी तक इनकी सतसई का किसी को पता ही नहीं था । बहुत खोज और धन-व्यय करने पर हमें इनकी सतसई भी मिल गई । मिश्रजी से सुसंपादित कराकर हमने रसराज, ललित-ललाम और मतिराम-सतसई को मतिराम-ग्रंथावली के नाम से प्रकाशित किया है । हिंदी-संसार में यह एक अद्वितीय ग्रंथ है ।

टिप्पणियाँ, शब्दार्थ, नोट आदि के अतिरिक्त इसमें २५० पृष्ठ की विस्तृत आलोचनात्मक भूमिका भी है, जिसने सोने में सुगंध का काम किया है । इससे इस पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है । प्राचीन काव्य-प्रेमियों के लिये तो यह एक अनूठी चीज़ है ही पर नवयुवक साहित्य-प्रेमियों को भी इसमें ढेरों नई और ज्ञातव्य बातें भरी मिलेंगी। प्रत्येक हिंदी-काव्य-प्रेमी को इसकी एक प्रति तो अपने पास अवश्य ही रखनी चाहिए । पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है। फिर भी ५००-५५० पृष्ठ के इस सुंदर ऐंटिक काग़ज़ पर छपे हुए पोथे का मूल्य केवल २॥) है; सजिल्द ३)